श्री महावीर ग्रंथ अकादमी—छठा पुष्प

कविवर बुलाखीचन्द बुलाकीदास एवं हेमराज

[१७वीं–१८वीं शताब्दि के छह प्रतिनिधि कवियों—
बुलाखीचन्द, बुलाकीदास, पाण्डे हेमराज, हेमराज गोदीका,
मुनि हेमराज एवं हेमराज के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व
के साथ उनकी महत्वपूर्ण कृतियों के मूल पाठों का संग्रह]

100/-

लेखक एवं सम्पादक
डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्रकाशक
श्री महावीर ग्रंथ अकादमी, जयपुर

प्रथम संस्करण : मार्च, १९८३ मूल्य : ४०.००

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी–प्रगति रिपोर्ट

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी की स्थापना समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के उद्देश्य के साथ साथ जैन साहित्य का प्रकाशन, नव साहित्य निर्माण एवं जैन साहित्य, कला, इतिहास, पुरातत्व जैसे विषयों पर शोध करने वाले विद्यार्थियों को दिशा निर्देशन के उद्देश्य को लेकर की गई थी। इन उद्देश्यों में अकादमी निरन्तर आगे बढ़ रही है। हिन्दी जैन कवियों पर प्रकाशित होने वाले भागों में छट्ठा पुष्प पाठकों एवं माननीय सदस्यों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। अब तक प्रस्तुत भाग सहित निम्न भाग प्रकाशित किये जा चुके हैं।

१. महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति

२. कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि

३. महाकवि ब्रह्म जिनदास -- व्यक्तित्व एवं कृतित्व

४ भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र

५. आचार्य सोमकीर्ति एवं ब्रह्म यशोधर

६. कविवर बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज

अकादमी के सप्तम पुष्प की सामग्री भी संकलित की जा रही है तथा उसे अक्टूबर तक अथवा वर्ष समाप्ति के पूर्व ही प्रकाशित कर दिया जायेगा।

जैन कवियों के द्वारा विशाल हिन्दी साहित्य की संरचना की गयी थी। इसलिये उनकी सम्पूर्ण कृतियों को २० भागों में प्रकाशित करना तो संभव नहीं हो सकेगा क्योंकि ब्रह्म जिनदास एवं पाण्डे हेमराज जैसे बीसों कवि हैं जिनकी कृतियों के मूल पाठ प्रकाशित करने के लिए एक नहीं अनेक भाग चाहिये। फिर भी यह प्रसन्नता का विषय है कि अकादमी की ओर से अब तक बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, गारवदास, सोमकीर्ति, ब्रह्म यशोधर सांगु, गुणकीर्ति, यशःकीर्ति जैसे कुछ कवियों की तो सम्पूर्ण रचनायें प्रकाशित की जा चुकी हैं तथा शेष कवियों ब्रह्म रायमल्ल

त्रिभुवनकीर्ति, ब्र. जिनदास, बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज की रचनाओं के प्रमुख पाठों को प्रकाशित किया गया है। जिससे विद्वान गण उनकी काव्यगत महानता की जानकारी प्राप्त कर सकें और चाहें तो उनकी रचनाओं का भी अध्ययन कर सकें।

अकादमी द्वारा २० भाग प्रकाशित होने के पश्चात् हिन्दी जगत् में है जैन कवियों के प्रति जो उपेक्षा एवं हीन भावना व्याप्त है वे पूर्ण रूप से दूर होगी और उन्हें साहित्यिक जगत् में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा और उनका साहित्य साधारण पाठकों को स्वाध्याय के लिये उपलब्ध हो सकेगा ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

सहयोग

अकादमी को समाज का जितना सहयोग अपेक्षित है यद्यपि उतना सहयोग अभी तक नहीं मिल सका है फिर भी योजना के क्रियान्वय के लिये विशेष कठिनाई नहीं हो रही है लेकिन हमें भविष्य में और भी अधिक सहयोग प्राप्त होगा जिससे प्रकाशन कार्य में और भी अधिक तेजी लायी जासके। मैं उन सभी महानुभावों का जिनका हमें परम संरक्षक, संरक्षक, अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सम्माननीय सदस्य एवं विशिष्ट सदस्य के रूप में सहयोग मिला है हम उनके पूर्ण आभारी हैं। अकादमी के परम संरक्षक स्वास्ति श्री पंडिताचार्य भट्टारक चारुकीर्ति जी महाराज मूडबिद्री स्वयं विद्वान हैं, हजारों ताडपत्रीय ग्रंथों के व्यवस्थापक हैं। साहित्य प्रकाशन की महत्ता से वे स्वयं परिचित हैं। हम उनके सहयोग के लिये आभारी हैं।

नये सदस्यों का स्वागत

पञ्चम भाग के पश्चात् डा. (श्रीमती) सरयू दोशी बम्बई एवं श्रीमान् पन्नालाल जी सेठी डीमापुरने अकादमी का संरक्षक बनना स्वीकार किया है। डा. श्रीमती दोशी जैन चित्र कला की ख्याति प्राप्त विदुषी है। मार्ग जैसी कला प्रधान पत्रिका की सम्पादिका है। सारे देश के जैन भण्डारों में उपलब्ध चित्रित पांडुलिपियों का गहरा अध्ययन किया है। Homage to Shravan belgola. जैसी पुस्तक की लेखिका है। इसी तरह माननीय श्री पन्नालाल जी सेठी डीमापुर समाज के सम्माननीय सदस्य हैं। उदार हृदय एवं सेवा भावी सज्जन हैं। साधु भक्ति में जीवन समर्पित किये हुए है तथा प्रतिवर्ष हजारों साधर्मी बन्धुओं को जिमा कर आनन्द का अनुभव करते हैं। हम दोनों ही महानुभावों का हार्दिक स्वागत करते हैं।

इसी तरह निदेशक मंडल में श्रीमान् माननीय डालचन्द जी सा. सागर एवं श्रीमान् रतन चन्द जी सा. पंसारी जयपुर ने उपाध्यक्ष के रूप में अकादमी को

सहयोग प्रदान किया है। हम दोनों ही महानुभावों का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। श्री बालचन्द जी सा. सागर से सारा जैन समाज परिचित है। अ. भा. दि. जैन परिषद के वे अध्यक्ष हैं। आपकी लोकप्रियता एवं सेवाभावी जीवन सारे मध्यप्रदेश में प्रसिद्ध है, इसी तरह श्री पंसारी सा. रत्नों के व्यवसायी हैं तथा जयपुर जैन समाज अत्यधिक सम्माननीय सज्जन हैं।

अकादमी के सम्माननीय सदस्यों में जयपुर के डा. राजमलजी सा. कासलीवाल देहली के श्री नरेशकुमार जी मादीपुरिया, मेरठ के श्री शिखरचन्द जी जैन, सागर के श्री खेमचन्द जी मोतीलाल जी, एवं डीमापुर के श्री किशनचन्द जी सेठी एवं कटक के श्री निहालचन्द शास्त्री कुमार का भी हम हार्दिक स्वागत करते हैं। सभी महानुभाव समाज के प्रतिष्ठित एवं सेवाभावी व्यक्ति है। डा. राजमलजी तो नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के विश्वस्त साथी रह चुके हैं।

संस्थाओं द्वारा सहयोग

दिसम्बर ८२ में श्री दि. जैन सिद्ध क्षेत्र आहार जी में अ. भा दि. जैन विद्वत परिषद के नैमित्तिक अधिवेशन में अकादमी की साहित्य प्रकाशन योजना की प्रशंसा करते हुए समाज से अकादमी का सदस्य बनने एवं उसे पूर्ण आर्थिक सहयोग देने के लिए जो प्रस्ताव पारित किया गया उसके लिए हम विद्वत् परिषद् के पूर्ण आभारी हैं। इसी तरह आहारजी में ही अ भा. दि जैन महासभा के अध्यक्ष आदरणीय श्री निर्मल कुमार जी सा. सेठी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अकादमी के कार्यों की जिस रूप में प्रशंसा की तथा उसे सहयोग देने का आश्वासन दिया उसके लिए हम उनके भी पूर्ण आभारी हैं। माननीय सेठी सा. तो अकादमी के पहिले ही सम्माननीय संरक्षक हैं।

विद्वानों का सहयोग

अकादमी को हिन्दी साहित्य के मनीषियों का बराबर सहयोग मिलता रहता है। अब तक डा सत्येन्द्र जी जयपुर, डा. हीरालाल माहेश्वरी जयपुर, डा. नरेन्द्र भानावत जयपुर, डा. नेमीचन्द्र जैन इन्दौर एवं डा. महेन्द्र कुमार प्रचंडिया अलीगढ ने संपादकीय लिखकर एवं पं. अनूपचन्द्रजी न्यायतीर्थ, पं. मिलापचन्द जी शास्त्री, श्रीमती डा कोकिला सेठी, श्रीमती सुशीला बाकलीवाल, डा. भागचन्द भागेन्दु जैसे विद्वानों का सम्पादन में हमें सहयोग मिलता रहा है। प्रस्तुत भाग के संपादक है सर्व श्री रावत सारस्वत जयपुर, डा हरीन्द्र भूषण उज्जैन एवं श्रीमती शशिकला जयपुर। माननीय श्री रावत सारस्वत राजस्थानी भाषा के प्रमुख विद्वान हैं तथा

'राजस्थानी भाषा प्रचार सभा' के निदेशक हैं। आपने प्रस्तुत भाग पर जो महत्वपूर्ण संपादकीय लिखा है वह आपकी गहन विद्वता का परिचायक है। डा. हरीन्द्र भूषण जी जैन साहित्य के शीर्षस्थ विद्वान् हैं तथा कितने ही पुस्तकों के लेखक हैं। विक्रम विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के रीडर पद से अभी अभी रिटायर हुए हैं। अकादमी लिये के आप विशेष प्रेरणा स्रोत हैं। श्रीमती शशिकला काशलीवाल जयपुर उदीयमान विदुषी है। हम तीनों के प्रति अत्यधिक आभारी हैं।

विशेष आभार

वैसे तो हम पूरे समाज के आभारी हैं जिसके मंगल आशीर्वाद से अकादमी अपनी साहित्यिक योजना में सतत आगे बढ़ रही है। विशेषतः पूज्य क्षुल्लकरत्न श्री सिद्ध सागर जी महाराज लाडनूं वाले, पं. अनूपचन्दजी न्यायतीर्थ जयपुर, ब्र. श्री कपिल कोटडिया हिम्मतनगर, के भी आभारी हैं जिनका अकादमी को पूर्ण आशीर्वाद एवं सहयोग मिलता रहता है।

८६७ अमृत कलश
बरकत कालोनी, किसान मार्ग
टोंक फाटक, जयपुर–३०२०१५

डा. कस्तूर चन्द कासलीवाल
निदेशक एवं प्रधान संपादक

संरक्षक के दो शब्द

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के अष्टम पुष्प 'कविवर बुलाखीचन्द बुलाकीदास एवं हेमराज' को पाठकों के हाथों में देते हुये मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। सम्पूर्ण हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के उद्देश्य से संस्थापित यह अकादमी निरन्तर अपने उद्देश्य में आगे बढ़ रही है। प्रस्तुत भाग में १७-१८ वीं शताब्दि के तीन प्रमुख कवि बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। तीनों ही कवि आगरा के थे तथा अपने समय के समर्थ कवि थे। महाकवि बनारसीदास ने आगरा में जो साहित्यिक चेतना जागृत की थी उसीके फलस्वरूप आगरा में एक के पीछे दूसरे कवि हो गये और देश एवं समाज को नयी-नयी एवं मौलिक कृतियां भेंट करते रहे। इस भाग के प्रकाशन के साथ ही डा० कासलीवालजी ऐसे २६ जैन प्रमुख हिन्दी कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाल चुके हैं, जिनकी सभी कृतियां हिन्दी साहित्य की बेजोड़ निधियां हैं। इन कवियों में ब्रह्म रायमल्ल, बूचराज, छीहल, गारवदास, ठक्कुरसी, ब्रह्म जिनदास, भ० रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, आचार्य सोमकीर्ति, सांगु, ब्रह्म यशोधर, बुलाखीचन्द, बुलाकीदास, हेमराज पांडे एवं हेमराज गोदीका के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इन सभी कवियों ने हिन्दी साहित्य को अपनी कृतियों से गौरवान्वित किया है।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत भाग में कविरत्न बुलाखीचन्द ऐसे कवि है जिनका परिचय साहित्यिक जगत को प्रथम बार प्राप्त हो रहा है। डा० कासलीवालजी की साहित्यिक खोज एवं शोध सचमुच प्रशंसनीय है, जो अकादमी के प्रत्येक पुष्प में किसी न किसी अचर्चित एवं अज्ञात कवि को साहित्यिक जगत के समक्ष प्रस्तुत करते रहते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि डा. साहब की लेखनी से अब तक उपेक्षित सैंकड़ों हिन्दी जैन कवि एवं मनीषी तथा उनका विशाल साहित्य प्रकाश में आ सकेगा।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना एवं उसका संचालन डा० कासलीवाल की साहित्यिक निष्ठा का सुफल है। दो वर्ष पूर्व जब मुझे मेरे घनिष्ठ मित्र

एवं सामाजिक कार्यों में सहयोगी तथा प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री ताराचन्दजी प्रेमी ने अकादमी के सम्बन्ध में चर्चा की तथा उसका संरक्षक सदस्य बनने के लिए कहा, तो मैंने तत्काल अपनी स्वीकृति दे दी। मैं इसके लिए श्री प्रेमी जी का आभारी हूं। ऐसी साहित्यिक संस्था को सहयोग देने में मुझे ही नहीं, सभी साहित्यिक प्रेमियों को प्रसन्नता होगी।

अकादमी को निरन्तर लोकप्रियता प्राप्त हो रही है, जिसकी मुझे अतीव प्रसन्नता है। इसके पंचम भाग का विमोचन बम्बई महानगरी में परम पूज्य आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज की पुण्य जन्म जयन्ती महोत्सव के अवसर उन्हीं के सानिध्य में मूडबिद्री के भट्टारक स्वस्ति श्री चारूकीर्तिजी महाराज ने किया था। भट्टारकजी महाराज अकादमी के परम संरक्षक भी हैं। इस अवसर पर स्वयं आचार्यश्री जी ने डा० कासलीवाल जी को साहित्यिक क्षेत्र में सतत् आगे बढ़ते रहने का शुभाशीर्वाद दिया था। पंचम भाग के प्रकाशन के पश्चात् डा० (श्रीमती) सरयू दोशी बम्बई एवं श्री पन्नालाल सेठी डीमापुर ने अकादमी का संरक्षक सदस्य बनने की महती कृपा की है। इसके लिए हम उनके आभारी है। डा० (श्रीमती दोशी जैन चित्रकला की शीर्षस्थ विदुषी है, तथा अपना समस्त जीवन जैन कला के महत्व को प्रस्तुत करने में समर्पित कर रखा है। उनका Homage to shrawan-belgola अपने ढंग की अनूठी कृति है। इसी तरह माननीय श्री पन्नालाल जी सेठी एक प्रमुख व्यवसायी है तथा अपनी उदारता, दानशीलता एवं साधु भक्ति के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। हम दोनों का हार्दिक स्वागत करते हैं। उक्त दोनों के अतिरिक्त सागर के प्रसिद्ध उद्योगपति एवं लोकप्रिय समाज सेवी श्री डालचन्द जी जैन, जो वर्तमान में अखिल भारतीय दि० जैन परिषद के अध्यक्ष है, अकादमी को उपाध्यक्ष के रूप में सहयोग देकर मध्यप्रदेश में अकादमी के कार्य क्षेत्र में वृद्धि की है। इसी तरह जयपुर में रत्नों के व्यवसायी श्री रतनचन्दजी पंसारी ने भी उपाध्यक्ष सदस्य बनने की स्वीकृति प्रदान की है। श्री पंसारी जी जयपुर जैन समाज के लोकप्रिय समाज सेवी है तथा नगर की कितनी ही संस्थाओं को अपना सहयोग प्रदान करते रहते हैं। हम दोनों महानुभावों का उनके सहयोग के लिये हार्दिक स्वागत करते हैं।

मुझे यह भी लिखते हुये प्रसन्नता है कि अकादमी को साहित्यिक संस्था के रूप में सर्वथा मान्यता मिल रही है। अभी गत वर्ष दिसम्बर ८२ में श्री आहारजी सिद्ध क्षेत्र पर आयोजित अ० भा० दि० जैन विद्वत् परिषद ने एक प्रस्ताव द्वारा श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के कार्यों की भूरि २ प्रशंसा की है तथा समाज से अकादमी के लिए पूर्ण सहयोग देने की अपील की है। ऐसे उपयोगी प्रस्ताव पारित करने के लिए हम विद्वत परिषद के अध्यक्ष एवं मंत्री दोनों के पूर्ण आभारी हैं।

अन्त में मैं समाज के सभी महानुभावों से प्रार्थना करता हूं कि वे अकादमी के अधिक से अधिक संख्या में सदस्य बनकर जैन साहित्य के प्रकाशन में अपना पूर्ण योगदान देने का कष्ट करें।

७-ए, राजपुर रोड
देहली-५४

रमेशचन्द जैन

सम्पादकीय

भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य में एतद्देशीय जैन वाङ्मय का बड़ा प्रशंसनीय सहयोग रहा है। राजस्थानी और हिन्दी के विगत प्रायः एक हजार वर्षों के इतिहास में इस सहयोग के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा चुके हैं। इससे पूर्व की भी, संस्कृत, अर्द्धमागधी, प्राकृत अपभ्रंश आदि तद्‌कालीन भाषाओं में रचित, बहुसंख्यक जैन रचनाओं के विवरण प्रकाशित हुए हैं। जैन धर्माचार्यों ने अपने उपदेशों को जनसाधारण के लिए बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से लोकभाषा को माध्यम बनाया। यद्यपि वे पाण्डित्य पूर्ण विशिष्ट रचनायें मान्य साहित्यिक भाषाओं में करते रहे, पर लोककल्याण की भावना से प्रेरित उनका विपुल साहित्य देशभाषाओं में ही रचा गया। यह अतिरिक्त हर्ष का विषय है कि जैन समाज ने अपने आचार्यों की इस धरोहर को यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा है, जिसके फलस्वरूप सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी वे कृतियां अनुसंधित्सुओं को प्राप्य हो सकी हैं। श्रद्धालु जैन समाज के श्रावकों ने आचार्यों की इस थाती से लाभान्वित होकर स्वयं भी उनके अनुकरण पर बहुसंख्यक रचनायें की हैं। ऐसी अनेक रचनाओं ने जैन वाङ्मय में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुयायियों में इस प्रवृत्ति का विशेष बाहुल्य रहा है। ब्रजभाषा, बुन्देली और पश्चिमी हिन्दी से सटे राजस्थान के पूर्वी और पूर्वी-दक्षिणी अंचलों में ऐसी रचनायें अधिक रची गई।

इस धर्म प्रधान साहित्यिक जागरण को उस अखण्ड ज्ञान चेतना से अङ्गीभूत रूप में ही देखा जा सकता है जो शताब्दियों से उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पंजाब और मध्यप्रदेश के विशाल भू भागों को जैन संस्कृति की देन के रूप में आलोकित करती रही है। प्रस्तुत शोधग्रंथ में जैन समाज के ऐसे ही तीन सुकवियों की रचनायें संकलित की गई हैं।

इस संकलन की विशिष्टता न केवल इन रचनाओं का अज्ञात होना है अपितु इनकी भाषागत एवं साहित्यिक वैशिष्ट्य की पांडित्यपूर्ण विशद विवेचना

भी है जो जैन वाङ्मय के लब्धप्रतिष्ठ अधिकारी विद्वान डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल द्वारा की गई है । डा. कासलीवाल को ऐसे बीसों कवियों को प्रकाश में लाते हुए, इसी प्रकार के कई विद्वतापूर्ण संकलन संपादित करने का श्रेय है । ये सभी ग्रंथ विद्वत्समाज में चर्चित और समादृत हुए हैं । श्री महावीर ग्रंथ अकादमी के छठे 'पुष्प' के रूप में प्रकाशित इस संकलन की श्रृङ्खला को आगे बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील, डा. कासलीवाल की यह नि:स्वार्थ सेवा सभी साहित्य प्रेमियों के द्वारा अभिनंदनीय और अनुकरणीय है ।

विषयवस्तु की दृष्टि से जैन रचनाओं को समग्र भाषा-साहित्य से पृथक् करके देखने की जो प्रवृत्ति कहीं-कहीं दिखाई देती है, उसे भाषा और साहित्य का सामान्य हित चाहने वाले लोग संकुचित और एकांगी ही कहेंगे । भाषा के ऐतिहासिक विकास क्रम का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने इन रचनाओं की उपादेयता को स्वीकार किया है । जिस काल विशेष की अन्यान्य अजैन रचनायें दुष्प्राप्य हैं सके लिए तो ये ही रचनायेंहमारा एक मात्र आधार बनी हुई है । इन्हीं रचनाओं में प्रसंगवश समकालीन इतर साहित्यकारों के प्रकीर्णक छंद भी उद्धृत मिलते हैं जिनमे साहित्य का इतिहास नवीन तथ्यों से समृद्ध बनता है । प्रबन्ध चिन्तामणि, पुरातन प्रबन्ध संग्रह प्रबन्ध कोश, पुरातन पद्य प्रबन्ध आदि ग्रथों मे संकलित उत्तर अपभ्रंश कालीन प्रबंधों में दिए गए ऐसे उदाहरण देशभाषाओं के उद्भव को समझने में बड़े सहायक सिद्ध हुए हैं ।

भाषा के संबंध में दूसरी विशेषता जैन कवियों द्वारा प्रयुक्त वह मनोरम शब्दावली है जो लोक में सतत व्यवहार के कारण बड़ी आर्द्र, स्निग्ध और संस्कार संपन्न हो गई है । यह शब्दावली, परिनिष्ठित साहित्यिक शब्द प्रयोगों की रूढ़िगत कृत्रिमता और शुष्क वाग्जाल से आकुञ्चित न होकर, लोकमानस में प्रवहमान मानवीय भावनाओं की सरसता और अपनत्व से ओत प्रोत है । इसमें मस्तिष्क को बोझिल और सारग्राहिणी बुद्धि को कुण्ठित करने के उपक्रम के स्थान पर सीधे हृदय से दो-दो बातें करने का अबाधित और अनायास संपर्क है । इस दृष्टिकोण से लोकभाषाओं की स्थानीय रंगत में रंगे जैन काव्यों का अध्ययन अभीष्ट है ।

जैन प्रबंध रचनाओं में सांस्कृतिक सामग्री की जो विशदता, विपुलता और सर्वांगीणता मिलती है वह संस्कृतेतर भाषाओं के अन्यान्य साहित्य में तुलनात्मक रूप से अति विरल ही कही जाएगी । हमारे विस्मृत एवं लुप्तप्राय: ज्ञानकोश के पुनर्निर्माण के लिए जैन साहित्य का महत्व सर्वोपरि माना जाना चाहिए । साहित्यिक

वर्णनों की जो परम्परा जैन ग्रंथों में उपलब्ध है उनसे अनेक उलझे सूत्र सुलझाने में बड़ी सहायता मिली है। इस वर्णक समुच्चय को हम तत्कालीन काव्य पाठशालाओं के पाठ्यक्रम का एक अंग ही मान सकते हैं। वर्णनों की इस परिपाटी ने प्राचीन भारतीय संस्कृति को सुरक्षित करने में बड़ा योगदान दिया है। प्रस्तुत संकलन में आई ऐसी सांस्कृतिक सामग्री पर डा. कासलीवाल ने अपनी विद्वत्तापूर्ण भूमिका में अच्छा प्रकाश डाला है।

जब से विद्वानों का ध्यान जैन रचनाओं की इस सांस्कृतिक समृद्धि की ओर गया है, अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किए गए हैं। हरिवंश पुराण, कुवलयमाला, उपमितिभव प्रपंचकथा, प्रद्युम्नचरित, जिनदत्तचरित निशीथ चूर्णि प्रभृति ग्रंथों के ऐसे अध्ययनों ने सांस्कृतिक विषयों में रुचि रखने वाले अध्येताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के ग्रंथों में प्राप्त प्रभूत सांस्कृतिक संदर्भों के अनुकरण पर प्राच्य भाषा-काव्यों में भी ऐसी सामग्री का अभाव नहीं है। कविवर बनारसीदास की आत्मकथा 'अर्द्ध कथानक' का ऐसा ही एक अध्ययन हाल ही में किया भी गया है। इस शैली पर, विषयों की ओर गहराई में उतरते हुए, सांस्कृतिक शब्दों का खुलासा किया जाना अपेक्षित है। शब्दों के व्युत्पत्ति जन्य एवं पारंपरिक अर्थों की समीचीनता को उद्-घाटित करने के कारण ही 'श्री अभिधान राजेन्द्र कोष' जैसे प्रामाणिक ग्रंथ विश्व भर में समादृत हुए हैं।

संस्कृति के पक्ष से ही अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ राज और समाज का प्रश्न भी है। ऐतिहासिक उल्लेखों की जो प्रामाणिकता जैन विद्वानों की रचनाओं से सिद्ध हुई है उसकी तुलना में हमारा दूसरा पारम्परिक साहित्य नहीं ठहरता। इसका मुख्य कारण तो यही हो सकता है, कि जैनधर्माचार्य निरन्तर विहार करते रहने के कारण हरेक स्थान से संबंधित घटनाओं के विश्वस्त तथ्यों से परिचित हो सकते थे। इसी निजी संपर्क से लोक व्यवहार एवं सामाजिक रीति-नीति का भी निकटतम और सहज अध्ययन संभव था। निरन्तर जन सम्पर्क में आते रहने से लोक मानस के अन्तराल का वैज्ञानिक अध्ययन एवं मनोवृत्तियों का सम्यक् विश्लेषण भी उनके लिए सहज बन गया था। किसी भी साहित्यकार के लिए देश-देशांतर का इस प्रकार का निरीक्षण अत्यन्त श्रेयस्कर है। पर अनेक कारणों से ऐसा करना विरले ही लोगों के वश की बात है। जैनाचार्यों ने चूंकि इसे जीवन का एक अति आवश्यक अंग बना लिया था, अतः उनके लिए यह साहित्यिक सामर्थ्य का एक कारण भी बन गया है। इस प्रकार के चतुर्दिक में रहने के कारण

ही जैन रचनाओं में राज, समाज और संस्कृति की अमूल्य सामग्री समाहित हो सकी है ।

प्रस्तुत संकलन में आए हुए कवियों की रचनाओं का सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन मध्यकालीन समाज और संस्कृति के अनेक अज्ञात अथवा अल्पज्ञात पक्षों को उजागर कर सकता है । यह हर्ष का विषय है कि डा. कासलीवाल ने इस दिशा में संकेत करते हुए अपने संपादकीय आलेखों में यह शुभारम्भ कर दिया है । आधुनिक विश्वविद्यालयों में शोधरत छात्रों द्वारा ऐसे लघुशोध प्रबंध तैयार करवाये जाकर इस प्रयत्न को आगे बढ़ाया जा सकता है । कालान्तर में ऐसे ही प्रयासों से 'विशाल भारतीय संस्कृतिकोश' का निर्माण संभव हो सकेगा -

प्रस्तुत संकलन के संपादन व प्रकाशन के लिए श्री महावीर ग्रंथ अकादमी से संबद्ध सभी सुधीजन, विशेषतः डा. कासलीवाल, सभी साहित्य प्रेमियों के साधुवाद के पात्र हैं ।

डी २८२, मीरां मार्ग बनीपार्क,
जयपुर ।

रावत सारस्वत

लेखक की ओर से

"कविवर बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज" पुस्तक को पाठकों के हाथों में देते हुये मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है। विशाल हिन्दी जैन साहित्य के प्रमुख कवियों में उक्त तीनों ही कवियों का प्रमुख स्थान है। ये १७ वीं १८ वीं शताब्दि के चमकते हुये प्रतिभा सम्पन्न कवि थे जिन्होंने अपनी महत्वपूर्ण कृतियों से तत्कालीन समाज एवं स्वाध्याय प्रेमियों को गौरवान्वित किया था। यह भी प्रसन्नता की बात है कि तीनों ही कवियों का आगरा से विशेष सम्बन्ध था जहाँ महाकवि बनारसीदास जैसे कवि उनके पूर्व हो चुके थे।

उक्त तीन कवियों में बुलाखीचन्द का नाम हिन्दी जगत के लिये एक दम अनजाना है। आज तक किसी भी विद्वान् ने उनके नाम का उल्लेख नहीं किया इसलिये ऐसे अचर्चित कवि को हिन्दी जगत् के सामने प्रस्तुत करने में और भी प्रसन्नता होती है। बुलाखीचन्द की एक मात्र कृति 'वचन कोश' की अभी तक उपलब्धि हो सकी है किन्तु यही एक मात्र कृति उनके व्यक्तित्व को जानने/परखने के लिये पर्याप्त है। कवि ने अपनी पद्यात्मक कृतियों में बीच २ में हिन्दी गद्य का प्रयोग करके उस समय के चर्चित गद्य का भी हमें दर्शन करा दिया है। हिन्दी गद्य साहित्य के विकास को जानने के लिये भी 'वचन कोश' एक महत्त्वपूर्ण कृति है। लगता है कवि साहित्यिक होने के साथ इतिहास प्रेमी भी थे इसलिये उन्होंने अपने इस कोश में अग्रवाल जैन जाति की उत्पत्ति, काष्ठा संघ का इतिहास, जैसवाल जैन जाति की उत्पत्ति का इतिहास, भगवान महावीर के सम वसरण का जैसलमेर में आगमन जम्बू स्वामी का कैवल्य एवं निर्वाण जैसी ऐतिहासिक बातों का अच्छा वर्णन किया है। प्रस्तुत भाग में हम वचन कोश के पूरे पाठ नहीं दे पाये हैं कुछ प्रमुख पाठ देकर ही हमें सन्तोष करना पड़ा है।

इस भाग के दूसरे कवि बुलाकीदास हैं जिनका पाण्डवपुराण अत्यधिक लोकप्रिय ग्रंथ माना जाता है। बुलाकीदास ने पाण्डवपुराण एवं प्रश्नोत्तरश्रावकाचार-दोनों ही ग्रन्थों का निर्माण अपनी माता जैनुलदे की प्रेरणा से किया था। सारे साहित्यिक जगत् में पंडिता जैनुलदे जैसी आदर्श एवं स्वाध्यायशीला महिला का मिलना कठिन है। बुलाकीदास का पाण्डवपुराण काव्य की दृष्टि से भी एक सुंदर कृति है जिसमें महाभारत के पात्रों का बहुत ही उत्तम रीति से वर्णन हुआ है। एक जैन कवि के द्वारा युद्ध का इतना सांगोपांग वर्णन अन्य काव्यों में मिलना कठिन है।

इस भाग के तीसरे कवि हैं पाण्डे हेमराज। लेकिन हेमराज एक कवि ही नहीं है। एक समय में हेमराज नामके चार कवि मिलते हैं जिनमें दो तो बहुत उच्चश्रेणी के कवि हैं। हेमराज पाण्डे का नाम हम सब जानते अवश्य हैं लेकिन उनके काव्यों की महत्ता एवं कला से अनभिज्ञ रहे हैं। हेमराज आचार्य कुन्द-कुन्द के बड़े भारी भक्त थे इसलिये उन्होंने प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों पर हिन्दी गद्य में टीका लिखी और फिर समयसार एवं प्रवचनसार को छन्दों में लिखकर हिन्दी जगत् को अध्यात्म साहित्य को स्वाध्याय के लिये सुलभ बनाया। पाण्डे हेमराज के ग्रन्थों का गद्य भाग भाषा के अध्ययन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है किस प्रकार जैन विद्वानों ने हिन्दी भाषा की अपूर्व सेवा की थी इस सबसे इन ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् अच्छी तरह परिचित हो सकते हैं। वास्तव में हेमराज अपने समय के जबरदस्त विद्वान् थे तथा समाज द्वारा समादृत कवि माने जाते थे।

पाण्डे हेमराज के अतिरिक्त एक दूसरे कवि थे हेमराज गोदीका। वे मूलतः सांगानेर थे लेकिन कामां जाकर रहने लगे थे। ये भी आध्यात्मिक कवि थे कुन्द-कुन्द के प्रवचनसार पर उनकी अगाध श्रद्धा थी। इसलिये उन्होंने भी इसे हिन्दी पद्यों में गूंथ दिया। उनकी दूसरी रचना उपदेश दोहा शतक है। जिसका पूरा पाठ इस भाग में दिया गया है। हेमराज गोदीका अपने समय के सम्मानित कवि थे। इसी तरह उसी शताब्दि में दो और हेमराज नाम के कवि हुए जिन्होंने भी अपनी लघु रचनाओं से हिन्दी जगत को उपकृत किया।

प्रस्तुत भाग में बुलाखीचन्द के वचनकोश बुलाकीदास के पाण्डवपुराण, हेमराज पाण्डे का प्रवचनसार (पद्य), हेमराज गोदीका के उपदेश

दोहाशतक (पूरी कृति) एवं प्रवचनसार (हिन्दी पद्य) के कुछ प्रमुख पाठों को दिया गया है । आशा है पाठक गण उनके अध्ययन के पश्चात् कवियों की काव्य प्रतिभा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।

सम्पादक मंडल

प्रस्तुत भाग के सम्पादन में माननीय रावत सारस्वत जयपुर, डा० हुकमचन्द भारिल्ल, डा० हरीन्द्र भूषण जैन उज्जैन एवं श्रीमती शशिकला बाकलीवाल जयपुर का जो सहयोग मिला है उसके लिये मैं उनका पूर्ण आभारी हूँ । श्री रावत सारस्वत ने जो सम्पादकीय लिखा है वह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है तथा हिन्दी जैन साहित्य के महत्त्व एवं उसकी उपयोगिता पर विस्तृत प्रकाश डालने वाला है ।

आभार

मैं श्री दि० जैन बड़ा तेरहपंथी मन्दिर जयपुर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री कपूरचन्दजी सा० पापडीवाल, पाण्डे लूणकरणजी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री मिलापचन्दजी बागायतवाले एवं दि० जैन मन्दिरजी ठोलियान के व्यवस्थापक श्री नरेन्द्र मोहनजी झंझिया का आभारी हूँ जिन्होंने अपने २ शास्त्र भण्डारों में से वांछित पाण्डुलिपियां संपादन के लिये देने की कृपा की । आशा है भविष्य में भी आप सबका इसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा ।

मैं आदरणीय श्री रमेशचन्दजी सा० जैन देहली का भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक के लिये दो शब्द लिखने की कृपा की है । जैन सा० का अकादमी को विशेष सहयोग मिलता रहता है ।

अन्त में मैं मनोज प्रिन्टर्स के व्यवस्थापक श्री रमेशचन्दजी जैन का भी आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक के मुद्रण में पूरी तत्परता दिखाई है तथा उसे सुन्दर बनाने में योग दिया है ।

जयपुर

१ मार्च १९८३ **डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल**

विषय-सूची

	पृष्ठ संख्या
१ श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी-प्रगति रिपोर्ट	iii–vi
२ संरक्षक के दो शब्द	vii–ix
३ संपादकीय	x–xiii
४ लेखक की ओर से	xiv–xvi
५ पूर्व पीठिका	१–२
६ कविवर बुलाखीचन्द	३–४४
(i) वचन कोश–मूल पाठ	४५–११५
७ कविवर बुलाकीदास	११६–१५०
(ii) पाण्डवपुराण–मूलपाठ	१५१–२००
८ मुनि हेमराज	२०१–२०४
९ पाण्डे हेमराज	२०४–२२४
१० हेमराज गोदीका	२२४–२२९
११ हेमराज (चतुर्थ)	२२९–२३२

कृतियां–(i) उपदेश दोहा शतक २३३–२४०

(ii) प्रवचनसार भाषा पद्य २४१–२५४

(iii) प्रवचनसार भाषा(कवित्त बंध) २५५–२६४

१२ नामानुक्रमणिका २६५–से

१३ कवर पृष्ठ पर चित्र —कविवर बुलाकीदास पाण्डवपुराण की रचना करते समय अपनी माता जैनुलदे को सुनाते हुए

पूर्व पीठिका

विक्रम की १७वीं शताब्दि समाप्त होने के साथ ही देश में हिन्दी कवियों की बाढ़ सी आगयी। एक ही समय में बीसों कवि होने लगे। प्राकृत, संस्कृत, एवं अपभ्रंश में रचनायें करना बन्द सा हो गया। जन-साधारण भी हिन्दी कृतियों को पढ़ने में सर्वाधिक रूचि दिखलाने लगा। भाषा कवियों का आदर बढ़ गया। कबीर, मीरा, सूरदास एवं तुलसी का नाम उत्तर भारत में श्रद्धा के साथ लिया जाने लगा एवं उनकी रचनाओं ने धार्मिक रचनाओं का स्थान ले लिया। जैन कवि तो प्रारम्भ से ही अपभ्रंश के साथ-साथ राजस्थानी, ब्रज एवं हिन्दी में रचनायें निबद्ध करने में आगे थे। १७वीं शताब्दि के पूर्व कविवर सधारू, राजसिंह, ब्रह्म जिनदास, भ. ज्ञानभूषण, आचार्य सोमकीत्ति, बूचराज, ब्र. यशोधर, छीहल, ठक्कुरसी, ब्रह्म रायमल्ल, भ रत्नकीत्ति, कुमुदचन्द, बनारसीदास, रूपचन्द जैसे प्रभावी जैन कवि हो चुके थे जिन्होंने राजस्थानी एवं हिन्दी में काव्य निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर दिया था तथा जन-मानस में हिन्दी रचनाओं के प्रति गहरी श्रद्धा उत्पन्न कर दी थी। पाठकों की इस श्रद्धा से हिन्दी कवियों को अत्यधिक बल मिला और उन्होंने विविध संज्ञा परक रचनाओं के निबद्ध करने में अपने आपको समर्पित कर दिया।

१६वीं, १७वीं एवं १८वीं शताब्दि में एक ओर गुजरात एवं बागड़ प्रदेश हिन्दी एवं राजस्थानी कवियों का केन्द्र बना रहा तो दूसरी ओर आगरा नगर जैन कवियों के लिये तीर्थ बनने लगा। गुजरात एवं बागड़ प्रदेश में भट्टारकों एवं उनके शिष्य प्रशिष्यों का जोर था। वे चरित, रास, बेलि, कथा एवं भक्ति परक रचनाओं को निबद्ध करने में लगे हुए थे तो दूसरी ओर आगरा जैसे नगर में अध्यात्मवादी कवियों का जोर था और वे समयसार नाटक एवं आध्यात्मिक कृतियों के लिखने में झूम रहे थे। आत्म तत्व के प्रेमी ये कवि देश में एक नयी लहर फैलाने में लगे हुए थे। इसलिये कविवर बनारसीदास एवं उनकी मंडली के कवि रूपचन्द, कौरपाल जैसे कवियों ने दिन-रात एक करके पचासों आध्यात्मिक रचनायें लिखने में सफलता प्राप्त की जिनका देश के सभी भागों में जोर का स्वागत हुआ। बनारसी-

दास तो उत्तरी भारत में स्वाध्याय प्रेमियों के लिये आदर्श बन गये। उत्तर में मुलतान एवं दक्षिण में राजस्थान, मध्यप्रदेश, देहली आदि सभी स्वाध्याय केन्द्रों पर समयसार नाटक, बनारसी विलास जैसी कृतियों की स्वाध्याय एवं चर्चा होने लगी।

यहां यह उल्लेखनीय है कि अधिकांश कवियों के संरक्षक विभिन्न भट्टारक थे जो अपने समय के सर्वाधिक प्रतिष्ठित जैन सन्त के रूप में समादृत थे। राजस्थान में आमेर, सांगानेर, अजमेर, नागौर जैसे नगर इनके केन्द्र थे जहां पचासों पंडित साहित्य सेवा में लगे रहते थे। लेकिन आगरा केन्द्र से सम्बन्धित कवि भट्टारकों के अधिक सम्पर्क में नहीं थे। बनारसीदास ऐसे कवियों के आदर्श थे। इसलिये संवत् १७०१ से १७५० तक के काल को बनारसीदास का उत्तरवर्ती काल के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। इस अवधि में आगरा, कामां, सांगानेर, आमेर, टोडारायसिंह जैसे नगर हिन्दी कवियों के प्रमुख केन्द्र थे। हमारे तीनों चर्चित कवि बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज इसी अवधि में होने वाले कवि थे जिनका प्रस्तुत भाग में विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इन पचास वर्षों में मनोहरलाल, हीरानन्द, खड्गसेन, अचलकीर्ति, रामचन्द्र, जगतराम, जोधराज, नेमिचन्द्र, भैया भगवतीदास, आनन्दघन जैसे पचासों कवि हुए जिन्होंने अपनी सैकड़ों रचनाओं से हिन्दी के भण्डार को समृद्ध बनाने में सफलता प्राप्त की। इन सभी कवियों का विशेष अध्ययन अकादमी के आगे के भागों में किया जावेगा।

कविवर बुलाखीचन्द

बुलाखीचन्द हिन्दी विद्वानों के लिये एक दम नया नाम है। क्या जैन एवं क्या जैनेतर विद्वानों में से किसी ने भी कविवर बुलाखीचन्द के विषय में अभी तक नहीं लिखा है। इसलिये अकादमी के प्रस्तुत भाग में एक अज्ञात कवि का परिचय देते हुए हमें भी अत्यधिक प्रसन्नता है। इसके पूर्व भी अकादमी के दूसरे भाग में गारवदास, चतुर्थ भाग में आचार्य जयकीर्ति, राघव, कल्याण सागर तथा पंचम भाग में ब्रह्म गुणकीर्ति जैसे अज्ञात कवियों का परिचय दिया जा चुका है लेकिन बुलाखीचन्द उन सबसे विशिष्ट कवि थे तथा अपने समय के प्रतिनिधि कवि थे।

जीवन परिचय :

कविवर बुलाखीचन्द जैसवाल जाति के श्रावक थे। जैसवाल जाति की उपरोतिया एवं तिरोतिया इन दो शाखाओं में से बुलाखीचन्द तिरोतिया शाखा में उत्पन्न हुये थे। उनके पितामह का नाम पूरणमल एवं पितामह का नाम प्रताप था। वे राजाखेड़ा के चौधरी थे तथा उनकी आगरा तक धाक् थी।[1] प्रताप जैसवाल के पांच पुत्र थे जिनमें सबसे छोटे लालचन्द थे।

लालचन्द के पुत्र का नाम जिमचन्द था लेकिन सभी परिवार वाले उसे बुलाखीचन्द के नाम से पुकारते थे।[2] लेकिन वे कौनसे संवत में पैदा हुए, माता का नाम

---

१. कारज गाम गोत परनए इहि विधि जैसवाल बरनए।
उपरोतिया गोत छत्तीस, तिरोंतिया गनि छह चालीस ।।७४।।
तिरोंतिया तिनि में एक जानि, पूरण अवन प्रताप सुव जानि।
राजाखेरा की चउधरी, आगलपुर को मानु जु धरी ।।७५।।

२. ताके पांच पुत्र अभिराम, अनुज लालचन्द तसु नाम।
ता सुत होये प्रीति जिमचन्द, सब कोऊ कहे बुलाखीचन्द ।। ७७ ।।

गया था तथा उनका बचपन एवं युवावस्था किस प्रकार व्यतीत हुई इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती। लेकिन इतना अवश्य है कि आगरा से विशेष सम्बन्ध होने के कारण कवि को अच्छी शिक्षा मिली होगी। प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी भाषा का उन्हें अच्छा ज्ञान था तथा काव्य रचना में उनकी रुचि थी। उनका कवि हृदय था।

संवत् १७३७ के पूर्व उनके हृदय में एक ऐसे ग्रंथ निर्माण करने का भाव आया जिसमें जिन कथा दी हुई हो। कवि के वृन्दावन एवं सागरमल ये दो मित्र थे। जब कवि को काव्य रचना की इच्छा हुई तो उसने अपने इन दोनों मित्रों से चर्चा की और उन दोनों की आज्ञा लेकर बचनकोश की रचना कर डाली।[1] दोनों मित्र जिनधर्मी एवं परम पवित्र थे। सभी उनका सम्मान करते थे। दोनों को जैन-धर्म का अच्छा ज्ञान था। ग्रंथ पूरा होने पर उसका नाम बचनकोश रखा गया। कवि ने लिखा है कि बचनकोश नाम ही अत्यधिक उज्वल माना गया।[2]

रचना काल एवं रचना स्थान

बचनकोश की रचना संवत् १७३७ वर्ष में वैशाख सुदी अष्टमी के शुभ दिन समाप्त हुई थी। उस दिन सोमवार था। कवि ने सोमवार का 'नीस' नाम दिया है। रचना स्थान बर्द्धनपुर था जो उस समय एक सुन्दर नगर था तथा वहाँ के निवासियों में अपनी बुद्धि पर गर्व था।

संवत सत्रहसै बरस ऊपरि सप्त अरु तीस।
बैशाख अंधेरी अष्टमी, बार बरनऊ नीस ॥ ८३ ॥
बर्द्धनपुर नगरी सुभग, तहाँ बुद्धि को जोस।
रच्यो बुलाखी चन्द ने, भाषा बचन जुकोस ॥ ८४ ॥

---

१. तासु हिरदै उपजी यह आनि, कीजे क्यों जिन कथा बखान।
वृन्दावन सागरमल मित्र जिनधरमी अरु परम पवित्र ॥ ७८ ॥

२. तिनकी आज्ञा ले सिर धरी, बचनकोश की रचना करी।
भाषा ग्रंथ भयो अति भलो, बचनकोश नाम जु उजलो ॥ ७९ ॥

वर्द्धनपुर कौनसा नगर था तथा वर्तमान में उसका क्या नाम है यह खोज का विषय है किन्तु हमारे विचार में यह नगर मथुरा के पास होना चाहिये क्योंकि जैसवाल जैन समाज त्रिभुवनगिरी को छोड़ कर मथुरा आ चुका था। यहीं पर जम्बू स्वामी को कैवल्य एवं निर्वाण की प्राप्ति हुई थी इसलिये वृन्दावन का नाम ही वर्धनपुर होना चाहिये। वृन्दावन मथुरा के समीप ही है और कभी वहाँ जैसवाल जैन समाज की अच्छी संख्या रही होगी।[1]

बचनकोश का महात्म्य

कवि के अनुसार बचनकोश कोई साधारण रचना नहीं है किन्तु यह एक ऐसा ग्रंथ है जिसको पढ़ने से मिथ्याज्ञान दूर हो जाता है तथा जिनवाणी के अतिरिक्त अन्य किसी की बात अच्छी नहीं लगती। उसके स्वाध्याय से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। जो स्त्री पुरुष इसका रुचि पूर्वक श्रवन करते हैं उनके घर में लक्ष्मी का निवास हो जाता है। जो इसका मनन करते हैं उनके किसी प्रकार का भी रोग नहीं आता। बचनकोश की तो इतनी अधिक महिमा है जिसका वर्णन करना भी कवि के लिए संभव नहीं है। क्योंकि उसके पठन पाठन एवं श्रवण मात्र से भी बुद्धि एवं बल दोनों की वृद्धि होती है तथा उसे मान सम्मान भी मिलता है।[2]

बचनकोश विलास सदृश रचना है जिसमें गद्य पद्य वाली रचनाओं का संग्रह रहता है। लेकिन बचनकोश की एक यह विशेषता है कि इसमें कवि ने कोश के

---

१. छांडि त्रिभुवन गिरी उठि धाइयौ, जैसवाल वरू आनियो।
प्रभु दरसन लइए नगिहंड, दुरमति करि मारि सत खंड ॥ ७१ ॥
जम्बू स्वामि भयो निरवान, पाई पंचम गति भगवान।
जैसवाल रहैं तिही ठाम, मन मान्यो जु करइ कांम ॥ ७३ ॥

२. जिनसे साधु पठत मिथ्यात, सांची लगे न परमत बात।
क्षयोपशम को कारण यही, बचनकोश प्रगट्यो यह मही ॥ ८० ॥
श्रवन करैं रूचि सं नरनारि, लक्ष्मी होइ शुभग निरधार।
लक्ष्मी होइ, न रोग आकुलौ, याके पढ़े होइ मति जु भलौ ॥८१ ॥
जिनवानी की कीरति घनी, कहां लौ बरनि सकै नहीं मनी।
सुन साधु न पावैं पार, मांनि सकति जु बुधि बलसार ॥ ८२ ॥

रूप में रचनायें लिखी है। उसने अपनी रचना में अपने दो मित्रों के नामों के अतिरिक्त अपने पूर्ववर्ती अथवा समकलीन कवियों का नामोल्लेख तक नहीं किया। इससे यह स्पष्ट लगता है कि कवि अन्य कवियों के सम्पर्क में नहीं थे तथा स्वयं ही अपनी ही धुन में काव्य रचना किया करते थे।

वचनकोश किसी सर्ग अथवा अध्याय में विभक्त नहीं है लेकिन जब किसी का वर्णन समाप्त होता है तो उस विषय की समाप्ति लिख दी गयी है। यही उसकी विभाजन रेखा है। वैसे कवि ने तो विषय का इस प्रकार प्रतिपादन किया है कि उससे बिना सर्ग अथवा अध्याय के भी काम चल जाता है।

वचनकोश का अध्ययन

वचनकोश का प्रारम्भ मंगलाचरण से किया गया है। जिसमें पंचपरमेष्ठी रूपी समयसार के चरणों की वन्दना की गयी है। पंच परमेष्ठियों में सिद्ध परमेष्ठी को देव शब्द से अभिहित किया गया है तथा अरहन्त, आचार्य, उपाध्याय एवं सर्व साधु को गुरु के रूप में स्मरण किया गया है। सिद्ध परमेष्ठी पंच ज्ञान के धारी हैं। वे वर्ण, गंध एवं शरीर से रहित हैं। अविनाशी है, विकार रहित हैं तथा लघु गुण रहित है। अर्हंत परमेष्टी अनन्त गुणो के धारक हैं, परम गुरु हैं तथा तीनों लोकों के इन्द्रों द्वारा पूजित है।[8] इसी तरह आचार्य, उपाध्याय एवं साधु परमेष्टी का गुणानवाद किया है

ऋषभदेव की स्तुति

पंचपरमेष्टी को नमन करने के पश्चात् कवि ने २४ तीर्थंकरों की स्तुति की है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव थे जिनके नाभिराय एवं मरुदेवी पिता एवं माता थे। उनका शरीर पांचसौ योजना था। उनका देह स्वर्ण के समान था। वे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुये थे। चैत्र कृष्णा नवमी जिनकी जन्म तिथि है

---

१. समयसार के पंच नमुं, एक देव गुरु च्यारि।
   परमेष्ठि तिनिस्यौं कहुं, पंच ज्ञान गुण धार॥ १॥

२ वरण गंध काया नहीं, अविनाशी अविकार।
   गुरु लघु गुण विनु देव यह, नमों सिद्ध समसार॥ २॥

३ श्री जिनराज अनन्त गुण, जगत परम गुरु एव।
   अध ऊरध मधि लोक के, इन्द्र करे शत सेव॥ ३॥

ऋषभदेव को तीर्थंकर के रूप में जन्म लेने के लिये १२ भवों तक साधना करनी पड़ी थी। चैत्र सुदी की नवमी को उन्होंने गृह त्याग किया था। साधु अवस्था में सर्व प्रथम उन्हें एक वर्ष तक निराहार रहना पड़ा और फिर हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस के यहां सर्व प्रथम इक्षु रस का आहार लिया था। वट वृक्ष के नीचे उन्होंने केश लोंच किया तथा फागुण सुदी ग्यारस के दिन प्रातः उन्हें कैवल्य हो गया। उनका समवसरण १२ योजन विस्तार वाला था जिसकी रचना इन्द्रों ने की थी। ऋषभदेव के ८४ गणधर थे। अन्त में माघ सुदी १४ को पद्मासन से उन्हें निर्वाण की प्राप्ति हुई और सदा सदा के लिये जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति प्राप्त की। कवि ने अन्त में यह भी कहा है कि जो व्यक्ति इस दिन का उपवास करता है उसे पुनः मनुष्य भव की प्राप्ति होकर अन्त में निर्वाण पद प्राप्त हो सकता है। ऋषभदेव की पूरी स्तुति १० पद्यों में समाप्त होती है।

२ अजित नाथ की स्तुति

अजितनाथ दूसरे तीर्थंकर थे जो ऋषभदेव के लाखों वर्ष पश्चात् हुए थे। अयोध्या उनका जन्म स्थान था। राजा जितरिपु उनके पिता एवं विजया उनकी माता थी। हाथी उनका लाञ्छन था। वे भी इक्ष्वाकु वंश में पैदा हुये थे। माघ सुदी नवमी उनका जन्म दिन था। चैत्र शुक्ला पंचमी को उन्होंने गृह त्याग कर साधु दीक्षा ली। तीन दिन निराहार रहने के पश्चात् ब्रह्मदत्त राजा के यहां गाय के दूध का उनका आहार हुआ। जम्बु वृक्ष के नीचे उन्होंने तप करना प्रारम्भ किया। और अन्त में माघ शुक्ला दशमी के दिन संध्या समय उन्हें कैवल्य प्राप्त हुआ। उन्होंने सम्मेदशिखर पर खड़े रहकर तपः साधना की और अन्त में उसी पर्वत से पोष सुदी एकम के दिन उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।[1]

---

१. सागर लाख करोरि पचास, बीते अजितनाथ परगास।
जितरिपु राजा विजया मात, गज लांछन हाटक समगात ॥१॥
पुरी अजोध्या जनम कल्याण, तीनि भवांतर तें भयो जान।
धनक चारिसै साठै काय, लाख बहत्तर पूरब आयु ॥२॥
वंश इषाक नवे गिनि धार, तीन दिवस अंतर आहार।
धेनु खीर पीयौ मुनि देह, ब्रह्मदत्त नृप वनिता गेह ॥३॥

शेष पृष्ठ ८ पर

३ संभवनाथ

तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ थे जो अजितनाथ के निर्वाण के लाखों वर्ष पश्चात् हुए। सावित्री नगरी के राजा जितारथ के यहाँ फागुण सुदी पूर्णिमा के दिन इनका जन्म हुआ। उनका वंश भी इक्ष्वाकु वंश था। उनका शरीर हेम वर्ण का था जो ४०० धनुष ऊंचा था। पर्याप्त समय तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् चैत्र शुक्ला षष्टी को वैराग्य ले लिया। शाल वृक्ष के नीचे वे तपस्या करने लगे और अन्त में कार्त्तिक की पूर्णिमा को मध्याह्न में कैवल्य हो गया। कार्त्तिक सुदी चतुर्थी को सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त किया। निर्वाण प्राप्ति के समय वे खड्गासन अवस्था में थे। संभवनाथ का चिह्न घोड़ा है जो कवि के शब्दों में "तुरंग पवन गति ध्वज आकार" है।

४ अभिनन्दन नाथ

अभिनन्दन नाथ चतुर्थ तीर्थंकर हैं जिनका जन्म अयोध्या में इक्ष्वाकु वंश के राजा समरराय के यहाँ हुआ। उनकी देह स्वर्ण के समान थी। माघ शुक्ला द्वादशी

जंबु वृक्ष तलें तप लियो, रत्नत्रय व्रत निर्मल कियो।
समोसरण श्री जिनवर तनों, जोजन साढे ग्यारह भणों ॥४॥
बरननि सकों अलप मोहि ज्ञान, सांझ समें भयो केवलज्ञान।
बहुविधि राज विभूति विलास, ताहि त्यागी पाई सुख राशि ॥५॥

सोरठा

ठाड़े जोगाभ्यास कियो सिद्ध सम्मेद पर।
पहुचे अविचल वास सकल करम वन दहन के ॥६॥

दोहा

जेष्ठ वदि मावस गरभ, जनम माघ सुदि नौमि।
चैत्र सुदि पांचै सु तप, ध्यान अगनि कर्म होमि ॥७॥
माघ महीना शुकल पक्ष, दशमी तिथि को ज्ञान।
पूस उज्यारी प्रतिपदा, ता दिन प्रभु निर्वाण ॥८॥

के दिन उनका जन्म हुआ और इसी तिथि को घोर तपः साधना के पश्चात् कैवल्य हुआ। अन्त में पौष शुक्ला चतुर्दशी को सम्मेदाचल से मोक्ष प्राप्त किया। अभिनन्दन स्वामी का चिह्न बन्दर है।

५ सुमतिनाथ

कवि ने अभिनन्दन नाथ की स्तुति के पश्चात् पांचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ की स्तुति की है सुमति नाथ का प्रादुर्भाव जैन सन्तों को प्रतिबोध देने के लिये हुआ था। उनका जन्म कौशल देश के राजा मेघराय के यहाँ हुआ था। मंगला उनकी माता का नाम था। जिनका इक्ष्वाकु वंश था। वे सुवर्ण वर्ण की देह वाले थे। वैशाख शुक्ला नवमी के दिन उनका जन्म हुआ था। चैत्र शुक्ला एकादशी को उन्होंने राजा सम्पदा परिवार स्त्री एवं पुत्र को छोड़ कर साधु दीक्षा ले ली। घोर तपः साधना एवं विहार के पश्चात् उन्हें कैवल्य हो गया। वे सर्वज्ञ बन गये। देवों ने समवसरण की रचना की जहाँ से सुमतिनाथ ने जगत् को सुख शान्ति का सन्देश दिया और अन्त में कायोत्सर्ग अवस्था में निर्वाण प्राप्त किया।

६ पद्मप्रभु

ये छट्ठे तीर्थंकर थे जो सुमति के निर्वाण के पश्चात् हुए। इनके पिता कौशाम्बी के राजा थे जिनका नाम धुर था। रानी सुसीमा उनकी माता थी। कमल पद्मप्रभु का निशान है। फागुण कृष्णा चतुर्थी के दिन उनका जन्म हुआ। पदमप्रभु भी अपनी राज्य सम्पदा को छोड़ कर कार्तिक बुदी तेरस के दिन मुनि दीक्षा धारण करली। वे दिगम्बर बन गये और घोर तपस्या करने लगे। पद्मप्रभु ने सर्व प्रथम प्रियगु वृक्ष के नीचे तपस्या की थी। मंगलपुर के राजा सोमदत्त के यहाँ आपका सर्व प्रथम आहार हुआ। बहुत वर्षों तक तप करने के पश्चात् कार्तिक सुदी तेरस के दिन ही कैवल्य हो गया। उस समय गोधूलि का समय था। सम्मेदाचल से खड्गासन अवस्था में आपने निर्वाण प्राप्त किया।

७. सुपार्श्वनाथ

सुपार्श्वनाथ सातवें तीर्थंकर थे जिनका स्मरण मात्र ही दुःखों एवं अशान्ति का विनाशक है। वाराणसी नगरी के राजा के यहाँ जन्म हुआ। स्वस्तिक आपका लांछन है। आपकी देह नील वर्ण की थी। जन्म से ही वे तीन ज्ञान के धारी थे।

स्वस्तिक उनका निशान है। साधु बनने के पश्चात् उन्होंने काफी समय तक तपस्या की थी थी। अन्त में उन्हें कैवल्य हो गया। अपने समवसरण से उन्होंने शान्ति का सबको सन्देश सुनाया। फागुण बदी षष्टी के शुभ दिन सम्मेदाचल से उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ।

८. चन्द्रप्रभ

आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ हैं जिनकी स्तुति करते हुये कवि ने लिखा है कि चन्द्रप्रभ का जन्म पौष बदि ग्यारस के दिन चन्द्रपुरी के राजा महासेन एवं रानी लछमा के यहाँ हुआ। उनके पिता भी इक्ष्वाकु वंशी राजा थे। चन्द्रप्रभ को तीर्थंकर अवस्था पूर्व के सात जन्मों की लगातार तपः साधना के पश्चात् प्राप्त हुई थी। तीर्थंकर चन्द्रप्रभ को राज्यवैभव, परिवार एवं सम्पदा अच्छी नहीं लगी इसलिये फागुण बुदी सप्तमी के दिन उन्होंने वैराग्य धारण कर लिया। नाग वृक्ष के नीचे बैठकर वे ध्यान करने लगे। सर्व प्रथम चन्द्रदत्त के यहाँ आहार हुआ। लम्बे समय तक तपः साधना के पश्चात् उन्हें पहिले कैवल्य हुआ और फिर निर्वाण प्राप्त किया।

९. पुष्पदन्त

चन्द्रप्रभ के पश्चात् पुष्पदन्त हुये। जिनका जन्म पोष सुदी एकम को हुआ। उनका जन्म स्थान काकन्दी नगर था। सुग्रीव पिता एवं रामा माता का नाम था। उनका लांछन मगर है। उनके देह की आकृति चन्द्रमा के समान है। भादवा सुदी अष्टमी को पुष्पदन्त ने घर बार छोड़ कर वैराग्य धारण कर लिया तथा सर्व प्रथम गोरस का आहार लिया। तपः साधना के पश्चात् उन्हें अगहन सुदी प्रतिपदा के दिन संध्या समय कैवल्य हुआ। उनके ८० गणधर थे जो उनके सन्देश की व्याख्या करते थे। उनके समोसरण की लम्बाई आठ योजन प्रमाण थी। अन्त में सम्मेदाचल से कात्तिक सुदी द्वितीया के दिन निर्वाण प्राप्त किया।

१०. शीतलनाथ

दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ स्वामी थे जिनका जन्म भागलपुर के राजा दृढरथ के यहाँ हुआ था। शीतलनाथ का शरीर नब्बें धनुष का था। पर्याप्त समय तक उनका मन सांसारिक कार्यों में नहीं लगा और आसोज सुदी अष्टमी को दिगम्बर

दीक्षा धारण कर ली। कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् इन्हें पौष बुदी चतुर्दशी को सम्मेदाचल से निर्वाण की प्राप्ति हुई और सदा के लिये जन्म मरण के चक्कर से छूट गये। राज्य शासन करते हुए इन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ था। शीतलनाथ का वर्णन ६ पद्यों में समाप्त होता है।

११. श्रेयान्स नाथ

एक लम्बे अन्तराल के पश्चात् भारत देश के आर्य खण्ड में सिंघपुरी के राजा विभव के यहाँ श्रेयान्सनाथ का जन्म हुआ। उस दिन फागुण बुदी एकादशी थी। इनकी देह का रंग स्वर्ण के समान था। पहिले इन्होंने राज्य सुख भोगा और फिर श्रावण सुदी पूर्णिमा के दिन घर बार त्याग करके दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। सर्व प्रथम ये तेंदू वृक्ष की सघन छाया में बैठकर ध्यानासक्त हुये और अन्त में फागुण सुदी एकादशी की प्रभात वेला मंगल वेला में सर्वज्ञता प्राप्त की। सम्मेदाचल पर ये ध्यानास्थ हुये और माघ बुदी अमावस के दिन मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त किया।

१२ वासुपूज्य स्वामी

वासुपूज्य स्वामी १२ वें तीर्थंकर थे। उनका जन्म चंपापुरी नगरी में हुआ था। फागुण बदि चतुर्दशी उनकी जन्म तिथि मानी जाती है। उनकी माता का नाम जयादेवी था। पर्याप्त समय तक गृहस्थाश्रम में रहने के पश्चात् भादवा सुदी चौदश को उन्होंने गृह त्याग दिया। उसी समय केश लोंच किया मुनि दीक्षा धारण कर ली। सिद्धार्थ पुरी के राजा सुन्दर के यहाँ गाय के दूध का आहार किया। कोशाम्बी नगर में वासुपूज्य स्वामी को कैवल्य प्राप्त हुआ। कैवल्य के पश्चात् उनका देश के विविध भागों में विहार हुआ और अन्त में माघ सुदी पचमी को निर्वाण प्राप्त किया। वासुपूज्य तीर्थंकर का भैंसा चिह्न माना गया है।

१३ विमलनाथ

कपिलापुरी में जन्म लेने वाले विमलनाथ १३ वें तीर्थंकर हैं। उनके पिता राजा कृतवर्मा एवं रानी श्यामा माता थी। वे इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्रिय थे। विमल नाथ का शरीर स्वर्ण के समान था। विमल नाथ भी राज्य सुख से घृणा करने लगे और तपस्या के लिये घर बार छोड़ दिया और जंबु वृक्ष के नीचे तपः साधना

करने लगे। पाटन के वीर राजा के यहाँ उनका प्रथम आहार हुआ। जब उन्हें कैवल्य हुआ तो उस समय संध्या काल था। देवों द्वारा उनका समवसरण लगाया गया। अन्त में उन्होंने सम्मेदशिखर से महानिर्वाण प्राप्त किया। उस समय वे खड्गासन अवस्था में तपः लीन थे। उस दिन जेठ बुदी अमावस्या थी। विमल नाथ का लांछन सुअर है।

१४ अनन्तनाथ

अनन्तनाथ १४ वें तीर्थंकर थे जो विमल नाथ के पश्चात् माघ शुक्ला तेरस के शुभ दिन पैदा हुए थे। वे इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्रिय थे। जन्म में ही तीन ज्ञान के धारी थे उन्हें राज्य सम्पदा अच्छी नहीं लगी इसलिये वैराग्य लेने का निश्चय किया। चैत्र बदी अमावस्या के दिन गृह त्याग कर निर्ग्रन्थ साधु बन गये। घोर तपस्या के पश्चात् ज्येष्ठ कृष्णा एकादशी को कैवल्य हो गया। उनके गणधरों की संख्या ५४ थी। सम्मेदशिखर से उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

१५ धर्मनाथ

धर्मनाथ १५वें तीर्थंकर थे। रत्नपुरी के राजा भानु के घर माघ शुक्ला १३ के दिन उनका जन्म हुआ। वे कुरु वंशीय क्षत्रिय थे। जन्म में ही तीन विशिष्ट ज्ञान के धारी थे। उनके जन्म के दिन माघ शुक्ला तेरस थी। वे भी योग धारण कर वन में घोर तपस्या करने लगे। जब उन्हें कैवल्य हुआ तो उनके गणधरों की संख्या ४० थी। अन्त में सम्मेदशिखर से उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

१६ शान्तिनाथ

इस युग के १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ थे। उनका जन्म गजपुर के राजा विश्वसेन के यहाँ जेठ बुदी १४ को हुआ। उनकी माता का नाम ऐरादेवी था। वे कुरुवंशी क्षत्रिय थे। उनका शरीर स्वर्ण के समान चमकता था। जब वे राज्य सम्पदा से ऊब गये तो सब को छोड़ कर दिगम्बर साधु बन गये। जेठ बदी १३ के दिन उन्हें कैवल्य हो गया। वे सर्वज्ञ बन गये। उस समय संध्या काल था। उनके गणधरों की संख्या ३६ थी। अन्त में सम्मेदाचल से जेठ बुदी १४ के दिन निर्वाण प्राप्त किया।

१७ कुंथनाथ

कुंथनाथ १७ वें तीर्थंकर थे। जिन्होंने सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त किया। बकरी इनका लांछन माना जाता है।

१८ अर नाथ

कुंथ नाथ के पश्चात् अरनाथ तीर्थंकर हुए। राजा सुदर्शन इनके पिता एवं देवी इनकी माता थी। स्वस्तिक इनका लांछन है। चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को कैवल्य एवं अगहन सुदी प्रतिपदा को इन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई।

१९ मल्लिनाथ

मल्लिनाथ १९ वें तीर्थंकर थे। मिथिला पुरी के राजा कुंभ एवं रानी प्रभावती के पुत्र के रूप में इनका जन्म हुआ। इनकी काया स्वर्ण के समान निर्मल थी। कुमारकाल के पश्चात् इन्हें जाति स्मरण होने से वैराग्य हो गया। और अशोक वृक्ष के नीचे इन्होंने दीक्षा धारण कर ली। ये जीवन पर्यंत अविवाहित रहे। कहापुर के राजा नन्दिसेन को मल्लिनाथ को आहार देने का सर्व प्रथम सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनको जन्म, तप और कैवल्य एक ही तिथि पौष बदी २ को प्राप्त हुआ। अन्त में फागुण सुदी पंचमी को इन्होंने सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त किया।

२० मुनिसुव्रत नाथ

मल्लिनाथ के पश्चात् २० वे तीर्थंकर मुनि सुव्रत नाथ हुये जिनकी कवि ने वन्दना की है। राजग्रही नगरी के राजा सुमतिराय इनके पिता थे तथा उनकी रानी पद्मावती माता थी। मुनि दीक्षा लेने के पश्चात् सर्व प्रथम मिथिला के राजा विश्वसेन के यहां इनका आहार हुआ। वैशाख सुदी ९ के शुभ दिन उन्हें कैवल्य हुआ और फागुण बदी एकादशी के दिन सम्मेदशिखर से मोक्ष प्राप्त किया।

२१ नमिनाथ

नमिनाथ २१ वें तीर्थंकर हुये जिनका जन्म वाराणसी नगरी में आषाढ बदी दशमी के दिन हुआ। देवों एवं मनुष्यों तथा तिर्यञ्चों ने भी इनका जन्म महोत्सव मनाया। अन्त में वैशाख बदी १४ को सम्मेदशिखर में निर्वाण प्राप्त किया। इनके १३ गणधर थे।

२२ नेमिनाथ

ये २२ वें तीर्थंकर थे। द्वारावती के राजा समुद्रविजय पिता एवं रानी शिवा-देवी इनकी माता थी। जब ये विवाह पर जाने के लिये तोरण द्वार पर पहुँचे तो पशुओं की पुकार सुनकर वैराग्य हो गया तथा मुनि दीक्षा धारण कर ली। और गिरिनार पर्वत पर जाकर तप करने लगे। कार्तिक शुक्ला ११ को इन्हें कैवल्य हो गया। इनके ११ प्रमुख शिष्य थे जो गणधर कहलाते थे। अन्त में गिरनार पर्वत से आषाढ शुक्ला अष्टमी को निर्वाण प्राप्त किया।

२३ पार्श्व नाथ

पार्श्वनाथ २३ वें तीर्थंकर थे जिनका यशोगान चारों ओर विद्यमान है। वाराणसी में राजा अश्वसेन के यहाँ इनका जन्म हुआ। वामा देवी इनकी माता थी। इनकी शारीरिक ऊंचाई नो हाथ की थी तथा १०० वर्ष की आयु थी। तीर्थंकर पद प्राप्त करने के लिये इन्हें ११ पूर्व जन्मों से तपः साधना करनी पड़ी और पौष बुदी ११ को ये अविवाहित रहते हुए जिन दीक्षा धारण ली। मुनि बनने के पश्चात् राजा धनदत्त के यहाँ इनका प्रथम आहार हुआ। चैत्र बुदी ४ को कैवल्य हुआ। इनके दश गणधर थे। अन्त में वृद्धावस्था में ही श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन निर्वाण प्राप्त किया। इनका निर्वाण स्थल सम्मेदशिखर का उत्तुंग शिखर माना जाता है।

२४ महावीर

महावीर इस युग के अन्तिम तीर्थंकर थे जो पार्श्वनाथ के पश्चात् हुये थे। कुंडलपुर नगरी के राजा सिद्धार्थ एवं रानी त्रिशला के पुत्र रूप में चैत्र शुक्ला १३ को इनका जन्म हुआ। इनका मन राज्य कार्य में नहीं लगा। ये भी अविवाहित ही रहे। मंगसिर कृष्णा १० के दिन इन्होंने राज्य कार्य परिवार को छोड़कर वन में जाकर मुनि दीक्षा धारण कर ली। उस समय इनकी आयु ३० वर्ष की थी। १२ वर्ष तक घोर तपस्या के पश्चात् वैशाख शुक्ला १३ को इन्हें कैवल्य प्राप्त हो गया। वे ३० वर्ष तक लगातार विहार कर जन २ को मार्ग दर्शन देने के पश्चात् कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन पावापुरी से इन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।

कवि ने सभी २४ तीर्थंकरों की स्तुति करते हुए लिखा है जो व्यक्ति उनकी मन वचन काय से प्रातः एवं सायं स्तुति करते हैं उनके मिथ्यात्व रूपी अन्धकार स्वयं दूर हो जाता है ।

ए चौबीस जिनेश्वर नाम, बोले सदा सुख दाय के काम ।
जो मन वच संभा प्रात, सुमिरैं फटै तिमिर मिथ्यात ।।

चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति के पश्चात् कवि ने मध्यलोक एवं उर्द्धलोक के सभी जिन चैत्यालयों की वन्दना की है जो सभी अकृत्रिम हैं शाश्वत हैं एवं जिनकी वन्दना मंगलकारी है । मंगलाचरण के अन्त में सरस्वती की वन्दना की है जो श्वेत वस्त्रधारी है । वीणा से सुशोभित है । वास्तव में तीर्थंकर मुख से निकली हुई वाणी ही सरस्वती है । वही कवियों की जननी है ।[1]

मंगलाचरण के पश्चात् कवि जैसवाल जाति की उत्पत्ति का इतिहास कहना प्रारम्भ करता है[2] और उसके प्रसंग में तीनों लोकों का वर्णन करता है । लेकिन कवि ने तीनों लोकों का वर्णन करने के साथ अपनी लघुता प्रकट की है साथ में यह भी कहा है कि यदि विस्तार से इनका कथन समझना चाहे तो बड़े ग्रंथों को देखना चाहिये ।[3]

मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं इसमें अढाई द्वीप में जंबूद्वीप है जो एक लाख योजन विस्तार वाला है । उसके मध्य में सुदर्शन मेरु पर्वत है उसके उत्तर दक्षिण भाग पर भरत ऐरावत क्षेत्र है मानुषोत्तर पर्वत के वर्णन के पश्चात् असंख्यात अनन्त का गणित भेद, योजन गणित भेद, पल्यायु भेद, पल्यसागर भेद

---

१. श्वेत वस्त्र करि वीना लसें, सुमति रजाह कुमति सब नसें ।
मुख जिन उद्भव मंगल रूप, कवि जननी और परम अनूप ।।

२. नमिता चरण सकल सुख दहौं, जैसवाल उतपति सब कहौं ।
अधो मधि है लोकाकाश, पुरुषाकार बखानें तास ।।६।।

३. अल्प बुद्धि सूक्षम मम ग्यान, अढाई द्वीप तनों बखान ।
करयो संक्षेप परें विस्तार, व्योरो कहत ग्रंथ अधिकार ।।
वाकौ सब व्योरे की चाह, बड़े ग्रंथ देखो अवगाह ।।२६।।

आदि का वर्णन किया गया है। कवि ने पूरब गणित के लिये निम्न संख्या लिखी है—

सत्तरि लाख करोरि मित, छप्पन सहस करोरि ।
इतने वरष मिलाइयें, पूरव संख्या जोरि ।।१।।

षट्काल वर्णन

कवि ने छह काल का वर्णन किया है। ये काल हैं सुषमा सुषमा, सुषमा, सुषमा दुषमा, दुषमा सुषमा, दुखमा एवं दुषमा दुषमा। ये काल चक्र कहलाते हैं

प्रथम तीन काल भोग भूमि काल कहलाते हैं जिसमें मानव कल्पवृक्षों के आधार पर अपना जीवन व्यतीत करता है। अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताएं उन्हीं से पूर्ण करता है। ये कल्पवृक्ष दस प्रकार के बतलाये गये हैं।

सो तरु दश प्रकार बरनये, तिनिके नाम सुनौ गुण जयो ।
सूरज मध्य विभूषा जानि, स्नग अरु ज्योति द्रिप गुण खानि ।
गृह भोजन भाजन अरु भास, सुनि अब इनको दान प्रकाश ।।६।।

कल्पवृक्षों से जब इच्छानुसार वस्तुयें मिल जाती है तो जीवन सुख शान्ति से व्यतीत होता है। प्रथम सुषमा सुषमा काल में माता के युगल सन्तान पैदा होती है और पैदा होते ही माता पिता की आयु समाप्त हो जाती हैं। माता को छींक आती है और पिता जंभाई लेता है। यह दोनों ही मृत्यु का सूचक है। पैदा होने वाले युगल अंगूठा पीकर बड़े होते हैं। वे पति पत्नि के रूप में रहने लगते हैं। प्रथम काल में तीन दिन में एक बार, दूसरे सुषमा काल में दो दिन में एक बार तथा तीसरे काल में एक दिन छोड़कर आहार ग्रहण करते हैं।

तीसरे काल का जब अष्टम अंश शेष रहता है तब कल्प वृक्ष नष्ट होने लगते हैं तब कुलकर जन्म लेते हैं जो मनु कहलाते हैं। वे कुलकर मानव समाज को प्राकृतिक विपत्तियों से सचेत करते हैं तथा मनुष्य को जीने की कला सिखलाते हैं।[1]

---

१. लोपे होइ कल्प द्रुम ज्यौं ज्यौं, कुलकर भाषें आगे त्यौं त्यौं ।
भावी काल बखानें यथा, कहै सकल जीवनि सौं कथा ।।२८।।

ये कुलकर चौदह होते हैं जो एक के बाद दूसरे होते रहते हैं। प्रथम कुलकर का नाम प्रतिश्रुत था तथा अन्तिम नाभि थे।

चतुर्थ काल कर्म भूमि काल कहलाता है जिसमें मुक्ति का मार्ग खुल जाता है तथा मानव असि मसि कृषि वाणिज्य आदि विद्याओं द्वारा अपनी आजीविका चलाता है। एक साथ पैदा होना एवं मरना मिट जाता है। वर्षा होती है खेती होती है लेकिन सदैव सुकाल रहता है।

पञ्चम काल दुषमा काल का ही दूसरा नाम है जो २१ हजार वर्ष का होता है। वर्तमान में पञ्चम काल चल रहा है। इस काल में मुक्ति के द्वार बन्द हो जाते हैं। मनुष्य की आयु १२० वर्ष की होती है। जो जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार आयु के तीसरे भाग में अगले भव का बन्ध होता है। शरीर का त्याग करते ही दूसरा शरीर मिल जाता है।

पंचम काल में कृषि के माध्यम से शरीर का पोषण होगा। सुकाल कम होंगे दुष्काल अधिक। मानव की एक बार के भोजन में भूख नहीं मिटेगी किन्तु दिन में दो तीन बार खाते रहेंगे। मध्यम वर्षा होगी।[1]

षष्टम काल इससे भी भयंकर होगा। उसमें सब मर्यादाएं समाप्त हो जावेंगी। यह काल भी २१ हजार वर्ष का होगा। कृषि का विनाश हो जावेगा। एक जीव दूसरे जीव का आहार करेगा।

प्रथम तीर्थंकर का जन्म

उक्त वर्णन के पश्चात् कवि चौदह कुलकरों में से अन्तिम कुलकर नाभि राजा से अपना कथन प्रारम्भ करता है। नाभिराजा विशिष्ट ज्ञान के धारी थे। उनकी रानी का नाम मरुदेवी था। इन्द्र ने जब जाना कि मरुदेवी के उदर से प्रथम तीर्थंकर जन्म लेने वाले हैं तो उसने नगरी को सब तरह से सुसज्जित बनाने का आदेश दिया। मरुदेवी ने एक रात्रि को सोलह स्वप्न देखे। जब उसने नाभि राजा से उनका फल पूछा तो यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि वह प्रथम तीर्थंकर की माता बनने वाली है।

चैत्र कृष्ण नवमी के शुभ दिन आदिनाथ का जन्म हुआ। देवताओं एवं मानवों ने जिस उत्साह एवं प्रसन्नता के साथ जन्मोत्सव मनाया, कवि ने उसका ४७ दोहा

चौपाई छन्द में बहुत ही मनोरम वर्णन किया है। ऋषभदेव धीरे धीरे बड़े हुए। उनकी बाल सुलभ क्रीडा सबको प्रिय लगती थी। ऋषभदेव युवा हुये। राज्य कार्य में सबको सहयोग देने लगे। अन्त में नाभि ने ऋषभदेव को राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त किया। ऋषभदेव ने इस युग में सर्व प्रथम विवाह की प्रक्रिया प्रारम्भ की। किसीकी का लड़का एवं किसी की लड़की को लेकर दोनों का विवाह कर दिया। इस प्रकार विवाह संस्था को जन्म दिया।[1] स्वयं ऋषभ का भी कच्छ महाकच्छ की पुत्रियां नन्दा यशस्वती से विवाह सम्पन्न हुआ। जिससे आगे संसार चलता रहे।[2]

बैहे प्रभु को व्याही राय, सानन्द मंगलचार कराय।
भोग विलास करत संतोष, तब सबभिराणी को कोष ॥२६॥२०॥

ऋषभदेव के यशस्वती रानी से भरत आदि १०० पुत्र एवं ब्राह्मी पुत्री तथा नन्दा से बाहुबली पुत्र एवं सुन्दरी पुत्री हुई। भरत बड़े हुए। वे बड़े प्रतापी एवं योद्धा थे। जब प्रजा भूखे मरने लगी तो ऋषभदेव ने इक्षु उगाने की विधि बतलाई। अपने ही वंश में विवाह करने की उन्होंने मनायी की। कुछ समय पश्चात् ऋषभदेव ने भरत को राज सम्हला कर वैराग्य धारण कर लिया।

स्वयम्वर की प्रथा

वाराणसी नगरी का अकंपन राजा था उसे सब सेनापति कहते थे। उसके एक लड़की सुलोचना थी। वह भरत के पास आकर प्रार्थना कि उसकी लड़की विवाह योग्य हो गयी इसलिये उसके लिये कोई वर बतलाइये। भरत ने सोच समझ कर स्वयंवर रचने के लिये कहा।

वरमाला कन्या को देहु, पुत्री निज इच्छा वर लेहु।
ताही वरत कोऊ माने बुरो, ताको मान भंग सब करो ॥४५॥२०॥

इस प्रकार स्वयंवर प्रथा की नींव रखी गयी।

---

१. तृप्ति नहीं भखें एक बेर, जेवें दुपहर सांझ सवेर।
मध्यम वृष्टि मेघ सब करें, धर्म धिछिप्ति तहीं परवरे ॥४७॥१४॥

२. पुत्री काहू की आनिये, सुत काहू को तहां बुलाय।
करें विवाह लगन शुभवार, इह विधि बढ़त चल्यो संसार ॥११॥१६॥

वैराग्य

एक दिन राजसभा में ऋषभदेव सिंहासन पर बैठे थे। नीलांजसा अपसरा का नृत्य हो रहा था। कवि ने उसे नटी की संज्ञा दी है तथा आगे पातुरी कहा है। ये तत्कालीन शब्द थे जो राज्य सभाओं में नृत्य करने वाली के लिए प्रयुक्त किये जाते थे। अचानक नीलांजसा नृत्य करती हुई गिर गयी इससे प्रभु को वैराग्य हो गया वे बारह भावनाओं के माध्यम से संसार के स्वरूप पर विचार करने लगे। कोष में इन भावनाओं बहुत ही उपयोगी एवं विस्तृत वर्णन हुआ है। जो कवि की विषय वर्णन करने की शक्ति की ओर संकेत करता है।[1] ऋषभदेव के वैराग्य के समाचार सुनते ही स्वर्ग से लौकान्तिक देव तत्काल वहां आवे और उनके वैराग्य भावना की प्रशंसा करने लगे।

उसी समय ऋषभदेव ने भरत का राज्याभिषेक किया। बाहुबली को पोदनपुर का राज्य दिया, तथा उन्होंने दूसरे पुत्रों को भी उनकी इच्छानुसार राज्य बांट दिया। सब भाई भरत की सेवा में रहने लगे। उस दिन चैत्र कृष्णा नवमी थी। ऋषभदेव ने एक विराट समारोह के मध्य वैराग्य धारण कर लिया। सब प्रकार के परिग्रह को त्याग कर के निर्ग्रन्थ दिगम्बर हो गये। केश लुञ्चन किया। तथा सब प्रकार के पारवारिक एवं अन्य सम्बन्धों से अपने आप को मुक्त करके पंच महाव्रत धारण कर लिये।[2] परम दिगम्बर ऋषभदेव को स्वयमेव आठ प्रकार की ऋद्धियां प्राप्त हो गयी।[3] जिनके कारण उनको अपार शक्ति मिल गयी। कवि ने इन ऋद्धियों का विस्तार से वर्णन किया है। जैसे बीज बुद्धि ऋद्धि के उदय से एक पद पढ़ने से अनेक पदों का ज्ञान हो जाना तथा एक श्लोक का अर्थ जानने से पूरा ग्रंथ का ज्ञान स्वयमेव हो जाना बुद्धि ऋद्धि का फल होता है—

> बीज बुद्धि जब उदय कराइ, पढत एक पद श्री जिनराय।
> पद अनेक की प्रापति होय, यह या बुद्धि तनों फल जोइ।
> एक श्लोक अर्थ पद सुने, पूरण ग्रंथ आपतें भनें ॥२१॥२७.

---

१. ए शुचि बारह भावना, जिन तें मुक्तिनि वास।
श्री जिनवर के चित्त में, तब ही भयो प्रकाश ॥६॥२६ ॥

२. मंडे पंच महाव्रत घोर, त्यागी सकल परिग्रह जोर ॥१४/१॥ २६॥

३. बुद्धि औषधी बल तप चार, रस विक्रिय क्षेत्र क्रिया सार ॥१८॥२६॥

तप ऋद्धि के प्रसंग में श्रुतस्कंध व्रत वर्णन में आचार्य कुन्दकुन्द के पांच नामों की उत्पत्ति कथा, विदेह क्षेत्र गमन, भट्टारक पद स्थापन आदि का ग्रंथ में अच्छा वर्णन दिया है।

कवि ने सभी कल्याणकों के वर्णन का आधार जिनसेनाचार्य कृत आदिपुराण को बताया है जिसका स्वयं कवि ने उल्लेख किया है—

अल्प बुद्धि वरणौं संक्षेप, आदि पुराण मिटै भ्रम वेपु।
बारह विधि तपु कीनौ ईश, जगत शिरोमनि श्री जगदीश ॥३८/५६

ज्ञान कल्याणक

ऋषभदेव को कैवल्य होते ही समोसरन की रचना की गयी। जिसका वर्णन कवि ने विस्तार से किया है। यद्यपि उसने अपने को अल्पबुद्धि लिखा है। लेकिन समवसरण का वर्णन उसने १७४ पद्यों में लिखा है। ऋषभदेव ने अपना उपदेश मागधी भाषा में दिया था।[1] सात तत्व एवं नौ पदार्थों के विस्तृत परिचय के लिये कवि ने हेमराज कृत कर्मकांड, पंचास्तिकाय ग्रंथों को देखने के लिये लिखा है।[2] इसके पश्चात् सात तत्व एवं नव पदार्थ का विस्तृत वर्णन किया है—

जीव अजीव और आश्रव संवर निर्जर बंध।
मोक्ष मिलें ए जानियें, सप्त तत्व संबंध ॥१॥
पुन्य पाप हैं ए जुदे, नव इनि मांहि मिलाइ।
जिनवानी नव पद विमल, सो वरणौं मुनि ताहि ॥२॥६३॥

जीव तत्व के वर्णन में कवि ने सात प्रकार के समुद्घातों का वर्णन किया है।[3] ये हैं जीव वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, वैक्रियक समुद्घात, मरणांतिक समुद्घात, तैजस समुद्घात, आहारक समुद्घात, केवल समुद्घात, इसके पश्चात् सात प्रकार के

---

१. मुख्य मागधी भाषा जानि, सबके सुनत होई दुख हानि ॥६६/६३.
२. जो कोई इनि सातनि को भेव, ब्यौरो चाहौं जो तजि खेद।
कर्मकांड पंचसुकाय, हेमराज कृत जोजो मांहि ॥७४॥६३॥
३. समुदघात हैं सात प्रकार तिनि के भेद सुनो तुम सार। २७॥६६॥

संयम स्थानों का वर्णन मिलता है।[1] दर्शन स्थान का वर्णन के पश्चात् छह लेश्याओं पर विस्तृत विचार किया गया है। कृष्ण, नील, कपोत, पीत पद्म और शुक्ल लेश्या को निम्न उदाहरण द्वारा समझाया है—

सुनो एक इनिको दृष्टांत, प्रकटै विमल बोध की कांत।
गए पुरुष छह वनहू मझार, आम्र वृक्ष फल देख्यो सार ॥२९॥
सघन सुभग अरु बहु फल पर्‌यो, जांकी छांह पथिक श्रम हर्‌यो।
लेखट प्राणी ता तरजाइ, फल भक्षण की ईछा थाई ॥३०॥
कृष्ण धनी कहैं जर काटिये, पीछें वांके फल बांटिये।
तब बोल्यो अंग जाके नील, गोदें काटन करी न ढील ॥३१॥
या तरु की काटी सब डारि, कहि कापोत धनी निर्द्धार।
गुच्छा तोरि लेहु रे मीत, यौं भाषै जाके उर प्रीति ॥३२॥
बीन लेहु पके फल सबै, बोल्यो पदम धनी यह तबैं।
गिरि लेहु मति लाउ हाथ, कहैं सुकल धारी गाथ ॥३३॥
धरि षट लेश्या स्वांग अनूप, नाचत फिरैं जीव विद्रूप।
काल अनादि गये इंहि भांति, आतम अनुभौ बिना नशांत ॥३४॥७०

चौदह गुणस्थानों का भी वर्णन करके कवि ने चौदह जीव समासों का वर्णन किया है।[2] ये सब दार्शनिक वर्णन हैं जिसे कवि ने अपने ग्रंथ में स्थान दिया है। ऐसा लगता है कवि ने गोम्मटसार जीवकांड को अपने कथन का मुख्य आधार बनाया है।

पंच परावर्तन, एवं जाति स्थानों के वर्णन के पश्चात् कवि चार प्रकार के ध्यानों का वर्णन प्रारम्भ करता है।

---

१. संजम और असंजम जानि, छेदोपस्थापन परमान।
जथाख्यात सामायिक अंग, सूक्ष्म सांपराय गुण चंग
परिहार विशुद्धि कह्यौ संजमा, सातौं स्वांग धरै आतमा। ८२॥६८॥

२. एई चौदह जीव समास, करै आतमा तहां निवास।
जो लौं संसारी कहवाइ, तोलौं इनमें भ्रमन कराइ ॥१०१॥७३॥

ध्यान का स्वरूप

रौद्र ध्यान वाला प्राणी हिंसा करने में आनन्दित होता है; चोरी करता है, झूंठ बोल कर प्रसन्न होता है। विषयों के सेवन में अपना कल्याण मानता है। ये चारों रौद्र ध्यान के अंग है।[1] पृथ्वी, अग्नि, वायु, जलतत्वों का भी प्रस्तुत ग्रंथ में वर्णन हुआ है।

पिंडस्थान ध्यान पदस्थ ध्यान मोक्ष मार्ग का साधक है। कवि ने पदस्थ ध्यान का वर्णन विभिन्न मंत्रों के साथ किया है। इन मंत्रों में ह्रींकार मंत्र, अपराजितमंत्र[2], षोडशाक्षर मंत्र[3], षडाक्षरीमंत्र[4], चतुवर्णमंत्र[5], बीजाक्षरमंत्र[6], चत्तारिमंगलमंत्र[7], त्रयोदशाक्षरमंत्र[8], सप्ताक्षरमंत्र[9], पंचाक्षरमंत्र[10],

---

१. हिंसा करत चित्त आनंद, चोरी साधत हिए अनंद।
बोलत झूंठ खुशी बहु होइ, सेवत विषय हुलासी जोइ।
रौद्र ध्यान के चारयौं अंग, कर्म बंध के हेतु अभंग ॥६६।७६.

२. एक शत आठ वार जो जपैं, प्रभुता करि सब जग में दिपैं।
एक उपास जुतौ फल होइ, कर्म कालिमा डारे खोइ ॥४३॥८०॥

३. अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः
करि एकाग्र चित्त धरि प्रीति, होइ उपवास तनौं फल मीत ॥४६॥

४. अरहंत सिद्ध इति षडाक्षरी मंत्र

५. अरहंत इति चतुर्वर्णमंत्र

६. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आउसा नमः इति बीजाक्षर मंत्र।

७. मंगल सरण लोकतम जानि, चारि भांति करि कीयौ बखान।
ध्यावे जपै चित्त की ठोर, ताकौ मुक्ति रमणि वरैं दौरि ॥५४॥८०

८. ॐ अरहंत सिद्धसयोग केवली स्वाहा। इति त्रयोदशाक्षर मंत्र।

९. ॐ ह्रीं श्रीं अर्हन्नमः। इति सप्ताक्षर मंत्र।

१०. नमो सिद्धाणं

चन्द्ररेखामंत्र[1], श्रीवर्णमंत्र[2], पापभक्षिणी विद्या मंत्र, असि आऊसा मंत्र, सिद्ध मंत्र आदि का अच्छा वर्णन मिलता है। जान पड़ता है कवि मंत्र शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे।

कवि ने रूपस्थध्यान एवं रूपातीत ध्यान[3], का भी वर्णन किया है।

ध्यान का वर्णन करने के पश्चात् कवि ने जीव की विभिन्न जातियों की संख्या का वर्णन किया है।

नर पशु नारक औ सुरदेव, लाख चौरासी जाति कहेव।
इतने रूप चिदानंद धरें, जाति स्थान नाम धरि बरें ॥१८/८३.

षट् द्रव्य वर्णन

अजीव तत्व पुदगल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इस प्रकार पांच प्रकार का है। पुद्गल द्रव्य मूर्तिक तथा शेष अमूर्तिक हैं।[4] शब्द भी पुद्गल द्रव्य का ही एक पर्याय है तथा वह मूर्तिक है[5] इसके पश्चात् कवि ने शेष द्रव्यों का संक्षिप्त वर्णन किया है।

षट् द्रव्यों का वर्णन के पश्चात् आठ कर्मों की प्रकृतियों का वर्णन किया गया

---

१. ॐ नमो अरहंताणं इति मंत्र ;

२. ॐ ह्रीं ऽ श्री वर्णमंत्र:
राग रहित द्वेषी रहित सकल कर्म नसाइ।
लीन तनो विश्राम यहु, रूपातीत कहाइ ॥१५॥८३.

३. इह रूपस्थ अनूप गुण जिन सम आतम ध्यान।
करि याको अभ्यास मुनि, पावै पद निरवान ॥४॥ ८३

४. पुदगल धर्माधर्म आकास, काल मिलें पांचो परकार।
है अजीव इनिको नाम, तिनि में मूरति पुदगल धाम ॥४४/८४॥

५. सुनि पुदगल के सकल पर्याय, प्रथम शब्द भाष्यो जिनराज।
शब्द कहे बरण तम रूप, पुदगल को पर्याय अनूप ॥४६/८४॥

है। जैन दर्शन कर्म प्रधान दर्शन है। जैसा यह जीव कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय के भेद से आठ प्रकार के एवं प्रकृतियों सहित १४८ भेद है। इसके पश्चात् प्रकृतियों के गुणों का विस्तृत वर्णन मिलता है जिसमें कवि में अगाध सैद्धान्तिक ज्ञान होने का प्रमाण मिलता है। प्रचला दर्शनावरण प्रकृति का लक्षण देखिये—

> प्राणी जहां नींद बसि आइ, महा चंचल हाथरु पाइ।
> नेत्र गात्र सब वैक्रिय होइ, मानों भार सिर धोइ ।।४७।।
>
> करैं नींद जब नहि विशेष, तब द्रग रेत भरे से देखि।
> मुद्रित मुकुलित आधें आध, प्रचला दरशनावरण अगाध ।।४८/६०।।

प्रकृति गुणों के विस्तृत वर्णन के पश्चात् कवि ने चौदह गुणस्थानों की प्रकृति भेदों का वर्णन किया है।

सात तत्वों का स्वरूप

सात तत्वों में जीव, अजीव, आस्रव, बंध संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्व गिने जाते हैं। जीव, अजीव तत्व का तो पहिले विस्तृत वर्णन किया जा चुका है इसलिये कवि ने आस्रव तत्व का विभिन्न दृष्टियों से व्याख्या की है। हास्य प्रकृति आस्रव के निम्न क्रियाओं के कारण होता है—

> धर्मी जन अरु दीन निहार, तारी दे तहां हंसे गंवार।
> मदन हास्य अरु करै प्रलाप, धर्म अज्ञ लखि लोचनराय ।।२५।।
>
> इन तैं हास्य प्रकृति जु बंधाइ, कही प्रगट श्री गौतमराय।
> वैठैं देखे नर तिय संग, मिथ्याचार लगावैं नंग ।।२६/१०७।।

मनुष्य जीवन कब किसे मिलता है यह एक विचारणीय प्रश्न है जिसका कवि ने निम्न प्रकार समाधान दिया है—

> स्वल्पारंभ परिग्रह जानि, भद्र प्रकृतियां चारि मानि।
> करुणा धनी आर्य परिणाम, धुलि रेख सम दीसे ताम ।।४८।।
>
> पर दोषी न कुकर्म हि करैं, मधुर वचन मुख तैं उचरैं।
> कानन सून्यो होइ जो दोष, भूलनि कबहु भाषे दोष ।।४९।।

देव गुरुनि को पूजे सदा, निसि भोजन यांके नही कदा ।
शुभ ध्यानी लेश्या कापोत, बंध मनुष्य आयु को होत ।।५०/१०८।।

इस प्रकार कवि ने दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक वर्णन भगवान ऋषभदेव के ज्ञान कल्याणक के अन्तर्गत किया है। निर्वाण कल्याणक वर्णन में कवि ने दान की उपयोगिता पर विस्तृत प्रकाश डाला है। दान भी पात्र कुपात्र देखकर दिया जाना चाहिये। कुपात्र को दिया हुआ दान निष्फल जाता है। कवि के अनुसार साधु को दिया हुआ भोजन (आहार) उत्तम दान है। साधर्मी जनों को दिया हुआ दान मध्यम दाना है हिंसक जनों को दिया हुआ दान तो एक दम व्यर्थ है। जिस प्रकार किसान भूमि की उपज देख कर उसमें बीज डालता है उसी प्रकार दान देते समय पात्र कुपात्र का ध्यान रखा जाना चाहिये।

जो किसान खेती के हेत, कल्लर भूमि रही चित देत।
दान जु पात्र तनें अनुसार, पात्र समान फल है बहुसार ।। ७८ ।। ११३

सम्राट भरत ने ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की थी। कवि ने उनमें पाये जाने वाले ६ प्रकार के गुणों का वर्णन किया है। उनमें से आठवां एवं नवां गुण निम्न प्रकार है—

अल्पाहारी चित संतोषी, दुष्ट वचन सुनि नहि जिय रोष।
आशीर्वाद परायन जानि, अष्टम गुण द्विज को यह जांनि ।।६३।।

शुभोपयोगी विद्यावान, आतम अनुभव करण प्रधान।
परम ब्रह्म को ध्यान कराइ, ए ब्राह्मण के नव गुण कहिवाइ ।।६४/११४

जब तक भरत रहे तब तक वे इन गुणों से युक्त रहे लेकिन बाद में उनमें भी शिथिलता आती गयी ।

चक्रवत्ति के चौदह रत्न

कवि ने चौदह प्रकार के रत्नों के नाम गिनाये हैं। जो निम्न प्रकार हैं—

सेनापति अरु स्थपित बखांन, हर्मपती अरु गज अश्व प्रधान।
नारी चर्म चक्र कांकिनी, छत्र परोहित मनि तहां गनी ।।८३।।

षडग दंड मिलि चौदह भए, इनि के भेद सुनो अब जए।
सेनापति अैसो गुन लेत, नव प्रकार सैन्या सज देत ॥८४/१२६॥

उक्त चौदह रत्न चक्रवर्ती के ही होते हैं अन्य किसी राजा को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। कवि ने इन सभी का विस्तृत वर्णन किया है। अन्त में लिखा है—

चक्री पुण्य प्रताप बल, चौदह रत्न अनूप।
औरन काहू कों मिलें, मिलें अनेक जग भूप ॥१७॥ १२७॥

गौतम द्वारा महावीर का अनुयायी बनाना

कवि ने चौरासी बोल, श्वेताम्बर मत उत्पत्ति वर्णन, आदि पर भी विस्तृत प्रकाश डाला है। इसके पश्चात् कवि एक दम महावीर के समवसरण में पहुँच जाता है। कैवल्य होने पर भी जब भगवान की दिव्य ध्वनि नहीं खिरती है तो इन्द्र को बड़ी चिन्ता होती है और वह एक वृद्ध के रूप में गौतम ऋषि के पास पहुँचता है। वह उससे "त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं" श्लोक का अर्थ समझना चाहता है लेकिन जब अर्थ समझ में नहीं आता है तो वह अपने शिष्यों के साथ महावीर के समवसरण में आता है। समवसरण में लगे हुए मानस्थंभ को देखते ही गौतम को वास्तविक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और वह महावीर की निम्न प्रकार स्तुति करने लगता है।

गौतम नम्यौ चरन अष्टांग, लागौ जिन स्तुति पढन अभंग।
दीन दयाल कृपा निधि ईस, कर पंकज नाऊं शीस ॥१४/१३८॥

गौतम को तत्काल मनःपर्यय ज्ञान की प्राप्ति हो गयी। वह महावीर के शिष्यों में प्रमुख शिष्य हो गया।[1]

उसी समय मगध का सम्राट श्रेणिक रानी चेलना के साथ वहाँ आया। श्रेणिक बौद्धधर्म का अनुयायी था लेकिन चेलना महावीर की परम भक्त थी। समवसरण में आने के पश्चात् भगवान महावीर ने उसके पूर्व भवों का वृतान्त विस्तार के साथ सुनाया।

---

१. तब गौतम मुनिराज सरेष्ठ, सकल गनि मध्य भए वरेष्ठ ॥१६/१३८

ता घरनी चेलना अनूप, जाके रतन सम्यक्त स्वरूप ।
तब सुनि श्रेनिक नृप की कथा, श्री गुरु मुख तें भाषी जु जथा ।

श्रेणिक द्वारा जैनधर्म स्वीकार करने की कथा

पूरी कथा में राजा श्रेणिक चेलना के आग्रह से किस प्रकार जैनधर्म का अनुयायी बना इसका भी वर्णन किया हुआ है । सर्व प्रथम राजा श्रेणिक ने बौद्धधर्म की प्रशंसा की तथा जैनधर्म के प्रति अपने विचार प्रगट किये ।[1] चेलना के कहने से राजा ने पहिले बौद्ध साधु को बुलाया और विभिन्न प्रकार से उसकी परीक्षा ली । फिर जैन साधु की चेलना ने परिगाहना की । परीक्षा में जैन साधु द्वारा खरा उतरने पर राजा श्रेणिक ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया ।

सुनि श्रेनिक संसे उडि गई, दृढ प्रतीति जिनमत पर भई ।
तब रानी कियो अंगीकार, धन्य सुबुद्धि पवित्र अवतार ।।३०।।

निज पति कौ तिन कीनौं जैन, बौध तनौं उर तें गयौ फैन ।
वा मत वसि गयौ पहिलैंबख कहि न सकै
नहि जहां दुख केतें सबर्क ।।३१।। १४३ ।।

राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से साठ हजार प्रश्न किये और उनका समाधान भी सुना ।[2] अन्त में अषाढ सुदी १४ को सभी मुनिजनों ने योग धारण किया तथा कातिक सुदी १४ तक योग धारण किये रहे । लेकिन कातिक बुदी अमावस्या की रात्रि को जब प्रभात काल में चार घडी रही थी तब भगवान महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया ।

कातिग वदि मावसक रीति, चार घडी जब रह्यौ प्रभात ।।५।।

---

१. जैन कहां जांको उरधरे, तहां न कोऊ क्रिया आचरे ।
बोध तनें गुरु दीन दयाल, जैन जती निरधन बे हाल ।।
अशुचि अपावन बोध विहीन, कौन अंग निमें परवीन । ७६ ।। १४० ।।

२. राजा श्रेनिक चरित में, कह्यौ संक्षेप सुनाइ ।
अति हितकारी भाव कौ, परमत नहीं सहाइ ।।१।। १४३ ।।

श्री जिन महावीर तीर्थेश, पंचम गति को कीयो प्रवेश।
मुक्ति सिद्ध सिला पर सिद्ध सरुप, परमातम भए चिद्रुप ।।६।।

महावीर संघ के संघ मुनि गणों ने चातुर्मास पूर्ण किया।[१]

इसके पश्चात् कवि ने काष्ठा संघ की उत्पत्ति की कथा लिखी है जो ४० दोहा चौपाई छन्दों में पूर्ण होती है।

लोहाचार्य वर्णन

आचार्य गुप्ती गुप्त के भद्रबाहु शिष्य थे। उनके पट्ट शिष्य माघनन्दि मुनि थे। आचार्य कुन्दकुन्द उनके पट्ट शिष्य थे। तत्वार्थसूत्र के रचयिता उमास्वाति आचार्य कुन्दकुन्द के शिष्य थे। उमास्वाति के पट्ट शिष्य थे लोहाचार्य जिन्होंने काष्टासंघ की स्थापना की थी। लोहाचार्य विद्या के भण्डार एवं सरस्वती के साक्षात् अवतार थे। उनके एक बार शरीर में ऐसा रोग हो गया कि मरने की स्थिति आ गयी। वायु पित्त एवं कफ तीनों का जोर हो गया। तब उनके इसी भव के श्री गुरु स्नेहवश वहां आये। उन्होंने उनको सन्यास (समाधि मरण) दे दिया क्योंकि जीने की तनिक भी आशा नहीं रही थी। लेकिन शरीर की व्याधियां स्वतः ही धीरे धीरे कम होने लगी और वे स्वस्थ हो गये। भूख प्यास लगने लगी। तब उन्होंने अपने गुरु से विशेष आज्ञा मांगी। श्री गुरु ने कहा कि

श्री गुरु कहैं न आग्या आन, करि सन्यास मरण बुधियान।
ज्यौ आगे परमादी जीव, प्रतिपालैं जो व्रत जोग सदीव ।।२३।।

लोहाचार्य ने गुरु की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और अन्न जल ग्रहण कर लिया। गुरु ने उनको अपने गच्छ से निकाल दिया और दूसरे किसी साधु को पट्टाधीश बना दिया। लोहाचार्य ने गुरु के इस विरोध पर गम्भीरता पूर्वक चिन्तन किया और अन्त में गुरु को छोड़कर अन्यत्र बिहार कर दिया। उस समय विक्रम संवत सात सौ ७६० था।[२]

---

१. जो हो इनिसों कह्यो प्रकार, पूरो करो जाइ चोमास।
मति डर यो व्रत भंग जु भयो, तुम प्रभु के हित हो चित दियो ।।१३।।

२ लोहाचारज सोचि विचार, गुरु तजि कीयो देश विहार।
संवत अंपन सात से सात, विक्रम राय तनो विख्यात ।। २५।।१४४।।

लोहाचार्य अगरोहा ग्राम आये। जो नंदीवर गांव के नाम से विख्यात था।

अगरोहा ग्राम में अग्रवालों की बस्ती थी। वे धनाढ्य थे तथा दूसरे धर्म को मानने वाले थे। दूसरे धर्म की परवाह नहीं करते थे। उनकी उत्पत्ति के बारे में कवि ने निम्न प्रकार वर्णन किया है—

अग्रवाल जैन जाति की उत्पत्ति

अगर नाम के ऋषि थे जो तपस्वी थे वनवासी थे तथा जिनकी माता ब्राह्मणी थी। एक दिन जब वे ध्यानस्थ थे तो किसी नारी का शब्द उनके कानों में पड़ा। नारी का शब्द सुनकर ऋषि कामातुर हो गये। शब्द बड़े मधुर एवं ललित थे तथा उसका स्वर कोकिल कंठी था। ऋषि का ध्यान छूट गया तथा वह उसका सौन्दर्य निरखने लगे।[1] उस नारी ने कहा कि वह नाग कन्या है इसलिये यदि ऋषि को काम सता रहा है तो वह उसके पिता से बात करे। वह ऋषि का रूप देखकर कन्या दान कर देंगे। यह सुनकर ऋषि खड़े हो गये और नाग लोक को चले गये। नागिनी ने ऋषि तपस्वी को बहुत आदर दिया। ऋषि ने नाग कन्या के पिता से प्रार्थना की कि वह अपनी कन्या का उसके साथ विवाह कर दे। नाग ने ऋषि की बात मान कर अपनी कन्या उसे दे दी। ऋषि कन्या को अपने साथ ले आया। उससे १८ लड़के हुए जिनमें गर्ग आदि के नाम उल्लेखनीय है। उनकी वंश वृद्धि होती गयी

---

१. अगर नाम रिष हैं तप धनी, वनवासी माता बाभनि।
एक दिवस बैठे धरि ध्यान, नारी सब्द परयौ तब कान ॥१२॥

मधुर वचन और ललित अपार, मानों कोकिला कंठ उचार।
छुटि गयो रिष ध्यान अनूप, लागे निरखिन नारी रूप ॥१३॥

२. तब ऋषिराय प्रार्थना करी, तब कन्या हंसि जिय में धरी।
अब तुम दे हमें करी दान, ज्यों संतोष लहै मम प्रान ॥१७॥

नाग दई तब कन्या वांहि, कर गहि अगर ले गए ताहि।
ताके सुत अष्टादस भये, गर्ग आदि सुत में बरनए ॥१८॥१४५॥

और उनको अगरवाल कहा जाने लगा। उनके १८ गोत्र हो गये जो ऋषि के पुत्रों के नाम से प्रसिद्ध हो गये।[1]

एक बार पुरवासियों ने सुना कि कोई मुनि आये हुये हैं और वे नगर के बाहर ही ठहरे हुये हैं। नगरवासी उन्हें साधु जानकर भोजन हेतु प्रार्थना करने गये। मुनि ने नागरिकों से कहा कि वह तपस्वी है इसलिए यदि कोई श्रावक धर्म के पालन करने की प्रतिज्ञा लेवे तथा जिसे अन्य धर्म अच्छा नहीं लगता हो तो वह उन्हें आदरपूर्वक अपने घर ले जा सकता है। उसके घर पर वे भोजन करेंगे। मुनि के वाक्य सुनकर सभी नागरिक विस्मय करने लगे तथा आपस में चर्चा करने लगे कि ये कैसे मुनि हैं जो भोजन देने पर भी भोजन ग्रहण नहीं करते।[2]

मुनि के प्रभाव से कुछ लोग जिनधर्मी बन गये और मुनि के चरणों में आकर वन्दना करने लगे। गुरु के उपदेश से धर्म का मर्म समझ लिया। उसके पश्चात् मुनि ने नगर प्रवेश किया। नव दीक्षित जैनों ने मुनि को भली प्रकार आहार दिया और अनेक प्रकार के उत्सव करने लगे। मुनि श्री ने उनको प्रतिबोधित किया और इस प्रकार अग्रवाल जैन बने। प्रारम्भ में वे केवल ७०० घर थे। वहीं जिन मन्दिर का निर्माण कराया गया और उसमें काष्ठ की प्रतिमा विराजमान कर दी। दूसरे ही पूजा पाठ बना लिये जो गुरु विरोधी थे। यह बात चलती चलती भट्टारक उमास्वामी के पास आयी। बात सुनकर मुनि को खूब चिन्ता हुई कि काष्ठ की

---

१. तिनि को वंश बढ्यो असराल, ते सब कहिये अगरवाल।
उनके सब अष्टादश गोत, भए रिषि सुत नाम के उदोत ॥१६॥

२. तिनि सुन्यौ एक आयौ मुनि, पुर के निकट उतर्यौ गुनी।
भिक्षुक जांनि सकल जन नए, भोजन हेत विनवत भए ॥२०॥

तब मुनि कहैं सुनौं धरि प्रीति, हम तपसीन की असी रीति।
जो कोऊ श्रावक धर्म कराइ, मिथ्यामत जाकों न सुहाइ ॥२१॥

सो अपने घरि आदर करैं, ले करि जाइ दया तब चरैं।
और ग्रेह नहीं आहार, यह हम रीति सुनी निर्द्धार ॥२२॥ १४५ ॥

प्रतिमा बनाने की नयी परम्परा डाल दी। लेकिन जैनधर्म में दूसरों को दीक्षित करने की जब बात मालूम पड़ी तो उन्हें सन्तोष हुआ और वे भी वहीं आ गये जहाँ मुनि श्री लोहाचार्य थे।[1] जब उन्होंने भट्टारक उमास्वामी के आने की बात सुनी तो उन्हें वे लिवाने गये और बड़े उत्साह से उनका स्वागत किया।

लोहाचार्य ने उमास्वामी को चरण पकड़ लिये। मुनिराज ने आनन्दित होकर लोहाचार्य को उठा लिया और उनको चरणों से उठाकर अपने पास पर बिठा लिया। सभी नागरवासियों ने उमास्वामी की वन्दना की और उन्होंने सबको धर्म वृद्धि देते हुए आशीर्वाद दिया। उनकी अगवानी करके नगर में उसी मन्दिर में लाये जिसमें काष्ठ की प्रतिमा विराजमान थी। उमास्वामी से जब नगरवासियों ने उनसे आहार ग्रहण करने की प्रार्थना की तो वे कहने लगे कि जो उन्हें भिक्षा देना चाहेगा तो आचार्यश्री को उनकी बात माननी पड़ेगी। लोहाचार्य तत्काल विनय पूर्वक आज्ञा देने के लिये प्रार्थना करने लगे जिससे उनका जीवन धन्य हो सके।

उमास्वामी ने कहा कि वे सब शिष्यों में सपूत हैं जो मिथ्यात्व का खंडन करने वाले एवं जैनधर्म का पोषण करने वाले हैं। तथा जिन्होंने जैनधर्म में वृद्धि की है। लेकिन एक शिक्षा वे उनकी भी माने और भविष्य कि काष्ठ की प्रतिमा विराजमान करना बन्द

---

१. चली बात चलि आई तहां, उमास्वामी भट्टारक जहां।
मुनि जिय चिन्ता भई अगाध, करी काठ की नई उपाधि ।।२८।।

आवत मुनि श्री निज गुरु भले, आगे होंन आचारज चले।
जौनें सकल नगर जन संग, बाजन अति बाजे मनरंग ।।२९।।

२. सब मुनि कहे सुनो गुन जुत, शिष्यन में तुम भये सपूत।
परमत भंजन पोषन जैन, धर्म बढ़ायो जीत्यो मैंन ।।३४।।

यही सीख हमरे करि धरो, काठ तनी प्रतिमा मति करो।

३. तबतें काष्ठ संघ परवरयो, मूलसंघ न्यारो विस्तर्यो।
एक चना कीज्यो द्वै दारि, त्यौं ए दोऊ संघ विचार ।।३८।।

करें। क्योंकि काष्ठ, अग्नि, जल लेप, आदि से विकृत होसकती है। लोहाचार्य ने अपने गुरु की बात मान ली। उन्होंने उनके हाथ से सुरहो के बाल वाली पिच्छी ग्रहण की। दोनों गुरु शिष्य प्रसन्न होकर उठे। उसी समय से लोहाचार्य का संघ काष्ठा संघ कहलाने लगा। और वह मूलसंघ से पृथक माना जाने लगा यह कोई नया संघ नहीं है। संघ में जैनधर्म के प्रतिपादित सिद्धान्तों का पालन होता है।

काष्ठासंघ की उत्पत्ति का इतिहास कहने के पश्चात् कवि ने भक्तामरस्तोत्र एकीभावस्तोत्र, भूपालस्तोत्र, विषापहारस्तोत्र एवं कल्याणमन्दिरस्तोत्र के रचे जाने की कथायें लिखी हैं। कवि के कथा कहने का ढंग बड़ा ही आकर्षक है।

जैसवाल जाति का इतिहास

कल्याणमन्दिरस्तोत्र कथा समाप्ति के पश्चात् कवि ने इक्ष्वाकु वंशीय जैसवाल जाति का इतिहास कहने की भावना व्यक्त की है।

जैसवाल इक्ष्वाकु कुल, तिनि की सुनौ प्रबन्ध

ऋषभदेव तीर्थंकर ने गृह त्याग करने से पूर्व महाराजा भरत को अयोध्या तथा बाहुबली को पोदनपुर का राज्य दिया तथा शेष पुत्रों को उनकी इच्छानुसार राज्य शासन सौंप दिया। उन्हीं में से एक पुत्र शक्ति कुंवर जैसलमेर चल कर आये और जैसलमेर मण्डल का शांतिपूर्वक राज्य करने लगे।[1] उनका वंश बढ़ने लगा तथा जैन धर्म की वृद्धि होने लगी। कुछ समय पश्चात् उन्हीं के वंश में एक राजा ने जैनधर्म छोड़कर अन्य मत की साधना करने लगा। शुभ कर्म घटने लगे तथा पृथ्वी पाप बढ़ने लगे। एक दिन दूसरे राजा ने राज्य पर चढ़ाई कर दी जिससे सब राज्य चला गया। लेकिन प्रजा ने उसे अपने यहां रख लिया। राज्य से वंचित होने के

---

१. श्री जिनदेव ऋषभ महाराज, सब बाटयौ सब महि कौ राज
अवधिपुरी दई भरथ नरेस, बाहुबलि पोदनपुर देश ॥१॥
और सुतन जो मांग्यौ ठांम, सो प्रभु ते दयौ अभिराम।
कुंवर शक्ति जिन बाट नरेस, चलि आए जहाँ जैसलमेर ॥२॥
वे मंडल कौ साधे राज, सुख साता के सबै समाज।
तिनि को वंश बढ्यौ असराल, जैनधर्म पालैं महिपाल ॥३॥

पश्चात् किसी ने खेती करना प्रारम्भ कर दिया तथा किसी ने चाकरी-नौकरी करली। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो गया और वहाँ जैनधर्म का प्रचलन बन्द हो गया।

२४ वें तीर्थंकर महावीर को जब कैवल्य हुआ तो इन्द्र ने समवसरण की रचना की। प्रचंड पुण्य के धारी सुर असुरों ने समवसरण को आर्यखंड में घुमाया और एक बार भगवान महावीर का समवसरण जैसलमेर के वन में आ गया। समवसरण के प्रभाव से सब ऋतुओं में फूल खिल गये। वनमाली ने राजा के पास जाकर तीर्थंकर महावीर के समवसरण के आने का समाचार दिया। तत्काल राजा भी अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक महावीर की वन्दना के लिए अपने परिवार एवं नगरवासियों के साथ चल दिया।[1]

राजा ने विनयपूर्वक महावीर की वन्दना की तथा मनुष्यों के प्रकोष्ठ में जाकर बैठ गया। उसने महावीर भगवान से निवेदन किया कि "हमारे देश में एक बात प्रसिद्ध है कि "हम पर देवताओं की कृपा है तब फिर उनके हाथ से राज्य कैसे निकल गया"।[2] इसका उत्तर महावीर के प्रमुख शिष्य(गणधर) गौतम स्वामी ने दिया। उन्होंने कहा कि उनके पूर्वजों ने जैनधर्म छोड़ दिया था इसलिए यह सब कुछ हुआ। यदि फिर वे जैनधर्म स्वीकार करलें तो उनके संकट दूर हो सकते हैं। गौतम गणधर की वाणी सुनकर वहाँ उपस्थित सभी चार हजार स्त्री पुरुषों ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। सबने मिलकर नियम किया कि वे भविष्य में जैनधर्म का

---

१. महावीर प्रभु प्रकट्यौ ज्ञान, रची सभा सब अमरनि आन ।।७।।
सकल सुरासुर पुन्य प्रचंड, ताहि लें फिरें आरज खंड
खंड सकल परस्यौं चौ फेर, चलि आये जहाँ जैसलमेर ।।८।।

२. सुनि राजा चल्यौ वंदन हेत, मान रहित पुरलोक समेत।
प्रथम नमें श्री जिनवर राइ, फुनि नर कोठें बैठे जाइ ।।१०।।
पूछत श्री प्रभु कौ बात, ओ ए बात वंश विख्यात।
रहों कृपा करि सुर महाराज, छूट्यौ क्यौं हमतें भुवराज ।।११।।

का आदर करेंगे[1]। उन्हीं व्यक्तियों से अपना व्यवहार, खान पान एवं विवाह सम्बन्ध रखा जायेगा। इनको छोड़कर जो अन्यत्र जावेंगे वे सब दोष के भागी होंगे। इस प्रकार वे सभी पुनः अपने धर्म को ग्रहण करके जैसलमेर नगर में आ गये और भगवान महावीर का समवसरण भी मगध देश के राजगृही स्थित पंच पहाड़ी पर चला गया।

उसी समय से वे सब जैसवाल कहलाने लगे। उनके मन से मिथ्यात्व दूर हो गया। नगर में मन्दिरों का निर्माण कराया गया और वे उत्साह पूर्वक जिन पूजन आदि करने लगे। चतुर्विध संघ को दान आदि दिया जाने लगा। प्रतिदिन पुराणों की स्वाध्याय होने लगी। जो लोग पहिले दरिद्रता से पीड़ित थे वे सब धन सम्पत्तिवान बन गये। सब के घरों में लक्ष्मी ने वास कर लिया। और वे सब भी अन्य कार्य छोड़कर व्यापार करने लगे।

कुछ समय पश्चात् एक श्रावक की कन्या विवाह योग्य हो गयी। वह अत्यधिक रूपवती थी इसलिय सारे नगर में उसकी चर्चा होने लगी। सभी उसके साथ विवाह करने के लिये प्रस्ताव भेजने लगे। वहां के राजा ने भी उसके साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेज दिया। राजा के प्रस्ताव से सभी को आश्चर्य हुआ। जैसवाल जैन समाज के पंचों की सभा हुई। सभा में यह निर्णय लिया गया कि वे जैनधर्मावलम्बी हैं इसलिये विवाह सम्बन्ध भी उसी जाति में होना चाहिये।[2]

पंचों का निर्णय राजा के पास भेज दिया गया। इस पर राजा ने उन सबसे जैसलमेर छोड़ने एवं राज्य की सीमा से बाहर निकल जाने का आदेश निकाल दिया। उन्होंने भी राजा का आदेश मान लिया और बाध्य होकर जैसलमेर

---

१. तब बोलें गौतम गनराइ, जैनधर्म त्यागो रे भाइ।
जो यह फेरि आदरौ धर्म, विघुर जाइ तुम तें दुषकर्म ॥१२॥१५३॥

२. सुनत सबनि के बिसमय भई, कौन बुद्धि राजा यह ठई।
पंच सकल जुरि............अब हम जैनधर्म व्रत लियौ ॥२०॥
अवर जाति सौ रह्यौ न काज, खांन पान अरु सगपन साज।

नगर को छोड़ दिया इतने बड़े समूह को देख कर अन्य ग्राम एवं नगर वाले आश्चर्य करते और प्रश्न करने लगते कि यह विशाल संघ कहां से आया है तथा किस कारण से अपना देश छोड़ कर आगे जा रहा है। वे सभी कट्टर थे लेकिन अहिंसक प्रवृत्ति के थे इसलिये शान्तिपूर्वक निम्न उत्तर दिया करते थे—

कौन देश तें आयौ संघ, कौन जाति कहौ कारण कौन।
उत्तर देई सबै गुणमाल, वंश इक्ष्वाक और जेसवाल ॥२४॥१५३॥
जेसवाल तहां तै जानि, जैसवाल कहित परवान।

जैसलमेर से चलते चलते अन्त में वे त्रिभुवनगिरि-तिहुगिरी-नगरी आये। चतुर्मास आ गया था इसलिये उन सबको वहीं नगरी के बाहर वन में ही ठहरना पड़ा।[1]

कुछ समय पश्चात् वहां का राजा जब वन क्रीड़ा के लिये आया और उसने इतने बड़े संघ को देखा तो उसने अपने मंत्री को पूछने के लिये भेजा तथा वापिस आकर मंत्री ने राजा को पूरा विवरण सुना दिया। राजा ने अपने ही मंत्री से फिर कहा कि ये लोग उससे आकर क्यों नहीं मिलते। इस पर मंत्री ने फिर निवेदन किया कि इनको अपनी जाति पर बड़ा गर्व है और यही जैसलमेर से निकलने का कारण है। पूरा वृतांत जान कर राजा को भी क्रोध आगया तथा उसने अपनी मूछों पर हाथ फेरा और वापिस नगर में चला गया।[2]

राजा की यह सब क्रिया वहां एक बालक देख रहा था जो अपने साथियों के साथ वहीं था। वह बुद्धिमान था इसलिये वह राजा के मनोगत भावों को पहिचान कर तत्काल अपने घर आया और राजा की बात सबको कह दी तथा कहा

---

१. चले चले आए सब जहां, हुती तिहुगिरी नगरी जहां।
ता पुर निकट हुतो वन चंग, उतर्यो तहां आइ यह संग।
पाये यह जहां चातुर मास, सकल संघ उहां कियो निवास ॥२६॥१५४॥

२. सचिव कहें इनें गर्व अपार, याही तें नृप दिए निकार।
सुनि राजा कर मूछनि धर्यो, मन में रोस संघ परिकर्यो ।३१॥
मुखतें कछुन कर्यो उचार, आए महिपति नगर मझार ॥३२॥१५४

कि उनको राजा से मिलना चाहिये नहीं तो मान भंग हो जावेगा जो अनिष्ट कारक होगा।[1]

बालक की बात पर विश्वास करके वे तत्काल भेंट आदि लेकर चले और जाकर राजा से भेंट की और निम्न प्रकार निवेदन करने लगे—

पहुंचे आइ नृपति के द्वार, भेंट धरि अरु कर्यौ जुहार।
राजा पूछें एको हेत, जिन में प्रीत तनौ उवेत ।।३६।।
सचिव कहैं ए सब सुनौं भूपाल, तुम चित नहीं सर्व को साल।
नृप अनीति त्यागो निज देश, चलि आये तुव शरण नरेश ।।३७।।
करी हुती जहां जिम मैं चित्त. बीतें भावब बरस पुनीत।
देखें जाइ चरण प्रभू तनौं, और मनोरथ चित के भनौं ।।३८।।

सबने उसी नगर में रहने के लिये राजा से एक भूमि खंड मांग लिया जिसमें सभी जैसवाल बन्धु रह सकें। उन्होंने यह भी कहा कि राजा के कोप के कारण ही उन्होंने उनसे निवेदन किया है। राजा को आश्चर्य हुआ कि उसके मनोगत भावों को किसने ताड लिया क्योंकि उसने किसी से भी अपने मन की बात नहीं कही थी। तब सबने मिलकर इस प्रकार निवेदन किया—

तब सब मिलि नृप सौं विनए, जा दिन तुम प्रभू क्रीडा वन गए।
पूछी सकल हमारी बात, सचि यही जैसो इह तात ।।४२।
तहां एक बालक हमरो हुतौ, बुधिवान क्रीडा संजुतौ।
तिनि सब बात कही समझाय, वेगि मिलौ तुम नृप कौ जाई ।।४३।।
क्रोध कियें हम उपरि चित्त, मैं भाखी सबसौ सब सत्ति।
या पर हम जिय मैं बहु सके, आए मिलिन महा भय थके ।।४४।।

राजा ने जब उक्त कथन सुना तो बालक को शीघ्र बुला का आदेश दिया गया। बालक जब आया तो उसकी सुन्दरता देखकर राजा बहुत प्रसन्न हो गया। राजा द्वारा मनोगत भावों की कहानी जानने पर बालक ने दोनों हाथ जोड़ कर निम्न प्रकार उत्तर दिया—

---

१. **बालक सबसौं भाखी बात, नृप कौ वेगि मिलौ तुम तात।**
नहीं तौ मानभंग तुम होइ, सत्यवचन मानौं सब कोइ ।।३४।।१५४।।

बालक कहै उभय करि जोरि, जब प्रभू निज कर मूंछ मरोरि।
क्रोध बिना मूंछ नहीं हाथि, यासौं हम सकें नरनाथ ॥४७॥

बालक का उत्तर सुनकर राजा ने प्रसन्न होकर उसे गले लगा लिया। इसके पश्चात् राजा ने सबको सम्मान सहित विदा किया। सबको रहने के लिये नगर में स्थान दिया गया। सभी लोग सुख पूर्वक रहने लगे।

कुछ समय पश्चात् राजा ने सभी जैसवाल जैनों से कहा कि वह अपनी लड़की उस बालक को देना चाहता है। वह उसकी बराबर सेवा करती रहेगी। लेकिन राजा के प्रस्ताव का सभी ने विरोध किया और ऐसी ही बात पर जैसलमेर छोड़ने की बात का स्मरण किया। राजा ने क्रोधित होकर बालक को पकड़ कर बुला लिया तथा उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। इसमें किसी की कुछ नहीं चली। लेकिन उस बालक ने राजा को अनीति के मार्ग पर जाते हुए देख कर अन्न जल का त्याग कर दिया तथा कह दिया कि जब तक वह अपने माता पिता को नहीं देख लेगा तब तक उसके हृदय में शान्ति नहीं आवेगी। यही नहीं वह प्राण तज देगा। राजा उसका क्या बिगाड़ लेगा। राजा ने बालक के साथ किये गये कपट तथा बालक द्वारा किये जाने वाली अपयश पर भी विचार किया। राजा ने बालक के पूरे परिवार को गढ में बुला लिया। साथ ही उसके अन्य हितैषियों को भी उसी के साथ बुला कर गढ में बसा दिया। इस प्रकार दो हजार परिवार नीचे रह गये जो जिन वचनों के अनुसार चलते रहे। उन सबने मिल कर यह निर्णय लिया कि दोनों का (गढ में रहने वालों का एवं शहर में रहने वालों का) परस्पर में मिलना कठिन है। न तो उनका कोई व्यक्ति हमारे पास आता है और न कोई हमारा व्यक्ति उनके पास जाता है।[1] उन्होंने गुरु की शिक्षाओं का

---

१. तिन सब मिल यह ठहराव, मेंइनिसौं अब परम अभाव।
कोऊ हमरो उनिके नहीं जाइ, उनिको ह्यां कोऊ धरें न पाइ ॥५७॥१५५॥

२. तब नृप सहित सकल परिवार, आए गढ नीचें सागार
बैठे जिन मन्दिर नृप माहि, सकल पंच तहां लए बुलाए ॥६१॥
बिनती करी जोरि के हाथ, सोई करौ जो होइ एक साथ।
बगसौ चूक जु हम मैं परी, बड़ो सोइ जो चित्त न धरी ॥६२॥

उलंघन किया है। बालक के जाने से क्या हुआ। धर्म के बिना धन सम्पदा एवं जीवन सब व्यर्थ है। इस प्रकार बहुत सा समय व्यतीत हो गया। उस अवसर पर सब मंत्रियों ने मिल कर उसे राज्य भार सौंप दिया। जब वह राजा बन गया तो अपने अपने सभी सम्बन्धियों का का बुला लिया। तथा सबको गांव दे दिये तथा स्वयं त्रिभुवन नगर का राजा बन गया। ब्राह्मण कुल में से पुरोहित की स्थापना की गयी तथा उन्हें लिख कर दे दिया कि जिस घर में पुत्र का विवाह होगा तो वह पांच रुपया ब्राह्मण को देगा तथा इसमें कमी अथवा अधिकता नहीं होगी।

इसके पश्चात् सबके मन में यह बात आयी की वे सब बिछुड़ गये हैं। यदि वे सब मिल जाते हैं तो अत्यधिक आनन्द होगा। तब राजा सहित सभी परिवार वाले गढ़ से नीचे आये और जिन मन्दिर में आकर एकत्रित हो गये। सब पंचों को बुला लिया गया। सभी ने हाथ जोड़ कर यही प्रार्थना कि ऐसा काम करो जिससे दोनों एक हो जावें।। जो कुछ गल्ती हो गयी उसे भूल जाना चाहिये। अब पहिले की परम्परा को अपनाना चाहिये। सभी ने यह भी निर्णय लिया कि राजा का मान भंग नहीं करना चाहिये। सभी ने मिलकर राजासे आदेश देने की प्रार्थना की लेकिन परस्पर में विवाह करने की आज्ञा देने पर वे सब देश को ही छोड़ देंगे यह भी निवेदन किया। राजा नेभी मन में सोचा कि हठ करने से प्रसन्नता नहीं होगी। इस प्रकार समाज की बात मान कर राजा महल में चले गये।[1]

इसके पश्चात जैसवाल जैन समाज दो शाखाओं में विभक्त हो गया। जो समाज गढ़ में रहता था वह उपरोतिया कहलाने लगा तथा जो नीचे रहता था वह तिरोतिया नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस समय ये दोनों नाम प्रसिद्ध हो गये और इसी नाम से वे परस्पर में व्यवहार करने लगे। उपरोतिया शाखा वाले जैसवाल

---

१. विनती करी राय सौं सबै, आग्या देहु अब हम तबै
ब्याहु काज नहीं नरेश, हठ करो तो तज है देश ॥६४॥
तब मन में सोचियो नरिंद, हठ के कीए नहीं आनन्द।
मानि बात नृप गढ पै गये, जैसवाल दुविधि तब भए ॥६५॥१२५॥

काष्ठा संघी गुरुओं की सेवा करने लगे तथा तिरोतिया जैसवाल मूलसंघी बने रहे। इस प्रकार [illegible] छत्तीस गोत्र तथा और तिरोतिया शाखा जैसवाल जैन समाज आनन्द सहित रहने लगा।

लेकिन कुछ समय पश्चात् राजा का स्वर्गवास हो गया और उसके मरने के पश्चात् दूसरा ही राजा वहां का स्वामी बन गया। उसका नाम तिहिनपाल प्रसिद्ध था। वहां से जैसवाल चारों ओर निकल गये। इसी बीच अन्तिम केवली जम्बूस्वामी को मथुरा नगर के समीप स्थित उद्यान में कैवल्य प्राप्त हुआ भगवान के कैवल्य को देखने के लिए सभी मथुरा के उद्यान में एकत्रित हो गये। त्रिभुवन गिरि को छोड़कर सभी जैसवाल वहां आ गए। भगवान के दर्शन कर के अत्यधिक प्रसन्नता हुई। उसी स्थान से जम्बू स्वामी ने निर्वाण प्राप्त कर पंचम गति प्राप्त की। उसी स्थान पर जैसवाल रहने लगे तथा अपना २ कार्य करने लगे। अपने २ गोत्रों में विवाह आदि कार्य करने लगे। इस प्रकार कवि ने जैसवाल जाति की उत्पत्ति कथा का अत्यधिक महत्वपूर्ण वर्णन किया है। उपरोतिया शाखा में ३६गोत्र एवं तिरोतिया शाखा में ४६गोत्र माने जाने लगे।[1]

कवि प्रशस्ति—

वचनकोश के अन्तिम ११ पद्यों में कवि ने अपना परिचय दिया है जिसका वर्णन प्रारम्भ में किया जा चुका है। कोश के अन्तिम पद्य में कवि ने लघुता प्रगट की है—

गुनी पढ़ै ओ प्रीतिसौं, चूकहि लेइ सम्हारि।
लघु दरिघ तुक छंद कौं, छमियो चतुर विचारि ॥८५॥

इस प्रकार वचन कोश की रचना करके कविवर बुलाखीचन्द ने साहित्यिक

---

1. **जम्बूस्वांमि भयौ निरवाण, पाई पंचम गति भगवान।**
जैसवाल रहे तिहि ठाम, मन माण्यो जु करइ काम ॥७३॥
कारज गाम गोत परनए, इहि विधि जैसवाल बरनए।
उपरोतिया गोत छत्तीस, तिरतिया गनि छह चालीस ॥७४॥१५६॥

जगत् को एक महत्त्वपूर्ण कृति भेंट की है। जिसमें सिद्धान्त, इतिहास, समाज एवं काव्य गरिमा के दर्शन होते हैं। कोश साहित्यिक इस प्रकार की बहुत कम कृतियां उपलब्ध होती हैं।

छन्द एवं अलंकार—

वचनकोश का मुख्य छन्द चौपाई छन्द है लेकिन दोहरा एवं सोरठा छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। १८वीं शताब्दि में दोहा एवं चौपई छन्द अधिकांश काव्यों का छन्द था तथा पाठक गण भी इन्हीं छन्दों के काव्यों को रुचि से पढ़ते थे।

गद्य का उपयोग—

कवि ने कोश में कुछ स्थानों पर पद्य के स्थान पर गद्य का प्रयोग किया है। व्रतों के वर्णन में गद्य का प्रयोगप्रमुख रूप से हुआ है। इसे हम ब्रज भाषा का गद्य कह सकते हैं। गद्य भाग के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है—

(१) जिनमुखावलोकन व्रत आसोज सुदी ४, भादवा बदि १ तें प्रारम्भ वर्ष १ ता यो करै ताकी रीति श्री परमेश्वर जी की प्रतिमा देख्यां बिना पारणों न करै जो उदय वसि काहू दिन पहिले और कछू दिष्ट परें ता दिन उपवास करै ।।

इति जिनावलोकन मुख व्रत। पृष्ठ संख्या ३६।

(२) यह प्रकार जब आत्मा बाहिर चिह्ननि करि और अंतरंग चिह्ननि करि जथा जात रूप का धारतु हो हैं। तातें कुटुम्ब लोक पूछन आदि क्रिया तें ले करि आगैं मुनि पद के भंग के कारण पर द्रव्यनि के संबंध है तातें पर के सम्बन्ध निषेध हैं इह कथन करै है।

पृष्ठ संख्या ४४।

अन्य ग्रन्थों का उद्धरण—

कवि ने व्रत पालन के प्रसंग में नाटक समयसार, प्रवचनसार के अतिरिक्त जैनेतर ग्रन्थों से भी श्लोक उद्धत किये हैं। इससे कवि की शिक्षा, दीक्षा एवं ज्ञान गम्भीरता के बारे में प्रकाश पड़ता है।

समीक्षात्मक अध्ययन —

बुलाखीचन्द महाकवि बनारसीदास के उत्तरकालीन कवि थे । आगरा से उनका विशेष सम्बन्ध था । लेकिन काव्य के अध्ययन के पश्चात् ऐसे लगने लगता है कि कवि पर बनारसीदास का कोई प्रभाव नहीं रहा । वचनकोश संग्रह ग्रंथ है । इसमें पुराण, इतिहास, कथा तथा सिद्धान्तों का अच्छा वर्णन हुआ है । कवि सीधे सादे शब्दों में अपनी बात पाठकों तक पहुंचाना चाहता है इसमें उसे बहुत कुछ सफलता भी मिली है । लेकिन यह भी सही है कि वर्तमान शताब्दि में भी विद्वानों का ध्यान उसकी ओर नहीं गया । यद्यपि वचनकोश की चार पाण्डुलिपियों की खोज की जा चुकी है इसलिए यह तो नहीं कहा जा सकता कि ३०० वर्षों में किसी ने उसे मान्यता नहीं दी आखिर चार पाण्डुलिपियां भी श्रावकों के ही आग्रह से लिखी गयी होंगी फिर भी कवि समाज द्वारा उपेक्षित ही बना रहा इस कथन में पर्याप्त सत्यता है ।

कवि स्वयं मनोवैज्ञानिक था । वह पाठकों की रुचि एवं स्वभाव को समझता था इसलिये उसने अपने कोश में कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन बड़ी ही चतुरता से प्रस्तुत किया है । उसने वचनकोश का प्रारम्भ २४ तीर्थंकरों के स्तवन से किया है यह स्तवन एक दो पद्यों का नहीं है किन्तु प्रत्येक तीर्थंकर का उसने संक्षिप्त एवं मधुर परिचय दिया है । जो पौराणिक के साथ २ कहीं २ ऐतिहासिक बन गया है । प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पांचों कल्याणकों के वर्णन के अंतर्गत उसने चारों ही अनुयोगों का वर्णन कर डाला है जिसको पढ़ने से पाठक ऊबता नहीं है किन्तु रुचि पूर्वक आगे बढ़ता चला जाता है । कभी वह अपने विषय को गद्य में प्रस्तुत करता है तो कभी पद्य में जिससे पाठक रुचिपूर्वक ग्रंथ को पढ़ता चला जावे । वास्तव में बुलाखीचन्द अपने समय का अच्छा कवि था ।

वचनकोश में जैसवाल जैन जाति की उत्पत्ति का इतिहास, उसी के अन्तर्गत भगवान महावीर का समवशरण सहित जैसलमेर आना, जम्बू स्वामी का मथुरा के उद्यान में कैवल्य एवं निर्वाण होना, काष्ठासंघ की उत्पत्ति, अग्रवाल जाति की उत्पत्ति के साथ अग्रवाल जैन जाति का इतिहास आदि कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का भी कवि ने वर्णन किया है । जिससे ज्ञात होता है कि स्वयं बुलाखीचन्द इतिहास प्रेमी था । वह जैसवाल जैन था इसलिये जैसवाल जाति का जो इतिहास लिखा है वह उस समय की मान्यता के आधार पर लिखा गया है । महावीर

के समवसरण का जैसलमेर में आने का उल्लेख करने वाला संभवतः बुलाखीचन्द प्रथम विद्वान है। उसने लिखा है कि महावीर जैसलमेर आये और जैसवालों को दिगम्बर जैन धर्म में दीक्षित करने के पश्चात् पुनः राजगृही चले गये। मार्ग में कहीं विहार नहीं किया। इस घटना की सत्यता को सिद्ध करने वाले दूसरे प्रमाण नहीं मिलते और न किसी दूसरे विद्वान ने भगवान महावीर के समवसरण सहित जैसलमेर आने का उल्लेख किया है फिर भी कवि ने जो विवरण प्रस्तुत किया है उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार की आवश्यकता है। इतना तो इस वर्णन में सत्य प्रतीत होता है कि जैसवाल जैन जाति की उत्पत्ति जैसलमेर से हुई थी।

अन्तिम केवली जम्बू स्वामी का कैवल्य एवं निर्वाण दोनों का मथुरा नगर के उद्यान में होना तो ऐतिहासिक सत्य है। यद्यपि कुछ विद्वान जम्बूस्वामी के निर्वाण स्थल में मतभेद रखते हैं लेकिन निर्वाणकांड गाथा में अतिशय क्षेत्रों के सम्बन्ध में जो महत्त्म्य लिखा है उनमें मथुरा से ही जम्बूस्वामी का निर्वाण होना माना है। संवत् १७३७ में रचित प्रस्तुत वचनकोश में इसी मत का समर्थन किया है यही नहीं मथुरा कंकाली टीले से जो जैन पुरातत्व की विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है वह भी इसी बात का द्योतक है कि मथुरा कभी जैन संस्कृति का महान् केन्द्र था। जम्बूस्वामी के पूर्व ही यह क्षेत्र जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बन चुका था। अहिंसक वातावरण एवं श्रमण धर्म का केन्द्र होने के कारण जम्बूस्वामी भी स्वयं राजगृही से विहार कर मथुरा पधारे थे और यहीं उन्हें कैवल्य हुआ था। यही नहीं उस समय बिहार से राजस्थान तक का यह मार्ग जैन साधुओं के लिए सुरक्षित बन चुका था इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान महावीर का धर्म उस समय तक यहां लोकप्रिय बन चुका था और उनके अनुयायी पर्याप्त संख्या में मिलने लगे थे।

कोश मे जैसवाल जैन जाति के समान ही अग्रवाल जैन जाति की उत्पत्ति का इतिहास भी दिया हुआ है। लोहाचार्य ने अग्रोहा के निवासियों को जैनधर्म में दीक्षित किया जो बाद में अग्रवाल जैन कहलाने लगे। कवि ने इसे संवत् ७६० (सन् ७०३) की घटना माना है। अग्रवाल जैन जाति का दिगम्बर जैन जातियों में अपना विशेष स्थान है। इसलिए उसका इतिहास जानना आवश्यक है। अग्रवाल जैन जाति के इतिहास के साथ ही काष्ठा संघ की उत्पत्ति का जो रोचक इतिहास प्रस्तुत किया है वह भी कवि की ऐतिहासिक मनोवृत्ति का ही परिणाम है।

समाज में काष्ठ की मूर्तियां बनाने का एक समय बहुत जोर हो गया था। काष्ठासंघी भट्टारक इस दिशा में बहुत प्रयत्नशील रहते थे लेकिन भट्टारक उमास्वामी को काष्ठ प्रतिमा का निर्माण अच्छा नहीं लगा इसलिये उन्होंने इसका विरोध किया और लोहाचार्य से जब भेंट हुई तब उन्होंने निम्न शब्दों में अपना मत व्यक्त किया—

यही सीख हमरें करि धरो, काठ तनी प्रतिमा मति करो ।।
अगनि जरावे घन जिह दहैं, अंग भंग नहिं जिन गुन लहैं ।।
जल डारें चंचल तमु जांन, लेप किये सदोष यह आनि ।।३५।।

उमास्वामी की बात तो मान ली गयी लेकिन काष्ठा संघ ने मूल संघ से से अपना पृथक अस्तित्व बना लिया। इस प्रकार कवि ने काष्ठासंघ की उत्पत्ति का ऐतिहासिक वर्णन दिया है लेकिन काष्ठासंघ के भट्टारक आचार्य सोमकीर्ति ने ने जो काष्ठासंघ की पट्टावली दी है उससे इसका मेल नहीं खाता। सोमकीर्ति ने तो प्रथम आचार्य का नाम अर्हदवल्लभसूरि दिया है जब बुलाखीचन्द ने लोहाचार्य को काष्ठासंघ का संस्थापक माना है।[1] लेकिन वचनकोश में मूलसंघ एवं काष्ठासंघ को एक चने की दो दाल के समान माना है।[2]

वचन कोश में भारत में यवनोत्पत्ति का वर्णन किया है उसके अनुसार वे सब हिंसा में विश्वास करने वाले तथा शौच एवं शील के विपरीत आचरण करने वाले थे।[3]

मंत्र शास्त्र

बुलाखीचन्द ने कितने ही मंत्रों की साधना का भी अच्छा वर्णन दिया है। कवि के युग में अथवा आगरा, आदि स्थानों में मंत्रों पर अधिक विश्वास था। स्वयं कवि कभी मंत्र शास्त्र अच्छे ज्ञाता रहे होंगे ऐसा भी आभास होता है नहीं तो अधिकांश काव्यों में मंत्रों का उल्लेख तक नहीं होता। इसके अतिरिक्त सभी मंत्र विद्या, आदि के प्रदाता एवं कल्याणकारक मन्त्र हैं।

देखिये—

आचार्य सोमकिर्त्ति एवं ब्रह्म यशोधर—डा० कासलीवाल—पृष्ठ संख्या २४।
२. एक चना कीज्यो द्वै दारि, त्यौं ए दोऊ संघ विचार।
३. हिंसा तनो तहां अधिकार, सौच सील नहीं दीसे सार ।।७।।१४३।।

मारण ताडन आदि कियाओं से कवि दूर रहा है। अधिकांश मंत्र छोटे हैं एवं नमस्कार मंत्र पर आधारित है। कवि ने मन्त्रों का पद्यों में महात्म्य लिखकर उनके महत्व में वृद्धि की है तथा उन्हें लोकप्रियता प्रदान की है। कवि ने मंत्रों का वर्णन पदस्थ ध्यान के अन्तर्गत किया है तथा मंत्रों को मन निरोध का उपाय बताया है।

अष्ट सिद्धि नौ निधि सदन, मन निरोध कोगेह।

बरन्यौ ध्यान पदस्थ यह, घटि चित्त परण नेह ॥६८॥८२॥

इस प्रकार बुलाखीचन्द द्वारा निबद्ध बचनकोश हिन्दी की एक महत्वपूर्ण कृति है जो अभी तक साहित्यिक क्षेत्र में पूर्ण अज्ञात थी। राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारों में इसकी निम्न पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं—

(१) क प्रति—पत्र संख्या १५७। लेखनकाल संवत् १८५३ चैत्र बदि ११ बुधवार। प्राप्ति स्थान—शास्त्र भण्डार दि० जैन तेरहपंथ मन्दिर (बड़ा) जयपुर ग्रन्थ समाप्ति के पश्चात् निम्न पंक्ति और लिखी हुई है—"ग्रन्थ प्रतापगढ़ तेरापंथी आमनाय रो"। वेष्टन संख्या।१६७०।

(२) ख प्रति – पत्र संख्या २५२। आ० १५½ × ४½ इन्च। लेखनकाल ×। प्राप्ति स्थान—दि० जैन मन्दिर श्री महावीर स्वामी बून्दी (राज०) वेष्टन संख्या १

(३) ग प्रति—पत्र संख्या २८२। आ० ६-¦-४½ इन्च। लेखनकाल— संवत् १८५६। प्राप्ति स्थान—दि० जैन मन्दिर कोटड़ियों का डूंगरपुर।

वचन-कोश

(बुलाकीचन्द कृत)

अथ वचन कोश लिख्यते

दूहा

मंगलाचरण

समयसार के पंथ नमूं, एकदेश गुरुचयारि ।
परमेष्ठि तिनिरूयौं कहैं, पंच ग्यान गुणधार ॥१॥
वरण गंध काया नहीं, अविनाशी अविकार ।
गुरु लघु गुण बिनु देव यह, नमौं सिद्ध अवतार ॥२॥
श्री जिनराज अनंतगुण, जगत परम गुरु एव ।
अध ऊरध मधिलोक के, इन्द्र करें शत सेव ॥३॥
पंचाचारि तपधनि, सहत परीसह घोर ।
श्री आचार्य धर्मगुरु, नमो नमो करिजोर ॥४॥
ध्यायक जिनवानी विमल, जगि अध्यायक नाम ।
ज्ञान दिवाकर परम गुरु, ताके पद परणाम ॥५॥
बीस आठ जे मूलगुण, साधैं मन वच काय ।
सर्व साधु हूं कर्म ठाणु, वंदौं शीस नवाय ॥६॥

१. आदिनाथ स्तवन

चौपई

पंच परम पद मुक्ति महेश । ज्ञायक शुभग परम योगेश ॥
तासु चरण नमि अशुभहिं वमौं । जिन चौवीस तवें पद नमुं ॥७॥
वंदौं प्रथम श्री आदि जिनंद । नाभिराय मरुदेव्यानंद ॥
धनुष पांचसे ऊंची काय । जन्म कल्याणक विनता थाय ॥८॥

लांछन वृषभ तणो सोभंत । कंचन वरण शरीर दीपंत ।।
वंश इक्ष्वाक आव परिमाण । लख चौरासी पूरब जान ।।९।।
ग्यारह भव तें ज्ञान उद्योत । तब ते बंध्यो उत्तम गोत
एक वरष पीछे आहार । प्रासुक इक्षुदंड रस सार ।।१०।।
नृप श्रेयांस दियो प्रभु दान । हस्तनागपुर जाको थान ।।
वट तल लौंच कियो है सार । गणधर है असी अरु च्यार ।।११।।
समोसरण धनपति ने कर्यो । बारह योजन को विस्तर्यो ।।
तप करि उपज्यो केवल ज्ञान । रात्रिरिद्धि भुगतै भगवान ।।१२।।

दोहरा

पद्मासन आरूढ ह्वै, जिनवर धर्यो जु ध्यान ।
गिरि कइलास आकाश मग, तहाँ भयो निर्वाण ।।१३।।

चौपई

वदि असाढ की दुतीया जोई । प्रभु को गर्भ कल्याणक होई ।।
चैत वदि नौमी के दिना । तप और जनम महोछव घनां ।।१४।।
फागुण वदि ग्यारसि तिथि जान । श्री जिनवर भयो केवलज्ञान ।।
ताको कवि कहा वरननि करैं । रसना एक कितकर उच्चरैं ।।१५।।
कृष्ण चतुर्दशी माघ जु मास । भयो निर्वाण मुक्तिपद वास ।।
चिदानंद परमातम भए । तीनि लोक जाके पद नए ।।१६।।

दोहरा

नर नारी जे भक्ति जुत, तिन दिन करे उपवास ।।
फिरि पावैं भव मनुष्य को, मुक्ति होइ भव नास ।।१७।।

इति वृषभदेव वर्णनं

२. अजितनाथ स्तवन

सागर लाख करोरि पचास । बीते अजितनाथ परगास ।।
जित रिपु राजा विजया मात । गज लांछण हाटक सम गात ।।१।।
पुरी अजोध्या जन्म कल्याण । तीनि भवांतर तैं भयो ज्ञान ।।
धनक च्यारिसै साढे काय । लाख बहत्तरि पूरब आय ।।२।।

वंश इक्ष्वाक नरेन्द्रनि सार । तीन दिवस अंतर आहार ।।
दिनु खीर पीयो मुनि देह । ब्रह्मदत्त नृप विनिता गेह ।।३।।
जंबूवृक्ष तलें तपु लियो रत्नत्रय व्रत निर्म्मल कियो ।।
समोसरण श्रीजिनवर तनों । जोजन साढे ग्यारह भण्यों ।।४।।
करननि सकों कल्प मंडहि आन । सांझ समें भयो केवलग्यान ।।
बहुविधि राज विभूति विलास । ताहि स्वामि पाई सुख रासि ।।५।।

सोरठा

छाडे जोगाभ्यास, कियो सिद्ध सम्मेद पद ।
पहुँचे अविचल वास, सकल करम वन दहन के ।।६।।

दोहरा

जेष्ट वदि मावस गरभ, जनम माघ सुदि नौमि ।
चैत सुदि पांचै जु तप, ध्यान प्रगति कर्म होमि ।।७।।
माघ महीना शुकल पक्ष, दशमी तिथि को ज्ञान ।
पूस उज्यारि प्रतिपदा, ता दिन प्रभु निर्वाण ।।८।।

इति अजितनाथ वर्णनं

३. संभवनाथ स्तवन

चौपई

तीस करोरि लाष निधिवार । कीने प्रभु संभव अवतार ।।
पिता जितारथ सेन्या माइ । सावित्री नगरी के राइ ।।१।।
तुरंग पवन गति ध्वज आकार । वर्ण शरीर हेम उनिहार ।।
साठि लाष पूरब तिथि जान । धनुष चारिसे काय प्रमाण ।।२।।
कुल इक्ष्वाक में पूरणचंद । पंचोत्तरसौ गणधर वृंद
तीनि भवांतर तें सुधि भई । भावरि दिवस दोइ में लई ।।३।।
सूरदत्त सावित्री धनी । ता घर गोपय की विधि बनी ।।
तरवर सुभग सालि जिहि नाम । तातर तपु लीयो अभिराम ।।४।।
अप्राहुक केवल रिद्धि बनी । ठाडे जोग मुक्ति के धनी ।।
राजरिद्ध त्यागें लह्यो पार । भयो सम्मेद गिरि जय जयकार ।।५।।

दोहरा

समवसरण जिनवर तणौं, रच्यौ देवतनि आइ ।
ग्यारह जोजन कौ ठयौ, अघभंजन सुपदाइ ।।६।।
फागुण सुदि नौमी गरभ, जनम पुरिणमा पूस ।
छठि उच्चारि चैत की, लीयौ [illegible] प्रभु मूल ।।७।।

सोरठा

कातिग पूर्यौ ज्ञान, केवलरिद्धि जिनेश कौं ।
काती श्रदि निर्वाण, हुती चौथि ता दिन प्रगट ।।८।।

इति संभवनाथ वर्णनं

४. अभिनन्दन नाथ स्तवन

सोरठा

उदधकोरि विण लाख, बीतैं जग उद्दित भये ।
श्रुत सिद्धांत है साखि, अभिनंदन जिन भान वत ।।१।।

चौपई

समर राय गृह तिमिर नसाइ । प्राची दिसा सिधारथ माइ ।।
अवधिपुरी कपि लछण जांनि । कुल इक्ष्वाक महा बलवांन ।।२।।
सुवर्णवत देही की कांति । षौडश और सत गणधर पांति ।।
पूरब लाष पचास अरोग । काय अहूठ सत धनक मनोग ।।३।।
इन्द्रदत्त विनिता पुर राइ । दूजैं दिन गोक्षीर घटाइ ।।
सालरि वृक्ष सघन सोभंत । ता तर जोग धर्यौ अरहंत ।।४।।
तीन जनम आगैं सुविधांन । सांझ समैं भयो केवलज्ञान ।।
छोडत राज न कीनों मोह । दहा एहैं राग अरु दोह ।।५।।
समोसरण ओजन दश अर्द्ध । रच्यौ देव वनि सहित समृद्धि ।।
ठाढे जोग मोक्ष कौं गए । गिरि सम्मेद तीर्थंकर भए ।।६।।

दोहा

बैशाख उजेरी छठि प्रकंट, तप अरु गर्भ कल्याण ।
माघ उजेरी द्वादशी, ता दिन जनम अरु ज्ञान ।। ७ ।।

पूस शुदि चौदशि विमल, शुक्ल ध्यान धरि ईस।
भयौ कल्याणक पंचमी, सिद्ध भए जगदीश ॥ ८ ॥

इति अभिनन्दन वर्णनं

५. सुमतिनाथ स्तवन

दोहरा

वारधि लाख करोर नौ, तासु घटे परजंत।
सुमतिनाथ आवन भयो, प्रतिबोधन जिन संत ॥ १ ॥

चौपई

मेघराय कौशल्या धनी। श्रीजिन माइ मंगला गणी ॥
चकवाकार ध्वजा फरहरैं। राजनीति त्रिभुवन की धरैं ॥ २ ॥
निर्मलकुल इक्षाक विचार। तीनि जनम थैं करी सम्हारि ॥
वर्ण देह सौवर्ण भणंत। भोजन दोइ दिवस परजंत ॥ ३ ॥
पद्मदत्त विजयापुर ईश। घट्यौ क्षीर आहार जगदीश ॥
प्रियंगु वृक्ष उत्तम अवलोय। प्रभु को तहां तपोधन होइ ॥ ४ ॥
आव बची पूरब लख चाल। सत्तोत्तर शत गणधर जाल ॥
धनक तीन सै जिम बलबीर। दिन के अस्त ज्ञान की भीर ॥ ५ ॥
समोसरण जोजन दश जानि। द्वादश कोठे मध्य बखान ॥
कायोत्सर्ग जोग धरि ध्यान। भयौ सम्मेदगिरि पर निर्वाण ॥ ६ ॥

दोहरा

द्वंज अरु नौमी श्रावण दिवस, शुकल पक्ष बैशाष।
गर्भ जन्म प्रभु तप कह्यौ, श्रीजिन आगम भाष ॥ ७ ॥
चैत्र शुदी एकादशी, ता दिन तप निर्वान।
भषि चैत बदि एकादशी, उपज्यौ केवल ज्ञान ॥ ८ ॥

इति सुमतिनाथ वर्णनं

६. पद्मप्रभु स्तवन

दोहरा

नव करोरि सागर गए, उपजे पद्म जिनंद ;
भविजन सब मुक्त भए, कटे कर्म के फंद ॥ १ ॥

चौपई

धुर राजा कौशांबी तनौं। जिन जननी सुसीमा भण्यौं ॥
कमलाक्षत लांछण ध्वज चंग। गिरिहोत्तर सो गणधर संग ॥ २ ॥
तीन लाख पूरव की आव। अरुण वरण दीसे तनु भाव ॥
धनक अठाईसौ परवांन। काय तुरंगता सुभग बखांन ॥ ३ ॥
तीनि जन्म थैं पहिलैं जाचि। इक्ष्वाक वंश उपजैं प्रभु सांच ॥
सोमदत्त मंगलपुर राय। दूजैं दिन गोक्षीर घटाइ ॥ ४ ॥
वृक्ष प्रियंगुतर तपव्रत लीयो। कर्मनास को उद्दिम ठयौ ॥
गोधूलक को समयो जानि। केवलरिद्धि भई भगवान ॥ ५ ॥
समोसरण जोजन नव आध। अमरनि रच्यौ भक्ति हित साधि ॥
गिरिसम्मेद पंचम कल्याण। ठाढे जोगजु कृपानिधान ॥ ६ ॥

दोहा

माघ बदि छठि गर्भ जिन, तप फागुण बदि चौथि।
कातिग बदि तेरसि सुनौं, जनम ग्यान गुण गोथि ॥ ७ ॥
पूरणमासी चैत्र शुदि, कर्म सकल परिजारि।
मुक्तिस्थल अविचल लह्यौ, जिन स्वामी भवतारि ॥ ८ ॥

इति पद्मप्रभु वर्णनं

७. सुपार्श्वनाथ स्तवन

दोहा

नौ करोरि सागर गए, प्रभु सुपार्श्व अवतारि।
जो जन ध्यावैं भाव धरि, ते पावैं भव पारि ॥ १ ॥

चौपई

सुप्रतिष्ठित नृप बानारसी। मात महिसेनो पुत्र ससी ॥
लाछण स्वस्तिक कै आकार। नील वर्ण तन झलक अपार ॥ २ ॥
बीस लाख पूरव की आव। द्वैसै धनुक काय को भाव ॥
गणधर नवैं पांच सुग्यान। इक्ष्वाक बंश मैं पर परवांन ॥ ३ ॥
तीन जनम थैं स्वपर विचार। जुग बासर गोक्षीर आहार ॥
महेन्द्रदत्त राजा दियो दान। पाटनपुर नगरी शुभथान ॥ ४ ॥

वृक्ष अनूप अति श्रीखंड । तहाँ तपु ले दियौ इन्द्रिन दंड ।।
दिन समस्त गत समयौ भयौ । राजनीति तजि केवल ठयौ ।। ५ ।।
समोसरण सब देशनि रच्यौ । [illegible] कौ [illegible] कह्यौ ।।
गिरिसम्मेद चढ़ि शिवपुर गए । ठाढ़े जोग जिनेश्वर लये ।। ६ ।।

दोहा

भादौं सुदि छठि गर्भ दिन, जनम जेठ सुदि बार ।
तप फागुण बदि सप्तमी, कह्यौ ग्रंथ निरधार ।। ७ ।।
ज्ञान जेठ बदि दूँज को, समासरण मंडान ।
फागुण बदि षष्ठी कह्यौ, श्री जिनवर निर्वाण ।। ८ ।।

इति सुपार्श्वजिन वर्णनं

८. चन्द्रप्रभ स्तवन

सोरठा

सागर नौसै कोटि, जब संपूरण ह्वै गए ।
शशिवत आभा कोटि, चन्द्रप्रभ जिन जनमियौ ।। १ ।।

चौपई

चन्द्रपुरी राजा महासेनि । लक्षमा राणी ता गृह चैंनि ।।
चन्द्र चिह्न दुतीया को भांति । हिमकर बरन देही की शांति ।। २ ।।
दश लाख पूरब आव गनंत । धनक देढसैं काय दिपन्त ।।
तिमिर नसायौ कुल इक्षाक । सात भवांतरस्यौं वैराग ।। ३ ।।
नर्व तीनि संग गणधार । दूजैं दिन लियौ दूध आहार ।।
पद्मखंड नगरी को ईश । चन्द्रदत्त दियौ दान अधीश ।। ४ ।।
तरवर नाग नाम सोमंत । तालर तप लियौ अरहंत ।।
तीन लोक कौ साध्यौ राज । कियौ निज आतम काज ।। ५ ।।
दिन की आदि पंचमीयान । गिरिसमेद थानक निर्वाण ।।
समोसरण जोजन वसु आध । कायोत्सर्ग जोग प्रभु साध ।। ६ ।।

दोहा

गर्भ चैत्र बदि पंचमी, जनम पोष बदि ग्यारसि ।
फागुण बदि तिथि सप्तमी, तप निर्वाण हुलास ।। ७ ।।

पूस बदी एकादशी, केवल ज्ञान उद्योत।
सुरणी सब मिलि पद नमैं, बिमल आतमा ज्योति ॥ ८ ॥

इतिचन्द्रप्रभ वर्णनं

६. पुष्पदन्त स्तवन

सोरठा

सलितापति सब कोरि, अनुकर्म्मै जब खिरि गए।
भए प्रतापी जोर, पुष्पदन्त पुहमी प्रकट ॥ १ ॥

चौपई

काकंदी जनम जिनराय। सुग्रीव पिता श्री रामा माइ॥
लांछण मगर करैं पदसेव। चन्द्राङ्कांत निर्म्मल वपु देव ॥ २ ॥
द्वै लख पूरब बरणी आव। धनक एक सो पुदगल भाव॥
बड़ो वंश भुमि पर इक्ष्वाक। तीन भवांतरितैं उमु नाकि ॥ ३ ॥
सूरमित्र चित्र हर राइ। प्रभुकौं गोरस चगी आहार॥
द्वै दिन बीतैं आयौ आहार। तप लीयौ जहां मल्लिका भार ॥ ४ ॥
षड असी गणधर मंडली। भौंजैं दिब्य धुनि उछली॥
नृप पदबी को साधि विचारि। केवल प्रगट्यौ रांभी बार ॥ ५ ॥
समोसरण वसु जोजन जानि। रत्नजटित अरु कंचन खानि॥
पुरुषाकार जोग अभ्यास। गिरि सम्मेदपर मोक्ष अवास ॥ ६ ॥

दोहा

फागुण बदि नौमी गरभ, जनम पूस सुदि एक।
तप भादौं सुदी अष्टमी, इह जिन वचन विवेक ॥ ७ ॥
आगहन सुदि परिवा दिवस, भई ज्ञान की रिद्धि।
कातिग सुदि तिथि दूंज कौं, भए जिनेश्वर सिद्ध ॥ ८ ॥

इति पुष्पदन्त वर्णनं

१०. शीतलनाथ स्तवन

दोहा

नौ करोरि सागर गए, मिटे दुरति आताप।
शीतल पदबी को धरैं, शीतलनाथ प्रताप ॥ १ ॥

चौपई

भावलपुर दृढरथ नृप तात । नंदाराणी श्रीजिनमात ।
लांछण श्रीवृच्छ हिमवंत देह । कुल इक्षाक सौं कीनो नेह ॥ २ ॥
आव एक लाख पूरब की भणी । नवै धनुक काय प्रभु तनी ।
इक्यासी गणधर गुण कहै । तीनि जनम थैं प्रभु सुधि लहै ॥ ३ ॥
बीतें जब निस बासर ... । ...
पुष्प वसु राजा सिवपुरी ग्राम । दान अशोक भयौ अभिराम ॥ ४ ॥
वृच्छ पलास सुभता सुचि देखि । तातर धर्यौ दिगम्बर भेष ॥
राज करत समकित उद्योत । क्षपि रिपु अंत ज्ञान की ज्योति ॥ ५ ॥
समोसरण देवनि करि बन्यौ । जोजन सप्त अर्द्ध को गन्यौ ।
जोग धर्यौ प्रभु कायोत्सर्ग । गिरि सम्मेदि तैं गए शिवमग्ग ॥ ६ ॥

दोहा

चैत बदी तिथि अष्टमी, गर्भ महोत्सव माघ ।
माघ बदि तिथि द्वादशी, जनम ज्ञान कल्याण ॥ ७ ॥
क्वार सुदि की अष्टमी, धर्यौ दिगम्बर भेष ।
पूस बदि चौदशि दिनां, मुक्ति शिला पर देखि ॥ ८ ॥
एक लाख घट लाख मत, सागर अंतर जानि ।
या मैं कछुक घटाइयै तब पूरौ परमान ॥ ९ ॥

इति शीतलनाथ वर्णनं

११. श्रेयान्सनाथ स्तवन

चौपई

लष निनानिवै छबीस हुजार । इतने वरष दीजिये डारि ॥
इतनी काल उलिंघि जब गयौ । तब श्रेयांस को आवन भयौ ॥१॥
सिवपुरी राजा विमल । विमला राणी बहु गुण अमल ॥
लांछन गैंडो कंचन वरण । गणधर सत्तोत्तर सो सरण ॥२॥
लाख पूरब की .... । आव श्री जिनवर की जानि ॥
असी धनुक की ऊंची काइ । तीनि जनमथैं धरम सुहाइ ॥३॥
इक्षाक वंश कुल दीपक भयौ । यो दुख द्वै दिन परि लयौ ॥

अरिठपुरी नर नाह नरिंद । ता घर लयो आहार जिनंद ॥४॥
तेंदू वृक्ष सघन बड़भाग । तप धरि तहाँ भए बैराग ॥
अरुण उदय बेला निर्मली । तहाँ भए प्रभुजी केवली ॥५॥
छिएक छंडि वसुधा को राज । गिरि सम्मेद पर मोक्ष समाज ॥
समोसरण जोजन मणि सात । ठाढ़ जोग कियो कर्मघात ॥६॥

दोहा

षष्टी स्याम जु जेठ की, भए गर्भ कल्याण ।
फागुण वदि एकादशी, जनम ज्ञान गुण थानि ॥७॥
धुन्यो सावन सुदि तनी, तज्यो गेह जगदीस ।
माघ वदि मावस दिना, मुक्ति रमनि के ईश ॥८॥

इति श्रेयांस वर्णनं

१२. वासुपूज्य स्तवन

दोहा

एक पीन सागर गए, चंपापुरी मझारि ।
वासुपूज्य प्रभु औतरे, त्रिभुवन तारण हार ॥१॥

चौपई

वसुपूज्य है तात को नाम । जयदेवी माता अभिराम ॥
महिष जु लांछण चरननि दिये । सत्तरि धनक काय जिनमये ॥२॥
बरष बहत्तरि लाख प्रमान । आव श्री जिनवर की जानि ॥
मदन वरण दीसैं तनुसार । इक्ष्वाक वंश छाछठि गणधार ॥३॥
तीनि भवांतरि तैं प्रभु जानि । धर्यो कुमार काल बैराग ॥
सुंदर नृपति सिद्धारथ पुरी । ताके घर कीनि प्रभु चरी ॥४॥
दूजै दीनो गौ क्षीर आहार । पाटलतर भए मगन शरीर ॥
निस प्रवेश को समयो जानि । प्रभुजू को भयो केवलज्ञान ॥५॥
समोसरण को सुनि बिस्तार । साढे छह जोजन को सार ॥
आसन पद्म धर्यो शुभ ध्यान । चंपापुर तैं मुक्ति मिलान ॥६॥

दोहा

आषाढ़ बदि छठि के दिन, गर्भ धर्यो जिनमान ।
फागुण बदि चौदशि गनौ, जनम और सवदान ।।७।।
भादव चौदशि ऊजरि, लोंच लियौ जिनराज ।
माघ उजेरि दूज कौं, पंचप्रमदि [illegible] ।।८।।

इति वासुपूज्य वर्णनं

१३. बिमलनाथ स्तवन

सोरठा

सागर नौ तीस परजंत, कंपिलापुर नयरीं जनम ।
विमलनाथ अरहंत, स्यामा राणी जाइयौ ।।१।।

चौपई

पिता जिनेश जानि कृत वर्म्म । शूकर लांछण देषत मर्म्म ।।
साठि धनक दीर्घता जानि । उतनें लाष वरषति तिथि मानि ।।२।।
कनकवर्ण अरु इक्ष्वाकुल । पोषतीन जनमथें भयो संतोल ।।
राजरिद्धि साधी सब देव । छप्पन गणधर करत जु सेव ।।३।।
जंबू वृष्य सघन सुविसाल । लीनों तपु तहां दीनदयाल ।।
दूजें द्यु लीयौ गोक्षीर । नंदराव दाता वरवीर ।।४।।
महापुरुष पाटन नृप जानि । सांझ समें भयो केवलज्ञान ।।
राजनीति सब तजी निदान । समोसरण छह जोजन जानि ।।५।।
उभे जोग शिषर सम्मेद । जानें मोक्षपुरी के भेद ।।
जेठ वदि दशमी के दिना । माता गर्भ धर्यो जिन तना ।।६।।

इति विमलनाथ वर्णनं

१४. अनन्तनाथ स्तवन

दोहरा

सागर नौ पूर भए, ता पीछैं जु अनंतु ।
जिनतें जग उद्दित भयौ, चौदशि व्रत सु महंतु ।।१।।

चौपई

अथपुरी राजा श्रीसेन । सुरजा देवी माता जैन ।।
सेही लाछण है पद चंग । धनुक पचास शरीर उतंग ।।१।।
आव धरी लाष तीस बरष । कुल इक्ष्वाक जनमते हरष ।।
कनकवर्ण चौवन गणधार । तीन जन्म तैं भई सम्हारि ।।२।।
राज विभूति तजौं तप धर्यो । लौंक विरष पीपर तर कियो ।।
विशाषभूति धर्ममंपुर राय । दूध तीन दिन आहार कराइ ।।३।।
केवलज्ञान सांझ अनुसर्यो । समोसरण धनपति विस्तर्यो ।।
पंचमद्धं जोजन के मान । अंतरीक्ष गति ताकी जान ।।४।।
उभै जोग महाबल वीर । गिरिसम्मेद तैं शिवपद धीर ।।
कार्तिक वदि परिवा के दिनां । माता गर्भ धर्यो प्रभु तनां ।।५।।

दोहरा

जेठ स्याम चौदशि जनम, अरु बारसि कौं ग्यांन ।
चैत्र वदि मावस विमल, ता दिन तप निर्वान ।।६।।
इत्यनन्त वर्णनं

१५. धर्मनाथ स्तवन

सोरठा

च्यारि उदधि ता मांहि, पौन पल्लि घट जानियें ।
जब इतनें बीताहि, धर्मनाथ जिन अवतरे ।।१।।

चौपई

रतनपुरी श्री भानु नरंद । राणी सुव्रतधि जिनचंद ।।
बरष लाष दश हीरा रेष । कुरुवंशी कंचन सम देष ।।२।।
पैंतालीस धनुक वपुसार । इ चालीस संग गणधार ।।
भव तीसरे कर्म छय भए । राजत्यागि तपकौं परणये ।।३।।
दधि परनी को रूप अनूप । तातर प्रभु जु नगन सरूप ।।
गह्यो क्षीर दूजै दिन जानि । वद्धमानपुर नगर बषांन ।।४।।
दानपति राजा धरसैंन । सांझ समैं भयो केवलऐंन ।।
समोसरण जिनकौ जानिये । जोजन पांच तनों मानिये ।।५।।

ठाढे जोग जिनेश्वर भए । गिरि सम्मेद पंचम गति गए ॥
शुदि पांचै वैशाष जुमास । श्री जिनवर जू गर्भ निवास ॥६।
माघ सुदि तेरसि जब ठई । जनम अनंद ज्ञान रिद्धि भई ॥
जेठ उज्यारी चौथि बषांन । भए तपोधन श्रीभगवान ॥७॥
पूस सुदि पून्यम के दिना । मुक्ति महोछव आनंद घनां ॥
अंतर पावपलिल उनमानि । सहस करोरि बरष घटि जांनि ॥८॥

इति धर्मनाथ वर्णनं

१६. शांतिनाथ स्तवन

दोहरा

इतनौ काल गएं भयौ, पुन्यतनौ बलसार ।
षोडशमौं जिनराज गणि, शांतिनाथ अवतार ॥

चौपई

गजपुर विश्वसेन महिईश । ऐरादेवी माता जगदीस ॥
मृग लांछण लष बरष प्रमान । कनकबर्ण कुरुबंशी जान ॥२॥
काय धनक चालीस उत्तंग । षट और तीस जु गणधर संग ॥
द्वादश भवतें समिकत वांन । राज विभूति तजी छिणमांन ॥१३॥
नंदिक रूखतरैं तप जोइ । षीर गह्यौ बीतैं दिन दोइ ॥
सुमनस पुर राजा प्रिय मित्र । भयौ दानपति परम पवित्र ॥१४॥
केवल भयो सांझ के समैं । गिर सम्मेद ठाढे शिव रमैं ॥
समोसरण ले आये देव । जोजन चारि अद्ध' करि सेव ॥१५॥

दोहा

भादव वदि जु सप्तमी, लयौ गर्भ अवतार ॥
कारी चौदशि जेठ की, जनम तपोधन धार ॥६॥
जेठ वदि तेरसि दिवश, केवल ज्ञान कल्याण ॥
पूस उजेरी दशमि की, पायो पद निर्वाण ॥७॥

इति शान्तिनाथ वर्णनं

१७. कुंथनाथ स्तवन

सोरठा

सहस कोरि गए वर्ष, रत्नवृष्टि गजपुर भई ।
कुंथुनाथ परतष्य, सूरराय के ग्रहभए ।।१।।

चौपई

श्री राणी माता जिन जानि । अजारूप लांछण पहिचानि ।।
सहस पच्यानवै वर्ष की आव । धनक तीस करि काय उचाव ।।२।।
हेमवरण कुरुवंश प्रधान । गणधर पांच तीस जुत जान ।।
तीनि भवांतर तैं हिम चेत । राज त्याग कियो तप सौं हेत ।।३।।
उत्तम तरुवर तिलक बषांन । तातर प्रभु कियो लौंच विधान ।।
मंदिरपुर वरदत्त नरेश । ताकै क्षीर चढ्यौ जु जिनेश ।।४।।
केवल लह्यौ समैं दिन अंत । ठाढे जोग भए अरहंत ।।
समोसरण है जोजन च्यारि । गिरि सम्मेद तैं मुक्ति पधार ।।५।।

दोहा

सावन वदि दशमी प्रकट, गर्भवास प्रभुलीन ।
वैशाख सुदि दसमी जनम, जानौ भव्य प्रवीन ।।६।।
सुदि वैशाख की प्रतिपदा, तप अरु ज्ञान समाज ।
तीज उजेरि चैत की, शिव पहुँचे जिनराय ।।७।।

इति कुंथनाथ वर्णनं

१८. अरनाथ स्तवन

सोरठा

वरष हजार करोरि, अनुकर्म्मैं जब थिर गए ।
अर जु नाथ अवतारि, गजपुर नयर सनाथ किए ।।१।।

चौपई

पिता सुदर्शन देवी माय । लांछण नंदावर्त्त दिखाइ ।।
सहस चउरासी वृष जीवंत । कुरुवंशी ह्राउ सब कंत ।।२।।
धनक तीस उत्तंग शरीर । तीनि तीस गणधर बलवीर ।।
तीन जनम तैं आपा लख्यौ । राज समाज सकल तहाँ नख्यौ ।।३।।

वृष्ठ श्रांच की उत्तम जोइ । तातर तपु लीयौ तम पोइ ॥
अपराजित गजपुर भूपाल । ता घर मटचौ क्षीर किरपाल ॥४॥
केवल उपज्यौ साहु प्रवीन । समोसरण जोजन अर्द्ध तीन ॥
गिरि सम्मेद तैं उमै जोग । मुक्ति बधू स्यौ भयो संजोग ॥५॥
तीज अंधेरी फागुण मास । ता दिन कियौ गर्भ निवास ॥
अघहन सुदि परिवा शुभ कर्म्म । इंद्रनि कियौ महोछव जन्म ॥६॥

दोहा

चैत उज्यारी पूर्णिमा, तप लीनो भगवान ।
आघहन सुदि चतुर्दशी, पंचम ज्ञान विधान ॥७॥

इत्यरनाथ वर्णनं

१६. मल्लिनाथ स्तवन—

सोरठा

अंतर कह्यौ विचार, चौवन लाष जु वरष कौं ।
मल्लिनाथ अवतार, मिथिला नयरी जानियैं ॥१॥

चौपई

पिता कुंभ हरिवंशी गोत । प्रभावती का कौष उदोत ॥
लांछण कलस वर्ण तनु हेम । बीस आठ गणधर सौं प्रेम ॥२॥
पचपन सहस वर्ष की आव । धनक पचीस सराहै काय ॥
जाती समरण तीनि भव तनी । कुमार काल दीक्षा पद गनौं ॥३॥
अशोक वृक्ष तल कीनौ श्रोर । दूजै दिन पीयौ क्षीर न श्रोर ॥
नंदिसेन नैं दीनौं दान । महकहर पुर को राजा जान ॥४॥
केवल रिद्धि निसाकी आदि । जोजन तीस सभा मरजाद ॥
पुरुषाकार जोग की रीति । गिरि सम्मेद यैं कर्म वितीत ॥५॥

दोहा

चैत उज्यारि प्रतिपदा, गर्भवास आनंद ।
माघहन एकादशी, जनमरु तप जिनचंद ॥६॥

ज्ञान पूस बदि दुइज को, प्रकट भयो संसार ॥
फागुण सुदि की पंचमी, लह्यो मुकति पद सार ॥७॥

इति मल्लिनाथ वर्णनं

२०. मुनि सुव्रतनाथ स्तवन

दोहा

बरष लाख षट बीस तैं, मुनिसुव्रत परगास ।
सुमतिराय पदमावती, राजग्रही में वास ॥१॥

चौपई

कूरम चिह्न दीपैं निसान । तीस हजार बरष लौं जान ॥
बीस हाथ दीरघ जिनदेह । स्याम वरण [illegible] कहेव ॥२॥
तीन जनम तें संजम गई । चंपक तरुवर दीष्या लई ॥
विश्वसेन मिथिलापुर धनी । दान दियौ करि विनती घनी ॥३॥
दूजै दिन स्वामी बलवीर । सब तजि लीनौं उत्तम धीर ॥
राजरिद्धि तजि रवि के अंत । भए केवली श्री अरहंत ॥४॥
अष्टादश गणधर मंडली । द्वादश सभा मधि कर रली ॥
समोसरण धनपति तब रच्यौ । अर्द्ध जुगम जोजन को पच्यौ ॥५॥
विनु बैठे कियौ आतमकाज । गिरि सम्मेद पर मुक्ति समाज ॥
सावन बदि दुतिया गुण सनी । गर्भ कल्यानक रचना बनी ॥६॥

दोहा

बैसाख बदि दशमी विमल, जनमत तप परधान ॥
बैशाख बदि नौमी कही; उपज्यौ केवलज्ञान ॥७॥
फागुण बदि की द्वादशी पंचम गति के ईश ।
करै महोछव भगति बर, नर तिरयंच सुरीस ॥८॥

इति मुनिसुव्रत वर्णनं

२१. नमिनाथ स्तवन

सोरठा

बरष पंचलाख जानइनिहूं को जब होइ गये ।।
उपजे नमि भगवान, मिथिलानयरी विजय धर ।।१।।

चौपई

वीरा राणी जननी जैन । नीलोपल लांछण पद सैन ।।
पंद्रह धनुक अरु कंचन रंग । दश हजार बरष लौं संग ।।२।।
तीनि जनम थैं छाड्यौ कोह । कीनौ हरिवंशनि स्यौं मोह ।
परिग्रह त्याग जोग को भार । बकुल तरुहेठि नैं कीनौ ?? ।।३।।
नेमिदत्त संयोगी राय । दूजै दिन गोक्षीर घटाइ ।।
केवल उपज्यो निश की आदि । समोसरण है की मरजाद ।।४।।
वांनी मर्ले दश मध तीनि । गणधर सभा चतुर परवीन ।।
जिन जू ठाढे सिवपुर गए । गिरि सम्मेद कल्याणक ठए ।।५।।

दोहा

क्वार अंधेरि दूज की, गर्भ कल्याणक होइ ।
वदि आषाढ़ दशमी दिना, जनम महोछव सोइ ।।६।।
परिवा स्याम आषाढ़ की, दीक्षा लई जिनेश ।
मगसिर सुदि एकादशी, उपज्यो ज्ञान महेश ।।७।।
वदि चौदश वैशाख की, ममण कियौ शिव ओर ।
कर्म रूप अरिमर्दि कैं, भए प्रतापी जोर ।।८।।

इति नमि वर्णनं

२२. नेमिनाथ स्तवन

सोरठा

असी तीन हजार, अर्द्ध सात बरष में ।।
जदुकुल तारणहार, नेमिनाथ द्वारावती ।।१।।

चौपई

सिवा देवी राणी जिनमात । समुद विजय राजा गणितात ॥
लांछण संख सहस वर्ष आव । स्याम वरण दश धनुक उछाव ॥२॥
ग्यारह गणधर सेवा रहैं । समकित जनम दशक तैं कहैं ॥
विवाह समय छोड़्यो संसार । सीडासिणी तत्र हलैं तप धार ॥३॥
वीरपुरी राजा नरदत्त । हई चरी गोक्षीर पवित्त ॥
कैवल भवन उदै संचरयो । जोजन देढ़ समा थल करयो ॥४॥
पद्मासन प्रभु जोग विचार । मुक्ति स्थल प्रभु को गिरनार ॥
छठि उज्यारी कातिग मास । जिनवर भयो गर्भ निवास ॥५॥

दोहा

सुकल पक्ष सावनी, तिथि षष्ठी शुभवार ।
जन्म कल्याणक और तप, इन्द्रनि कीयौ विचार ॥६॥
कातीं सुदि एकादशी, प्रगटयौ ज्ञान महंत ।
सुदि आषाढ़ की अष्टमी मुक्ति भए अरहंत ॥७॥

इति नेमिनाथ वर्णनं

२३. पार्श्वनाथ स्तवन

दोहा

वरष पांचसै गत गये, जगमें कियो प्रकाश ।
नागराय आसन दियें, पापहरण जिनपासि ॥१॥

चौपई

अश्वसैन वानारसी गांम । वामा जिनमाता को नाम ॥
नौ हाथैं करि काय विशेष । एक शत वरष आवको लेष ॥२॥
उग्रवंश तनु दुति है नील । ग्यारह भवतैं साध्यो शील ॥
वरयो कुमारैं दीक्षा रुप । तरवर तब परम अनूप ॥३॥
दायपुर धनदत्त नरेश । खीर चरी दीन्ही परमेश ॥
निश कि समैं पंचमी स्याम । समोसरण सवा जोजन मान ॥४॥

दश गणधर ज्ञानी राजंत । जिन प्रतिबोधें जीव महंत ।।
ठाढे जोग भयो निर्वाण । गिरि सम्मेद शिखर शुभ थान ।।५।।

दोहा

कृष्ण द्वैज वैशाख की, गर्भवास अवतार ।
पूस वदि एकादशी, जनम रु तप अविकार ।।६।।
चोथि शु कारी चैत की, प्रगट्यो पंचम ज्ञान ।
सावन सुदि सातैं दिना, जिनजू को निर्वान ।।७।।

इति पार्श्वनाथ वर्णनं

२४. महावीर स्तवन

दोहा

वर्ष बहत्तरी के गए, महावीर जिनराय ।
कुंडलपुर नगरी जनम, [illegible] ।।१।।

चौपई

पिता सिधारथ लांछण सिंघ । सात हाथ की काय उतंग ।।
प्रभु की आव बहत्तरि वर्ष । गणधर ग्यारैं हैं परतक्ष ।।२।।
उग्रवंश देही दुति हेम । तेतीस जनम थैं बांध्यो नेम ।।
योग धरयो तब राजकुमार । सघन वृक्ष शालिर को सार ।।३।।
कुमार सैं कुंडलपुर धनी । दूधधरी ताके घर बनी ।।
केवल उपज्यो सांझी बेर । समोसरण जोजन के फेर ।।४।।
पावापुरी धरयो थिर ध्यान । ठाढे जोग भए निर्वान ।।
आषाढ सुदि छठि गर्भ निवास । जनम चैत सुदि तेरस तास ।।५।।
अगहन वदि ग्यारसि तप जानि । वैशाख वदि दशमी को ज्ञान ।।
कातिग वदि मावस पुनीत । सिद्ध भए सब कर्म्म जितीत ।।६।।

इति श्री वर्द्धमान वर्णनं

सरस्वती वन्दना

चौपई

तिनैं सुमिर आगैं पग धरों । शारद तनी भगति अनुसरों ।।

अनेक शब्द करि [illegible] । सुमिरत जाइ कुमति सब नसें ।।१।।
मुख जिन उद्भव मंगल रूप । कवि जननी और परम अनूप ।।
करि अंजुली कर सीशु नवाइ । करौं बुद्धि कौं मोहि पसाइ ।।२।।
जनम जरा मरण विहंड । सोभित छहू दर्शन तुंड ।।
रनु झुण पग नेवर झणकार । अविरल शब्द तनी दातार ।।३।।

इति मंगलाचरणं

मानुषोत्तर वर्णन

नमिता चरण सकल दुख दहौं । जैमवाल उतपति सब कहौं ।
अधो मधि है लोकाकाश । पुरुषाकार बखानें तास ।।१।।
लोकमध्य है त्रसी त्रस नालि । चौदह राजू उचित विसाल ।।
चरण स्थल जुग बसैं निगोद । नित्य इतर जिन कथन विनोद ।।२।।
अनंतानंत जीव की खानि । कबहूं ताकी होइ न हानि ।।
तहां आवतनी न मरजाद । पंच जीव यह रीति अनादि ।।३।।
जितने जीव मुक्ति नित जाहिं । तितनें इहांतें निसरांहिं ।।
घटै नहीं निगोद की राशि । बढै न सिद्ध अनंत विलास ।।४।।
अधोलोक तनौं परमान । कटि प्रदेश तें नीचो जांनि ।।
ऊपर ऊदर लिलाट परजंत । ऊर्ध्वलोक की हद्द गणंत ।।५।।
मध्यलोक उद-स्थल गनौं । द्वीप समुद्र संख्या विनु भणौं ।
पडधो येत्र नाभि के ठाम । मानुषोत्र है ताको नाम ।।६।।
मानुषोत्र मरजादा जानि । द्वीप अढाई सागर मानि ।।
पहिलैं जंबूद्वीप विचार । जोजन लाख एक विस्तार ।।७।।
तीनि लाख है वलयाकार । मध्य सुदर्शन मेरु पहार ।।
जोजन लाख तुंग है सोइ । जोजन सहस भूमि में होइ ।।८।।
ताके पूरब पश्चिम भागणों । क्षेत्र तीस है अविचल भणों ।।
भरत ऐरावत हूं ए जानि । उत्तर दक्षिण परे बखानि ।।९।।
ए सब मिलि भए तीस रु चारि । तहां है शशि है रवि को उजियार ।।
द्वीप समुद्र पर आगें जानि । दुगुण दुगुण इनको परमान ।।१०।।

तामें और जु परवत पडे । पदम ग्रह ऊपरि तिनि बडे ।
श्री घृत आदि जुदं ग्यारारि । तिनको तहां सदैव निवास ।।११।।
तिनतें नदी चतुर्दश चली । अविचल तहा समुद्र है मिली ।।
गंगा सिंधु रोहिता नाम । रोहित औ हरिता अभिरांम ।।१२।।
हरिकांता सीता ए दोइ । सीतोदा नारी अवलोइ ।।
नरकांता औ सुवर्ण नागनी । रूप्यकुला रक्ता फुनि सुनि ।।१३।।
रक्तोदा चौदह ए नाम । स्वच्छोदक तिनमें अभिरांम ।।
नताधावलि लवणोदधि नीर , जोजन लक्ष द्वै अद्भुत गंभीर ।।१४।।
खारी जलनिधि बहु जंतुनि भर्यो । ठौर ठौर बडवानल धर्यो ।।
मिष्टोदक पीवैं सब सोइ । सदधि मधि नहि रंच समोइ ।।१५।।
द्वीप घातुकी ताचौफेरि । जोजन लाख चारि में मेर ।।
विजयाचल जानौं गिरि नाम । गिरि प्रति भई ऐरावत ठाम ।।१६।।
सलिता गिरि प्रति दस अरु चारि । पूर्व रीति है लेहु विचारि ।।
ता या फेर समुद्र को नाम । कालोदधि मीठो जल ठाम ।।१६।।
आठ लाख जोजन विस्तार । वेढ्यौ वज्र बेदि अपार ।।
ता पाचल पुष्कर वर दीप । जोजन सोलह लाख समीप ।।१८।।
जोजन आठ लाख विस्तार । पुष्करार्द्ध ता माहि विचार ।।
पूरब पश्चिम गिरि अभिराम । मंदर विद्युत माली नाम ।।१६।।
मेरु संबंध द्वै जे गणों । भरथ ऐरावत चारिवु भणौं ।।
पूर्व विदेह साठि अरु च्यारि । तिनकौ प्रलय न कहूं लगार ।।२०।।
नदी चतुर्दश गिरि प्रति जानि । सत्तरि और एक सौ मानि ।।
इहां लौं मानुषोत्तर पिहचानि । देव बिना कोऊ आगैं न जानि ।।२१।।

यह अनादि की तिथि कहवाइ .... ।।

अब सब क्षेत्रनि कौ परमान । सत्तरि और एक सौ जानि ।।
तामें दश ऐरावत भरथ । सौ और साठि विदेह समर्थ ।।२२।।

विरहमान वरतैं जिन बीस । सदा साश्वते प्रभु जगदीस ।।
एक तनो जब होइ निर्वान । दूजे को होइ गर्भ कल्यान ।।२३।।
शेष सदा अविनाशी जोइ । सदाकाल चौथई तहां होइ ।।
विनाशीक तिनि मैं अब लहौं । भरत ऐरावत दश जे कहीं ।।२४।।
कछु न अविचल दीसैं तहां । छहों काल वरतैं है जहां ।।
सुनि सो साठ क्षेत्र को हाल । तहां सदा चतुर्थम काल ।।२५।।
मुक्तिपंथ सम्यक् परिकार । तहां तैं चलतु रुकत सगार ।।
जब दशमें पंचम परवरैं । कोउरण मुक्ति पंथु पगु धरैं ।।२६।।
जो कोई जीव सम्यक्ती होइ । बारह अनुव्रत पालैं सोइ ।।
ताके फल विदेह अवतार । चेतनि है जु करें सम्हालि ।।२७।।
सुख सौं मुक्ति रमणि कों वरैं । कर्म उपद्रव सो निज्जरैं ।।
अल्प बुद्धि सूक्षम मम ज्ञान , अढाई दीप तनों बखांन ।।२८।।
कर्यो संक्षेप पनैं विस्तार । ब्यौरो कहत ग्रन्थ अधिकार ।।
जा कौं सब ब्योरे की चाह । बड़े ग्रन्थ देखौं अवगाह ।।२९।।

इति मानुषोत्तर वर्णनं

असंख्यात अनंत गणित भेद वरणन

या तैं द्वीप समुद्र जे और । दुगुण दुगुण गणि तिनि की ठौर ।।
ऐसें करि भाषे असंख्यात । स्वयंभू रमन अंत विख्यात ।।१।।
लेषो असंख्यात की गुणौं । जिनवाणी जैसो कछु सुनौं ।।२।।
तब पहीले में सरसौं भरैं । सो सरसौं सुर निज करि धरैं ।।
द्वीप एक प्रति समुद्र जु एक । डारतु जाईंय है जु विवेक ।।३।।
जांसु द्वीप मैं खूटैं सोइ । फिरि गरता बाही सम जोइ ।।
पूरे होत एक इह करैं । सो पहिलैं गरता में ले भरैं ।।४।।
अवगरता जो द्वीप समान । जहां सरसौं षूटी ही जांन ।।
ताकी सरसो लेइ उचाइ । एक एक फिरि डारतु जाय ।।५।।

एक रहैं जब पाछैं फिरैं । ताहि प्रथम गरताले भरैं ।।
फिरि पूरैं ता द्वीप समान । भरता एक धनैं धरि ग्यांन ।।६।।
ता पर सरसौं फिरि उचकाय । द्वीप समुद्र एक डारतु जाय ।।
एक रहैं फिर ताहू लाइ । पहिले गरता मध्य भराइ ।।७।।
जब वह भरे करत इह रीति । लै उगइ सुनी रे मीत ।।
एक तृतीय गरता कर सोइ । पहिले कल्पित गरत समोइ ।।८।।
करि एकत्र जु डारतु जाइ । नापत नापत एक रहाइ ।।
करि गरता गिरि ताहि समान । एक बचे पहिले धरि ग्रान ।।६।।
अनुक्रम फिरि गरता वह भरे । सब ले एक दूजे में करै ।।
सो सब ले कल्पित सों भेल । द्वीप समुद्र प्रति डारैं मेल ।।१०।।
फिरि पहिले के भरतो जाइ । पूरण भए तो उचकाय ।।
एक एक दूजे में चलें । तब वह रीति दूसरो सले ।।११।।
एक तीसरे सर्व जु गोद । कल्पित ले फिरि करैं विनोद ।।
वह सब घटि जब एक रहंत । फिरि दूजो गरता मेलंत ।।१२।।
पूर्व रीति जब जब वह भरैं । तब तब एक तीसरो करैं ।।
वह विधि भरैं तीसरो जबैं । चौथो एक जु डारैं तबैं ।।१३।।
और सकल कर ले उचकाय । कल्पित गर तासौं जुर लाइ ।।
करतु चलैं पहिली की रीति । एक रहैं तीजैं भरि मीत ।।१४।।
जब जब तीजो भरतो जाइ । एक एक चौथो जु भराइ ।।
ऐसी रीति चतुर्थम भरे । पूरो भए सकल उद्धरे ।।१५।।
जब जब जहां छेहली सरसौ जाइ । स्वयंभू रमण समुद्र कहाइ ।।
असंख्यात याही को नामं । मेरु तैं अर्द्ध रजू सो ठाम ।।१६।।
मध्य लोक को अंतर जोइ । बात वलय वेढ्यो अब सोय ।।
घात असंख्या और असंख्यात । नाम अनंत ही विख्यात ।।१७।।

दोहरा

जिनवर मुख उदभव प्रगट, श्रुत अगाध सिद्धांत ।।
तिनमैं मुनिमैं बरनई, गण संत असंख्य अनंत ।।१८।।

इति असंख्यात अनंत गणित भेद वर्णनं

योजन गणित भेद वर्णन

चौपई

अब सुनि आवपलिका कथा । जिनवानी भाषी है जथा ।।
राई आठ तनौ तिल एक । एक जव वसु तिल यह विवेक ।।१।।
अथ वसु उदरे उदर मिलाइ । सो तो आंगुल एक कहाइ ।।
द्वादश आंगुल मामें कोइ । एक विलादि कहावै सोइ ।।२।।
जुगम विलादि जहां लौं दोर । कहियें हाथ एक सा ठोर ।।
लीजैं हाथ चारि कौं [illegible] । ताकौ [illegible] कहावै [illegible] ।।
द्वै हजार जब गनता जाइ । सो तो एक कोश ठहराइ ।।३।।
चारि कोश जब एकतकरैं । ताकौं लघु जोजन उच्चरैं ।।
जब गणियैं जोजन सो पंच । जोजन महा एक गणि संच ।।४।।

इति जोजन गणित भेद

पल्यायु भेद वर्णन

चौपई

पलि आवकी गणियै जदा । चनि गरता लघु जोजन तदा ।
चाडौ ठाडौ जोजन एक गहरौ तितनौ यहै विवेक ।।१।।
भोग भूमि मेंढा के बाल । जो दिन सात तना होइ बाल ।
ताइ खंडु अनभागी करै । रौंदि दाबि ता कूपहि भरैं ।।२।।
चक्रीरथ सुर गंगापूर । करि पासकैं ताकौं चकचूर ।।
एक सप्त वर्ष बीति जब जाइ । तहां तैं एक खंड निसराइ ।।३।।

अनुक्रम कूप रिक्त जब होइ । आव पलि कहावै सोइ ।।
जोतिस भीतर आव प्रमाण । इनहीं पलि नप्यो तु जानि ।।४।।

इति पल्यायु भेद

पल्यसागर भेद वर्णन

चौपई

अब सुनि सागर आव प्रमान । ज्यौं श्री जिनवर करयौ बखांन ।।
कूप महा जोजन को खंड । तब अनभागी आवै खंड ।।१।।
ज्ञान शक्ति सो सत खंड करैं । तासु आ गरताले भरैं ।।
बीतैं एक शत वर्ष विकार । एक केश करि खंड निहार ।।२।।
खालो होइ कूप जब जबै । सागर पल्य कहावै तबै ।।
पलि जहां दश कोराकोरि । तब इक सागर संख्या जोरि ।।३।।

इति पल्यसागर भेद वर्णनं

राजु गणित भेद वर्णन

चौपई

अब सुनि रज्जू गणित को भेद । जैसो जिनवर भाख्यो वेद ।।
महालाख जोजन को कूप । पहिलौ ऊंडौ पूरब कूप ।।१।।
सागर पल्य कुंवा को चार । एक खंड है लीया विचार ।।
ताको खंड तब एक सौ करै । ज्ञान शक्ति सौं कूपं भरैं ।।२।।
एक खंड तब वहां से कढे । मेरु सुदर्शन माथैं चढे ।।
जोजन लाख तनौ परिमान । एक खंड धरि सौ फिरि आनि ।।३।।
इह विधि भरतु जिनि कटे सोइ । रज्जू पल्य तब ही अवलोइ ।।
कोराकोरी दश पल्य जबै । सागर एक कहावै तबै ।।४।।
अब सागर दश कोराकोरि । सूचि एक तहां तू जोरि ।।
सूचि जाइ दश कोराकोरि । धनरो बचन सुनि मोरि ।।५।।

दश कोराकोरि धनरोय । ताकी होइ एक पदरोय ।।
वै दश कोराकोरी जब वहैं । तब जग सेढि नाम जिन कहैं ।।६।।
ता जग सिद्ध को सतम भाग । गणत एक रज्जु यह लाग ।।
असे चौदह रज्जु प्रमान । ऊँचे तीनि लोक को जांन ।।७।।
रज्जू तीन सें तेतालीस । घनाकार बरण्यों जगदीस ।।
अब सुनि पूरब की मरजाद । जामैं लहिये अंतस आदि ।।८।।

इति रज्जू गणित

दोहा

सत्तरि लाख करोरि मित, छप्पन सहस करोरि ।।
इतनें वरष मिलन्हगे, पूरब संख्या जोरि ।।१।।

इति पूरब गणित

षट्काल वर्णन

चौपई

मध्यलोक सब रज्जु प्रमान । श्रुत सिद्धान्त करै बषान ।।
अब सुनि छहौं काल व्यौहार । कितक जीव कैसो विस्तार ।।१।।
अंतकाल नासैं दश षेत । भरत ऐरावत भूमि समेत ।।
छहौं काय प्राणी नहीं दीस । तब एक जुक्ति करै असईस ।।२।।
जुगल बहत्तरि ले उछंग । विजयारध धर लेउ अभंग ।।
तब फिर दशों षेत्र निमये । जैसे के तैसे वेदिये ।।३।।

सुषमा सुषमा काल वर्णन

चौपई

सुषमा सुषमा प्रथम जो काल । आयु प्रवर्तै तहां विसाल ।।
जब उनि जुगलनि इन्द्र विचार । दश षेत्रनि मैं करै संचार ।।४।।
अब सुनि काल रीति क कछु कह्यौ । जितिक प्रमाण व्यवस्थिति लह्यौ ।।
सागर कोराकोरी चारि । प्रथम काल मर्याद विचार ।।५।।
जुगल जीव वरतैं तहि काल । सुंदर कोमल अति सुकमाल ।।
मति श्रुति अवधि जु तीनों ज्ञान । उपजै तहां यैं साथ बखांन ।।५।।

तीन पल्य की पूरी आय । छह हजार धनक की काय ।।
बेर प्रमाण आहार जु करैं । सांऊ तीनि दिवस में लहैं ।।७।।
पूरे दश विधि उत्तम दान । कल्पवृष्य सब के गृह जान ।।
सो तरु दश प्रकार बरनये । तिनि के नाम सुनौ गुण जये ।।८।।

कल्प वृक्षों के नाम

चौपई

तूरज मध्य विभूषा जानि । स्रग अरु ज्योति द्वीप गुण खानि ।।
गृह भोजन भाजन अरु भास । सुनि अब इनकौ दान प्रकास ।।६।।
मद्य वृष्वमादिक दातार । तूर्य देय बाजित्र विचार ।।
आभरण देइ विभूषा रूप । स्रग तरु देइ पुष्प विनु दूष ।।१०।।
सूर्य समान हरैं तम जाल । ज्योति वृष्य असो गुणमाल ।।
दीपदान दीप तैं जानि । गृह दाता गृह रुप बषांन ।।११।।
भोजन तरुवर भोजन त्यागि । भाजन पातर वृष्य सौलागि ।।
वसन सकल देइ वस्त्र उदार । कल्पद्रुम ए दश परकार ।।१२।।
एहिं विधि सुष सौं काल बिताइ । आव जहां नो मास रहाइ ।।
नारी गर्भ होइ तिहिं समै । पूरो होइ जुगल सहं जमैं ।।१३।।
माता छींक पिता जंभाइ । ततषिणवे बदलै परजाइ ।।
सकल शरीर जाइ षिरि ऐसें । पवनै तैं कपूर उड जैसें ।।
कर्म वेदनी की नहीं पीर । अगनी दाह नहीं करै शरीर ।।१४।।
वे दोऊ मरि स्वर्ग अवतरे । जिनवाणी प्रकाश यों करे
दोऊ शिशु अंगुठा रस पीय । दिन उंचास तरुण वपु कीय ।।१५।।
जनमत भया बहु नव थांन । तरुण भये पति नारी जांन ।।
सनै सनै बहु बीतै काल । परिवर्तौ दूजौ गुणमाल ।।१६।।

सुषमा काल वर्णन

चौपई

सुषमा नाम ताको स्तुत कहैं । जुगल जीव तामें हू रहैं ।।
कोराकोरी सागर तीनि । काल मर्यादा कही नवीन ।।१७।।

दोइ पल्य आयु उतकिष्ट । धनसहस्त्रं काय वरिष्ठ ।।
लेइ आहार गये दिन दोइ । परमित तसु बहेरा जोइ ।।१८।।
कल्पवृक्ष करें मध्यम दांन । महिमा काल तनि यह जांनि ।
इह विधि काल दूसरी जाइ । काल तीसरी तब सरसाइ ।।१९।।

सुषमा दुषमा काल वर्णन

सुषम दुषम है ताको नाम । जीव जुगल ताके अभिराम ।।
कोरा कोरी सागर दोइ । काल तनी मर्यादा होइ ।।२०।।
धनक सहस दोइ की काय । एक पल्य की आव विहाय ।।
लेइ आहार एकांतरे जीव । कह्यौ आवले भरि जु सदीव ।।२१।।
दान जघन्य कल्प तरु देहि । जीव सकल आरति से लेहि ।।
अष्टम अंस पल्लि को कह्यौ । तृतीय काल में बाकी रह्यौ ।।२२।।
गुप्त भए कल्पद्रुम और । जुगल धर्म तब लइ मरोर ।।

चौदह कुलकर

भया चतुर्दश मनु औतार । चंद्र सूर उगे निरधार । २३।।
पहलो कुलकर प्रतिश्रुत जान । दूजो सनमति सुभग बखांनि ।।
क्षेमंकर तीजे को नाम । क्षेमंधर चौथो अभिराम ।।
सीमंकर पंचम मनुराय । सीमंधर षष्टम बरनाय ।।
विमलवान सप्तम बर्नयो चक्षुष्मान तहां अष्टम भयो ।।२५।।
प्रसेनजित नोमौं जानियें । अभिचन्द्र दशमौं मानिये ।।
चन्द्रप्रभ ग्यारहौं बखांन । हेमदेव द्वादशमों जान ।।२६।।
प्रश्नजीत तेरमौं मनुचन्द । चोंदहौं कुलकर नाभिनंद ।।
परम विशुद्ध सकल गुणलीन । सब जीवन में महाप्रवीन ।।२७।।
लोप होइ कल्पद्रुप ज्यों ज्यों । कुलकर भाषें आगें त्यों त्यों ।।
भावी काल बखानै यथा । कहैं सकल जीवन सौं कथा ।।२८।।

दोहा

इह विधि चौदह ए भए, कछु कछु अन्तरकाल ।
तीन ज्ञान संजुगत सब, मति श्रुती अवधि विसाल ।।२९।।
अब सुनि चौथे काल की, महिमा अधिक अनूप ।
प्रगटें चउबीसी जहां, भवहर मुक्ति स्वरूप ।।३०।।

चोपइ

तहाँ मुक्ति को मारग खुले । तजि मिथ्या सब उद्दिम रूसैं ॥
सागर कोराकोरी जानि । सहस बयालीस घटती मानि ॥३१॥
इह परमिति चतुर्थम काल । आयु कोडि पूरब विसाल ।
धनुक पांचसैं काय जु कही । अनुक्रम घटत जाइ जो सही ॥३२॥
जुगल धर्म्म मिट्यो तिहिकाल । प्रकटे सकल जीव गुणमाल ।
असि मसि कृषि वाणिज्य उपजाइ । गये कल्पतरु यह अधिकाइ ॥३३॥
मेघ पटल जुरि वर्षा करैं । तिनकी वृष्टि कृषि बहु करैं ।
बादल भुवि तैं जोजन चारि । ऊँचे रहैं धरैं जलधारि ॥३४॥
सबको बेल प्रमाण आहार । निति प्रति भुंजैं होइ करार ।
हैं सुकाल सदा तिहि काल । परैं न कबहूं नहीं अकाल ॥३५॥
अब सुनि पंचम दुष विचार । रहैं वर्ष इकईस हजार ॥
मुक्ति पंथ को भयो निरोध । रहै न तत्व पदारथ बोध ॥३६॥
सौ अरु बीस वर्ष की आयु । भली त्रिभंगी होइ अघायु ॥
अशुभ त्रिभंगी साधन हार । अल्प भाव धरि दुखी अपार ॥३७॥
कहौं त्रिभंगी को सुनि भेद । जैसो जिनवर भाष्यो वेद ॥
बाल तरुण बिरधा पै चार । त्रिभंगी प्रथम याहि विचार ॥३८॥
तिनि के उदै मध्य अरु अस्तु । तृतीय त्रिभंगी भेद प्रशस्त ॥
निर्धन धन बालरहि तसु जांन । तृतीय त्रिभंगी ताहि बखांन ॥३९॥
बीज सबनि कौं मन बचकाय । इनि त्रिभंगनि को परम सहाय ॥
इनि समयनि मेभाव जु होइ । शुभ अरु अशुभ बंधता होइ ॥४०॥
तासु प्रताप आयको बंध । पाप पुण्य ते घटि बधि बंध ॥
जितक आयु धारी जाइ धरो । ताको लेहु भाग तीसरो ॥४१॥
तामें बंधे आगिली आयु । श्री जिनमार्ग यह ठहराय ॥
तहां न होइ जो बंध विचार । भाग करो यह बिधि नव बार ॥४२॥
नवम भाग तीजो वर जानि । आयु समो अन्तमों सो जान ॥

होइ अब संघेव तहां जो सही । ऐसी जिनवानी तैं लही ॥
एक समैं गति बांधें जीव । चारयौं गति मैं फिरै सदीव ॥४३॥
जीव देह को त्यागै जबैं । आनपूरवी आवै तबै ॥
बंधी होइ जोग तिहकाल । ले पहुंचावै तहां सम्हालि ॥४४॥
तासौं मूढ़ कहैं जमराज । जीव निकासैं करि दुख काज ॥
साढ़े तीन हाथ की काम । जीव अनेक कहैं मुनिराय ॥४५॥
कृषि तैं पोखें जीव शरीर । अलप सुकाल काल बलवीर ॥
सबको भूष तनौ सुनिमान । फल कुषमांड आनि परमान ॥४६॥
तृप्ति नहीं भखैं एक बेर । जैवें दुपहर सांझ सबेर ॥
मध्यम वृष्टि मेघ सब करैं । धर्म विक्षिप्ति तहीं पर मरैं ॥४७॥
ता पीछैं होइ छट्टम काल । दुषमा दुषम महा विकराल ॥
मिथ्यादृष्टि सब जीवनि तनी । धर्म्म वासना रंच न गनी ॥४८॥
बेटी बहिन न मानें कोइ । सबै कुशील नारी नर ओइ ॥
काल मर्यादा कही श्रुत ज्ञान । बरस हजार बीस एक जानि ॥४९॥
हाथ जुगल देही उत्तंग । बीस बरष लौं आव प्रसंग ।
जबकैं सहस बर्ष गत होइ । षोडश बरष आव अवलोइ ॥५०॥
कृषि विनाष होइ सब ठौर । जीवैं जीव आहार अवलोइ ॥
जलचर नभचर जोवन षाइ । तृप्ति बिना सब क्षुधित फिराइं ॥५१॥
संजम तप नहीं दीसे रंच । पाप अधर्म्म तनों तहां संच ॥
अनुक्रम होइ काल को अन्त । रवि शशि निकट उदैत करंत ॥५२॥
तिहि के तेज सकल को नाम । नृष्याधिक जे सुष निवास ।
प्रलय समीर बहै परचंड । बिनासीक सब कहैं विहंड ॥५३॥
जीव सकल तिथि ऐसी करैं । जाइ चतुर्गति मैं अवतरैं ॥
अवसर्प्पिणि यह काल कहावे । फिरि उतसर्पिणी काल प्रभावे ॥५४॥
ज्यों ज्यों अनुक्रम ओरें गिलें । त्यों त्यो उतसर्पिणी उगिलें ॥
छठौ पांचमों पहिलो जोइ चौथो तीजे कैं सम होइ ॥५५॥
तीजे मैं चउबीसी कही । पाप निवार जग निवारण सही ॥
ऐसैं फिरित रहैं छहकाल । है अनादि कौ ऐसो ख्याल ॥५६॥

अनन्तानन्त चौबीसी जानि । या लेखें परतक्ष प्रमाण ।।
केवल बिना न जानी जाइ । यातैं अनंतानंत कहाइ ।।५०।।

दोहा

जब जब होइ चतुर्थ मे, सतजुग अठतालीस ।
गए चौबीसी सु होइ, तहां हुंडासर्प्पिनि इस ।।५८।।
ऊण शलाका पुरुष, जहां दर्प रूप पाखंड ।
होई उपसर्ग जिनंद कौं, [illegible] ।।५९।।
छहौं काल फिरिते रहैं, ज्यौं अरहठ कौ हार ।
भरथ ऐरावत क्षेत्र मैं, जे बरनैं दश सार ।।६०।।

इति षट्काल वर्णनं

ऋषभदेव गर्भ कल्याणक बर्णन

चौपई

अब सुनि सु फिरि उतपत्ति सिष्ट । जथा जुक्ति जो कही वरिष्ट ।।
तीजें काल अन्त मनु वृन्द । चौदहौं कुलकर नाभि नरिंद ।।१।।
मरुदेव्या राणी कौ नाम । शीलवंत सब गुण अभिराम ।।
आयु कोडी पूरब की दीस । काय धनक शत पंच पचीस ।।२।।
आयुभूमि कौ साधैं राज । सुख साता के सर्वे समाज ।
तीन ग्यांन संयुक्त नरिंद । सब जीव कौ मेटैं दंद ।।३।।
निसि दिन धर्म नीति सौं काम । दुखी न दीसैं काउ तिहि ठांम ।।
ऐसी भांति काल बहु गयो । अवधि सुरपति चिंतितु भयौ ।।४।।
धनपति कौं लियो तब बुलाइ । जिन आगमन कह्यौ समभाइ ।।
सो आयौ चल आर्य मझार । नगरी रचना रची सवार ।।५।।
नव जोजन चतुरी निरमई । बारह जोजन लांबी ठई ।।
सब कौं कनक मई आवास । रत्नजड़ित बहु विधि परकास ।।६।।
वन उपवन तहां रचे अनूप । घर घर कामिनि परम स्वरूप ।।
बापी कूप तड़ाग अनंत । निर्म्मल अंब कमल विकसंत ।।७।।

तब धन पनि आगैं नवमास । घर घर बरषाई नग रासि ॥
आई आठ जु देवी तबै । प्रासुक उभय लाई सबै ॥८॥
जननी की सेवा आचरैं । देऊगाष गर्भ शोधना करैं ॥
देह जनित वै जिते विकार । दूरी किय नहीं रहे अहार ॥९॥
जिन माता सोवत सुख चैन । सुपनै देखै पश्चिम रैनि ॥
गज देख्यौ सुर गज सम तोलि । धवल धुरधंर रूप अमोल ॥१०॥
केशरी सिंघ महा बलवान । कमला रूप मनोहर जान ॥
सुन्दर रवि शशि उभय अंग । मीन सुभग पञ्चल अति रंग ॥११॥
पूरण सजल द्वै हाटक रूप । कमल कुलित सर सुभग अनूप ॥
सिंहासन अनुपम अविकार । देखें जननी स्वपन विचार ॥
अमर विमान महा रमनीक । फणिपति सुभग रु सुन्दर नीक ॥
विमल प्रचुर रत्न की रासि । जरत अग्नि उत्तम परगास ॥
ए षोडश सुपनें अवलोइ । दर वेदन भव जाग्रत होइ ॥१४॥
जिनमाता षोडश देषई । चक्री की द्वादश पेषई ॥
नारायण की देखें आठ । वेदराम की इह श्रुत पाठ ॥१५॥
उत्तम जलसैं मुख प्रक्षाल । पहिरे नौतन बसन रसाल ॥
सब सत साज सिंगार अनूप । चलि आई जहां बैठे भूप ॥१६॥
भक्ति जुक्ति सौं सीसु नवाई । राजा की ढिग बैठी जाइ ॥
स्वपन वृत्तांत सकल उच्चर्यौ । फल सुनवे कौ चित्त अनुसर्यौ ॥१७॥
सुनत नृप हिय अधिक हुलास । अवधि ग्यान बल फल परगास ॥
नाभिराय फल कह्यौ विचारि । तुम सुत ह्वै हौं त्रिभुवन तार ॥१८॥
प्रथम तीर्थंकर जनम मही । तुम्हरी कूंष जानियो सही ॥
पृथक पृथक स्वपनें गुणमाल । वर्णन सुनाऊं सुनो उहो नारि ॥१९॥
पहलो देख्यौ गज मय मंत । तुम सुत ह्वै हैं श्री अरहंत ॥
वीर्य बलादिक ग्यान अनंत । वंदे देवी देव अनन्त ॥२०॥
धवल रूप को सुनि फल सार । जग जेष्टी जग गुरु सिरदार ॥
इन्द्र नरेन्द्र खगेसर देव । ज्योतिक व्यंतर करें पद सेव ॥२१॥
सिंह प्रताप महा बलवीर । भयो न ह्वै है कोऊ न धीर ॥
अनन्त मर्यादा कह्यौ बल तास । अनन्त ज्ञान में करैं विलास ॥२२॥

मुनि लक्ष्मी दरशन को भाव । बहुतैं लक्ष्मी करैं सहाव ।।
जनमतें इन्द्र मेरु ले जात । करैं कल्याणक मन विपराय ।।२३।।
पुहप दाम को फल जु अनूप । कीरति उज्वल काम सरूप ।।
जस वल्ली पसरी त्रियलोक । हरैं सकल प्राणी का शोक ।।२४।।
हिमकर देखण को परताप । तू सब मेटैं जग आताप ।।
सूरज फल प्रतापी जोर । मेटैं पाप तिमिर को सोर ।।२५।।
क्रीड़ा करत जु देखें मीन । तू वसतु सुधगर परवीन ।।
पूरण घट को यहै विचार । बिना पढैं विद्या सु भण्डार ।।२६।।
सरवर कुलित तनों फल एह । शुभ लक्षण सब सुत की देह ।।
संख्या सहस आठ की सुनों । तिनें सुमिरें सब पापनि हुनों ।।२७।।
देख्यौ सागर उठत तरंग । केवलज्ञानी पुत्र अभंग ।।
लोकालोक तनों विस्तार । यथा जुगति प्रकटे संसार ।।२८।।
सिंघासन फल एसो जानि । लक्षिन अनेक मुक्तें निर्वानि ।।
सुर विमान तें राज समाज । रूप सौभाग बहुत गजराज ।।२९।।
नागरूप जनमत त्रिय ज्ञान । तीन लोक के नाथ बखांन ।।
रत्नरासि फल उत्तम जोइ । सुत अतुल गुण के सागर होइ ।।३०।।
प्रभु जिन अग्नितनें परभाव । ध्यांन अगनि वसु कर्म अभाव ।
कलुष दुष्ट संपूरण जारि । तू वसैं मुक्ति रमणी भरतार ।।३१।।
फल सुनि परम अनंदित भई । धर्म्म बुद्धि अधिक ईसई ।।
सर्वार्थसिद्धि तें चले जगदीस । मुक्ति आव सागर तेतीस ।।३२।।
कारी दूंज आषाढ को मास । मरुदे गर्भ कियौ जु निवास ।।
गर्भ कल्याण पूजो देव । इन्द्रादिक सब करइ सेव ।।३३।।
करैं कुमारी छप्पन सेव । सकल दुहिलें पूरईं हेव ।।
है अनादि की ऐसी रीति । सेवा करें सबैं धर प्रीति ।।३४।।
निसवासर सब सुख सों जाइ । नव महीनें जब पूरे थाय ।।
जननी हृदय परम आनन्द । कब ह्वैं हैं सुत त्रिभुवन चन्द । ३५।।

दोहरा

महिमा गर्भ कल्याणक की, सुनो भव्य धरि हेत ।
भयहारी सुख करण हैं, पहुंचावें शिवखेत ॥३६॥

इति श्री गर्भकल्याणक वर्णनं

जन्म कल्याणक वर्णन

चौपई

अब सुनि जनम कल्याणक रीति । करें इन्द्र राम मन धरि प्रीति ॥
चैत्र सुदी नौमी के दिना । उत्तराषाढ़ जनम भागिना ॥१॥
भुवि अवतरे जगत के नाथ । मति श्रुति अवधि विराजे साथ ॥
कछू कष्ट नहिं माते होइ । सुख साता सौं प्रसवै सोइ ॥२॥
तब इन्द्रनि जान्यौ बल ज्ञान । भुहमि औतरे श्री भगवान ॥
हर्षित लोक तिनि सुनिए लोक । दूरि बहाये संसय सोक ॥३॥
कलपवासी घंटा ध्वनि करें । और अनाहद रव उच्चरें ॥
ज्योतिकी संखनाद पूरियौ । करि उछाह अशुभ चूरियौ ॥४॥
भवनवासि गृह भयौ आनंद । सिंघ रूप गर्जें सुर वृन्द ॥
पटह बजायौ व्यंतर देव । पहुलास करि हैं प्रभु सेव ॥५॥
भवनवासि चालीस अनूप । व्यंतर दोइतीस शुचि रूप ॥
कल्पवासी चौबीस महंत । आवें पूजन श्री भगवंत ॥६॥
रवि शशि नर तिरयंच जु चारि । ए सब मिलें शत इन्द्र विचार ॥
जान्यौ जनम लीयौ जिनराज । गज ऐरावत लाए साज ॥७॥
अब वरणौं वा गज शृंगार । जो गुरु कही जिनागम सार ॥
एक लाख जोजन गज सोइ । ताके मुख इकशत अवलोय ॥८॥
वदन वदन पर आठ जु दंत । रदन रदन इकसर ठाठ ॥
सर प्रति कमलनि सो पच्चीस । एक लाख कमलनि सब दीस ॥९॥

राजहिं कमलनि प्रति पनवीस । कमल भए सब लाख पचीस ॥
कमल कमल प्रति दल सौ आठ । दल दल एक अपछरा ठाठ ॥१०॥
नर्त करैं बहु आनंद भरी । हाव भाव नैंनवि भावरी ॥
सब मिलि कोटि सताईस नारि । करैं नर्त्त गज मुष पर सार ॥११॥
कनकंकिकिणी औ घनघंट । ऐसे ऐरापति के कंठ ॥
चमर पताका धुजा विशाल । त्रिभुवन को मनमोहन जाल ॥१२॥
ता हाथी पर ह्वै असवार । आयौ इन्द्र सहित परिवार ॥
सब मिलि पुर प्रदक्षण करैं । मुष तैं जय जय रव उच्चरैं ॥१३॥
गई गुप्त इन्द्र की सची । जिन जननी को निद्रा रची ॥
माया मई राष्यौ शिशु अंग । श्री जिनबिंब लयौ उछंग ॥१४॥
निरषत रूप त्रिपत नहिं होइ । परम हुलास हृदय नहिं सोइ ॥
यौं सो जंपै बारंबार । मेरैं लोचन होहु हजार ॥१५॥
निरखौं नयननि रूप अथाह । होहू पुनीत परम पद पाइ ॥
आनंद भरि लै आइ तहां । हरषत बदन इंद्र सब जहां ॥१६॥
प्रथम इंद्र करि लेइ उठाइ । प्रभु चरननि कौ शीसु नवाइ ॥
गज आरूढ भए भगवान । छत्र लियैं सौधर्म ईशान ॥१७॥
सनतकुमार देव जो दोइ । ढारैं चमर अनुपम सोई ॥
शेष शक्र जय जय उच्चरैं । देव चतुर्विध हर्षित फिरैं ॥१८॥
लै गए गगन उलंघ्य अपार जोजन नन्यानवें हजार ॥
मेरु शिखर राजैं वन चारि । सघन सजल कबहून पतझार ॥१९॥
सुमन पांडुक नंदन वन्न । भद्रशालि लखि चित्त प्रसन्न ॥
कल्पांत वात नहीं परसें कदा । फूलैं फलैं छहों ऋतु सदा ॥२०॥
चारचौ दिसा मेरु की लसैं । पहिलैं भद्रशाल वन बसैं ॥
ता ऊपर नंदन वन संच । ऊँचो है जोजन सत पंच ॥२१॥
तितनौ ही जानौ विस्तार । नंदनवन को गिरदाकार ॥
ता ऊँचे सुमनस वन होइ । मेरु पाषली सोमैं सोइ ॥२२॥
तासु फेर की गणली कहौं । सहस्र साठि द्वै लखौं सहीं ॥
अधिक पांचसैं जोजन जांनि । तापर पांडुक वन शुभथांन ॥२३॥

जोजन सहस्र छत्तीस उत्तंग । सुमनस वन तें दीसें चंग ।।
चौरासवें अधिक सो धारि । वन विराजत वलयकार ।।२४।।
धारि सिला पांडुक है जहां । जनम कल्याणक महोछव तहां ।।
वन वन प्रति चैत्यालय देव । पूरव दिशा आदि दे भेव ।।२५।।
ऊंचे चौरे को परवान । और ग्रन्थ तें सुनियो जान ।।
मंदिर प्रति प्रतिमा जिन तनी । अष्टोत्तर सो संख्या गनी ।।२६।।
सम्रहसें अठविंशति सदा । बनें अकृत्रिम नास न कदा ।
धनक पांच सै बिंब उत्तंग । तीन काल बंदौं मनरंग ।।२७।।
सकल पुरंदर हरषित भए । पांडुक वन विभिन्न ले गये ।।
तहां विराजें पांडुक शिला । जानौं अर्द्धचन्द्र की कला ।।२८।।
चौरी है जोजन पंचास । सो जोजन लांबी परगास ।।
वसु जोजन की ऊंची गनी । ललित मनोहर सोभा सनी ।।२९।।
तहां रच्यो मंडप मणि मई । ता मध्य सिंघासन छबि दई ।।
भरी ताल कसाल जु छत्र । दर्पण चमर कलस ध्वज पत्र ।।३०।।
प्रथम धरें हैं मंगल अष्ट । रचे कलस तहां महा वरिष्ट ।।
बदन उदर श्रो गहि परिणाम । एक च्यारि वसु जोजन जांन ।।३१।।
तापर पधराए जिनईश । पूरबमुष कमलासन ईस ।।
पूजा पाठ पढ़ें सब इन्द्र । द्रव्य आठ साजें प्रति इन्द्र ।।३२।।
जलगंधाक्षत पुष्प अनूप । नेवज प्रचुर दीप अरु धूप ।।
फल जुत आठ द्रव्य परकार । पूजा करें भक्ति उरधार ।।३३।।
करें आरती पढ़इ जयमाल । गावें मंगल विविध रसाल ।।
बाजें ताल मृदंग जु बीन । दुंदुभि प्रमुख धुरि ध्वनि छीन ।।३४।।
नत्तित सुर गंधर्व की नारि । हावभाव विभ्रम रस धारि ।।
सची सकल मनोहर नैन । चन्द्रवदन विहसत सुख दैन ।।३५।।
अंग मोरि भंवरी जब लेहि । देखी विधैं परम सुष देहि ।।
थिगदि थिगदि तत थेई ताल । झिमक झिमक झालरी कमाल ।।३६।।
थिगदि थिगदि मुष की थथकार । दिगदि दिगदि संगीत सुतार ।।
द्रुमकि द्रुमकि बाजें दुरमुरी । घुमिकि घुमिकि करि किंकन करी ।।३७।।

ठनन ठनन घंटा ठनराय । मनन मनन भेरं मन नाइ ॥
ताताथैं ताताथैं ताताथैं ताल । तल पशु लय गावे सुर ताल ॥३८॥
बीना बंश मुरज झनकार । तंत वितंत घने सुखकार ॥
नूपुर ध्वनि थकित सुवंश । जिन गुण कहत मनो कलहंस ॥३९॥
मंगल नाद करें सब कोइ । सुर नर सब यह कौतिक जोइ ॥
सुरसरि कलस लेहि एक साथि । क्षीर समुद्र तें हाथि हि हाथि ॥४०॥
तब सुरेश सौधर्म ईशान । प्रभु कौं करें अभिषेक विधान ॥
दही घीव मिष्टादिक जानि । प्रवहोरत रस संकल्पित मान ॥४१॥
ज्यों पंचामृत परमत कहैं । ताही समेलो गनिए गहैं ॥
इंद्रनि कीनी इनकी धार । बिना क्षीर प्रभु कें सिरमाल ॥४२॥
कां भम बचन न मानें कोइ । देखा आदि पुराण में जोइ ॥
सहस अष्टोत्तर कलस विचित्र । ढाले जिनवर सीस पवित्र ॥४३॥
और प्रमुख शृंगार आचार । इन्द्रनि कियो सकल निर्धार ॥
भए जग ज्येठ वरिष्ठ अभिराम । ऋषभदेव राख्यौ प्रभुनाम ॥४४॥
फिरि उछाह सहित वें फिरे । आय अजोध्या में अनुसरे ॥
तहां कियो बहु विधि आनंद । माता को सौंप्यो जिनचन्द ॥४५॥
धनपति कौं प्रभु सेवा राखि । इन्द्र सकल निज गृह आए भाषि ॥
याही तें धनपति धनराय । प्रभु की सेव करें चितु लाइ ॥४६॥

दोहरा

इहं महिमा जिन जनम की, पढ़त सुनत अघ नास ।
निज स्वरूप अनुभव करे, बहु बिन गर्भ निवास ॥४७॥

इति श्री जन्म कल्याणक वर्णनं

ऋषभदेव जीवन

चौपई

नाभिराय मरुदेव्या माइ । आनंद बढ्यो न अंग समाइ ॥
गुरुजन पुरजन सब गृह धाम । मंगल करें सकल नर वाम ॥१॥

पंच शब्द बाजे मनवार । मोतिन झूलैं वंदनबार ।।
रतनचूरि सौं चौक पुराइ । फिरि जिनको अभिषेक कराइ ।।२।।
जग व्यौहार करण विस्तार । फेरि किए सब प्रमुखाचार ।।
बंदी जन बहु दीनें दान । तिनही को नहीं सकौं बखांन ।।३।।
जुग की आदि भयो अवतार । आदिनाथ धर्यो नाम विचार ।।
श्रमजल सब मल रहित सरीर । रुधिर वरण जैसो गोक्षीर ।।४।।
प्रथमसार संघनन स्वरूप । सहज सुगंध सुलक्ष अनूप ।।
मधुर वचन बल अतुल न मान । भाष विचित्री सब सौं जांनि ।।५।।
ए दश अतिशय सहजोत्पन्न । तीर्थंकर बिन होइ न अन्न ।।
अमर आइ वैक्रिय बल फोर । कोऊ मराल ह्वै कोकिल मोर ।।६।।
विविध रूप ह्वै प्रभु सौं रमैं । खेल विनोद करत दिन गमैं ।।
देव पुनीत सकल सिंगार । सुर दिये आनाइ तिन बार ।।७।।
पहिरावैं प्रभु को धरि हेत । निरषत तात मात सुष लेत ।।
और अनूपम भोग विलास । भोगै प्रभु जूनैं सुखरासि ।।८।।
बीस लाष पूरब लौं जानि । कुमार काल मुक्त्यो भगवानि ।।
पाछैं दीयो नृप पद भार । नाभि नरेन्द्र परम उदार ।।९।।
बैठे सिंघासन श्रीजगदीस । युगल धर्म्म निवारयो ईस ।।
खेती बिनज निखन चाकरी । परजा पालन की बिस्तरी ।।१०।।
पुत्री काहू की आनियैं । सुत काहू की तहा जानियै ।।
करैं बिवाहु लगन शुभ बार । इहि विधि बढ़त चल्यो संसार ।।११।।
सो मोपैं बरण्यो क्यों जाइ । हौं मतिहीन नियनके माइ ।।
भए अक्षम कल्पतरु भूमि । क्षुधा तृषा की बाढ़ी धूम ।।१२।।
परजा सब दुख पीड़ित भई । नाभिराय के आगैं गई ।।
जो कुछ कहो सु कीजे नाथ । क्षुधा तृषा करि भए अनाथ ।।१३।।
पुद्गल जर्जरी भूत प्रतक्ष । बिनु आहार न कोइ रक्ष ।।
नाभि नरेश सुनि यह बात । चिंता उपजी उर न समात ।।१४।।
चलि आए जहां त्रिभुवन राय । दुख परजा को कह्यो सुनाय ।।
श्री भगवंत विचारयो ग्यांन । भूत भविष्यति अो वितमान ।।१५।।

ऐसी ही अनादि की रीति । सबको समझाई धरि प्रीति ।।
पुहमि करष उपजाउ जाइ । ता फल भषि पोषौं निज काय ।।१६।।
जो लौं कृषि फल उपजै मही । तौलों एक करौ तुम सही ।।
ए अनादि के इक्षुपु दंड । ले आवौ हनि करो जु खंड ।।१७।।
पेलि पेलि रस काढतु जाव । काया पोषोया कर भाव ।।
सब परजा आनंदित भई । क्षुधा पीर तैं बन महि गई ।।१८।।
लीये इक्ष दंड सब तोरि । रस काढ्यो तिनकौ करि मोरि ।।
भक्षित भागी भूख पियास । घर घर आनंद परम हुलास ।।१९।।
सब जुरि आए देन असीस । तुम इक्ष्वाकु वंश जगदीश ।।
तब तैं प्रभु को वंश इक्ष्वाकु । कह्यौ सुर नर मिलिकर नाक ।।२०।।
तब जान्यौ प्रभु यह निज वंश । थाप्यौ और तीन अवतंस ।।
कुरु अरुउग्र नाथ ए तीनि । प्रभु ने नाम प्रतिष्ठा दीन ।।२१।।
करे परसपर व्याह विधान । तजि निजवंश सगारथ आन ।।
प्रभु के राज दुखी नहिं कोइ । धरि धरि जैन धर्म अवलोइ ।।२२।।
तिहि पुर मद गयंद सौं रहैं । मदिरा नाम और नहिं कहैं ।।
मारु सोइ जो बल बुधि होइ । पुष्प पत्र लैं बाधैं सोइ ।।२३।।
दंड सोइ जो जोगी लेइ । औरण दंड न कोऊ देइ ।।
चंचल चोर कटाक्ष तिया के । जो नित चोरैं चित्त पिया के ।।२४।।
चक्रवाक बिनु कोइ न आन । निशि के समैं बिरह दुख खानि ।।
बिरहाकुल पिक बिना न कोइ । बिरहाकुल पिय पिय रट सोइ ।।२५।।

दोहा

दीपहु बधिक बसे तहां, ज्यौं निस बधे पतंग ।
अवधपुरी ऐसो चलन, रच्यौ ईस मन रंग ।।२६।।

चौपई

सबकें होइ चतुर्विध दान । जिनपूज और गुण सनमान ।।
धर्म्म राज बरतें संसार । पाप न दीसै कहूं लगार ।।२७।।

नाभिराय तब हुलस्यौ चित्त । तरुण भए प्रभु परम पवित्र ॥
कीजै ब्याह सकल सुखरासि । बंदी जन की पूजै प्रास ॥२८॥
ऐसे जगत जीव यहु रीत । करैं सफल हिरदै धरि प्रीत ॥
इह प्रकार विरधै संसार । होइ प्रवर्त्तै लोकाचार ॥२९॥
तब प्रभुस्यौ विनवै मनुराय । तुमतौ जगत पिता जिनराय ॥
आदि अन्त विनु वरतौ सदा । जनम मरण कौ दुख न कदा ॥३०॥
जो मोहि दियो पिता पद ईस । तौ मम बचन सुनो जगदीस ॥
पाणिग्रहन करौ धरि प्रीति । जगमें जोइ यहु बाढै रीति ॥३१॥
लोक बढत तैं धर्म अधिकार । यह प्रभु जू कौ है उपगार ॥
जो मम बचन न करि हौ कांन । पिता वचन की निश्चय हानि ॥३२॥
पुत्र सपूत कहावैं तबैं । पिता बचन प्रतिपालै जबै ॥
तब प्रभु होनहार सब जांन । वै कियौ फिर बहु सनमान ॥३३॥
नाभि नरेन्द्र फूल बहु भई । सकल नृपति के घर सुधि लई ॥
कच्छ महाकच्छ ए द्वै भूप । तिनिके द्वै दुहिता जु अनूप ॥३४॥
कच्छ तनी नंदा मनि माल । नमि कुमार वेटो गुणमाल ॥
जस्ववती महाकछ की सुता । विनमि पुत्र सब गुण संजुता ॥३५॥
वे द्वै प्रभु कौ ब्याही राय । आनंद मंगलाचार कराय ॥
भोग विलास करत संतोष । सब सब भिराणी को कोष ॥३६॥
भरथराय आदि सौ पूत । उपजे सुन्दर सुभग सपूत ॥
ब्राह्मी सुता पवित्र अवतार । पूर्व पुन्य लीयौ जु विचार ॥३७॥
अब सुनि दुतिय रागनी बात । नंदाराणी परम विख्यात ॥
पुत्र जन्यौ बाहूबलि नाम । सुता सुन्दरी गुण अभिराम ॥३८॥
यह विधि बढ्यौ परिग्रह घोर । एक तैं एक प्रतापी जोर ॥
बानारसि नगरी कौ भूप । नाम अंकपन कांम स्वरूप ॥३९॥
सेनापति बडो सब कहैं । नाम नाथ वंश वेदता वहैं ॥
प्रभु के आइ चरण सिर नई । दर्श लहैं आनंद अधिकाई ॥४०॥
विनती करी जुगल करि जोरि । असरण सरण नाथ हौं मोरि ॥

तनुजा मम गृह भई अभिराम । सुलोचना ताकौ है नाम ॥४१॥
भई वर जोग सुता वह ईश । देउं काहि भाषौ जगदीश ॥
तब प्रभु भाखै काल विचार । साख्यौ चलैं जगत ब्योहार ॥४२॥
पितु ईश काहू को देत । एकीभाव जोग वर लेत ॥
जो चक्री सब परनतु जाइ । तौ कैसे संसार घटाइ ॥४३॥

स्वयम्वर वर्णन—

मात पिता इच्छा गुण और । सबल निबल परिकरि हैं दौर ॥
तातैं रच्यौ स्वयम्वर जाइ । तहां सकल नृप लेहु बुलाय ॥४४॥
वरमाला कन्या को देउ । पुत्री निज इच्छा वर लेहु ॥
ताहि बरन कोऊ मानैं बुरो । ताको मान भंग सब करो ॥४५॥
इह सुनि भरत परम आनंद । राजनीति भाषी जिनचन्द ॥
सुनि राजा अपनें घर गयो । प्रभु भाषी सो करतौ लयौ ॥४६॥
देश देश के चाले राय । सुता स्वयम्वर कौं ठहराय ॥
अर्क्क आदि भरथ सुत चले । कंदर्प रूप विराजै भले ॥४७॥
और सकल आये महिपाल । जिनदेखत नासैं उरसाल ॥
रचि विभूति अपनी सब तहां । आए सकल स्वयम्वर जहां ॥४८॥
कन्या के कर माला दई । आइ स्वयम्वर ठाढ़ी भई ॥
कन्या के संग दासी दीन । सबके गुण जानत परवीन ॥४९॥
एक ओर तैं बरनती चली । नाम राजजु स्तुत करि भली ॥
भाषी के बस पहुँची तहाँ । गजपुर धनी विराजैं जहाँ ॥५०॥
भरथ सनौ सेनापति सार । नाम तास है जयकुमार ॥
रतिपति देषत रूप लजाइ । बल उनमान कह्यौ नहिं जाइ ॥५१॥
कुरुवंशनि को नाथ प्रवीन । जाके राज न कोऊ दीन ॥
सुलोचना देख्यौ वह रूप । कंठ करि वरमाल अनूप ॥५२॥

अप अपकार भोअं तब भयो । जयकुमार उत्तम वर लयो ॥
सकल नरेश चले निज गेह । उपज्यो कोह अर्क के देह ॥५३॥
प्रभु देखित क्यों सेवा करैं । डीठ भयो क्यों देखी परैं ॥
दयो निसान जुद्ध के काज । भेड सुभाइ भयो तह आज ॥५४॥
तब मंत्रिनि मिलि यह बुधि दीन । पहले पठऊं दूत प्रवीन ॥
मांगे देइ जुद्ध मति करौ । नहिं तो मनवांछित आदरौ ॥५५॥
पठयो दूत ततछिण तहां । जयकुमार बैठो जहां ॥
दूत वचन सुनि यह परजरयो । मानो अगनि में पूलो परयो ॥५६॥
सुन रे दूत मूढ़ मति मंद । अविवेकी भयो प्रभु को नन्द ।
यह मरजाद पितामह तनी । तोरयो चाहत धरि सिरमनी ॥५७॥
भरथ सुनैं दुख पावैं घनौं । क्यों निज प्रभुता चाहै हन्यो ।
हम सेवा तोहि लौं करैं । जौं लौ नीति पंथ पग धरैं ॥५८॥
लोप्यो चाहै जो इह रीति । तो मोसों नहिं सकि है जीति ॥
वह नहिं जानत है बलवंत । चानैं भरथ राय गुणवंत ॥५९॥
पर्वत गुफा फोरि मैं दई । मम छह खंड तनी जय भई ॥
काहे हो राखौं अग्यान । क्यों मिलि हैं जु वरी बलवान ॥६०॥
दूत गयो फिर जहां कुमार । सुनि ता बचन भयो असवार ॥
आनि जुद्ध कीनो परचंड । जयकुमार तब दीनो दंड ॥६१॥
अर्ककुमार बांधि ले गयो । करि विवाह निजु घर ले गयो ॥
ह्वां तै कुंवर दयो तब छोडि । आदर सौं दयो सन्मुख करोडि ॥६२॥
भरथ निरखि सुत कीयौ धिकार । करैं सु पावैं यह निरधार ॥
जयकुमार को कियो पसाव । हय गय देश कहुत सिर पाव ॥६३॥
राजनीति तुम कीन्ही सही । नतर कुवात बिचरती मही ॥
सेवक सुत सम लखो जानि । जो प्रभु की मेटैं नहिं आनि ॥६४॥
तब तैं यह जग बरती रीति । करैं स्वयम्बर नृप धरि प्रीति ॥
जाहि वरैं सोही ले जाइ । फिरि न ताहि कोउ सकै सताइ ॥६५॥

इति स्वयम्बर नीति वर्णनं

पूर्व लाख श्रेसठि लौं जानि । करयौ राज श्री कृपानिधान ॥
या अंतर इक दिन जिन राज । बैठे हुते सभा सुख साज ॥१॥
नीलंजना नटी कौ नाम । नृत्य करण आई वह ठाम ॥
बीन उपंग बांसुरी बाजैं । ढोडी पंच अमृती राजैं ॥२॥
सुर मंडल बाजैं घन तनी । सारंगी पिनाक बहु भनी ॥
झालरा अमृत कुंडली । कुंभर घाघ मिलि ध्वनि भली ॥३॥
ए बाजे सब बाजन लाग । तब मिलि जु अलापहिराव ॥
प्रथम सप्त स्वर साधि जु लीन । पुनि मिलि सकल सुर एक कीन ॥४॥
रंगभूमि चातुरि पग धरयौ । रच संगीत वदन उचरयौ ॥
सुर सुर कुम कुम धमपि बोलैं । तार बार संग लागें ठोलैं ॥५॥
तत थेई तत थेई तत करैं । ततकि ततकि सुपर्लें उच्चरैं ॥
अंग मोरि भंवरी जब लई । परि धरिवि मृतक ह्वै गई ॥६॥
परमहंस दूजी गति भयौ । देखत सबनि अचंभो भयौ ॥
प्रभु वा मरण बिचारयौ चित्त । उर उपज्यौ वैराग्य पवित्त ॥७॥

बारह भावना वर्णन

दोहरा

अध्रुव असरण जग भ्रमण, एक अनंत असुच ।
आश्रव संवर निर्जरा, लोक धर्म दुर्लभ ॥८॥
ध्रुव वस्तु निश्चल सदा, अध्रु भाव पज्जाव ।
स्कंध रूप जो देखियै, पुद्गल तनौ विभाव ॥६॥

चौपई

जिते पदारथ अस्लभ जानि । गमन नगर सम बरणौ समान ॥
धन जोबन जल पटल जु होत । सजन नारि सुत तडित उदोत ॥१०॥
जल बुद बुद ज्यो बरतें सदा । विनासीक थिर नाहीं कदा ॥
इनसौं जहां न उपज्यो मोह । कहै भावना अथिरण सोह ॥११॥

दोहरा

असरण वस्तु जु परिणमन, सरण सहाई न कोइ ।
अपनी अपनी सक्ति कौं, सबै बिलासी जोइ ।।१२।।

चौपाई

मरण समें क[illegible] लागी । [illegible] के [illegible] लागी ।।
पुष्पनाल कुम्हलाई देव । करितु फिरै सबही के सेव ।।१३।।
राखि सकै नहीं कोऊ ताहि । सरणक जोहें वपु माहि ।।
ताके सरणस कौं मुनिराज । इह असरण भावना कहान ।।१४।।
अरहंतो असलीमत्थो तारण लोया । इदीह संसारे मग्गई ।।
देसाई कुसुलाद, जे सरंति तेम मालभाई ।।१५।।

दोहा

संसार रूप कोऊ नहीं, भेद भाव अग्यान ।।
ग्यांन दृष्टि करि देखिये, सब जिय सिद्ध समान ।।१६।।

चौपाई

परग्रहण जहां प्रीति बहु होइ । भांति भांति के दुख सुख जोइ ।।
चारयौं गति में हिडतु फिरैं । स्वांग लाख चौरासी धरैं ।।१७।।
जो स्वछन्द वरतैं त्रय काल । ता स्वभाव दीजें हग चाल ।।
डरि दई सब पुदगल रीति । तब संसार भावना प्रीति ।।१८।।

दोहा

एक दिसा मानिजु देखि कैं, आपा लेहु पिछान ।।
नाना रूप विकलपना, सोतो परकी जानि ।।१९।।
डोलत डोलत सोवसा, थिर मानें जग भांति ।।
आप स्वभाव आप मुनि, जित तित मनु मनभांति ।।२०।।

चौपाई

फरि जन्म धरयौ मरहे कौंन । छिन में बिनसि जाइ ज्यौं लौन ।।
स्वर्ग नरक दुख सुख कौं सहे । मुक्ति सिला पर जाइ जु रहे ।।२१।।

ए सब जीव द्रव्य के खेल । पुदगल सौं नहीं दीसै मेल ॥
बल वीरजु सुख ज्ञान महंत । सहजानंद स्वभाव अनंत ॥२२॥
धरयौ ध्यान जोऊं ता रूप । सदा अकेलो विमल स्वरूप ॥
जहां जु जाकौ होइ प्रभाव । एकतानू भावना कहाय ॥२३॥

दोहा

भन्न भन्न सत्ता धरैं, भन्न भन्न पर देश ॥
भन्न भन्न विधि मांडला, भन्न भन्न पर वेश ॥२४॥

चौपई

तू नित अन्य जीव सब काल । पुदगल अन्य परिग्रह जाल ॥
संपे पुत्र कलित्र शरीर । कोइ न तेरो सुनि बल वीर ॥२५॥
या दिन हंस पयानौ करै । संगी ह्वै कोऊ न संग धरै ॥
जांहि सेवग साहिब नहीं मान । अनंतातू भावना कहान ॥२६॥

दोहा

निर्मल मति जो जीव की, विमल रूप नियकाल ।
अशुचि अंग जो देखियें, पुंज वरगना जाल ॥२७॥

चौपई

अशुचि खानि कहियें यह देह । तासौं जीव कहां तोहि नेह ॥
रक्त पीवुत मूत पुरीख । इनि सौं भरी सदाई दीख ॥२८॥
हाड चाम केशनि के कुंड । यातें नेह नर्क की कुंड ॥
या सौं जीव रचे नहीं जहां । अशुचि अंग बखानैं तहां ॥२९॥

दोहा

ज्यौं सवछिद्र नौका विषैं, आवै चउदिशि नीर ॥
त्यौं सत्तावन द्वार ह्वैं, होइ जु आश्रव भीर ॥३०॥

चौपई

जो परद्रव्य तनो है सार । राग द्वैष रु करण स्वभाव ॥
वसु मद औ संकल्प विकल्प । सकल कषाय ध्यान गुण अल्प ॥३१॥

उपजै इनके कर्म अनेक । सो सब पुद्गल तनौ विवेक ।।
इणें छांडि जिन आपा गनें । आस्रव भाव सकल तब हनैं ।।३२।।

दोहा

छिद्र मूंदिए नाव के, बहुरि न जल परवेश ।
सबो सूषो काल बल, संवर को यह भेष ।।३३।।
इह जिय संवर आपनो, आपा आप मुनेय ।
सो संवर पुद्गल तनौ, [illegible] हि हेत ।।३४।।

चौपई

आवत देखें जल ही अपार । तब जिय ऐसी बुद्धि विचार ।।
मूंदे सकल नाव के छिद्र । राग दोष जल करें न भद्र ।।३५।।
करण विषैं मद आठ प्रकार । इनि तजि अपनी करै सम्हारि ।।
ईं किरिया तब पैंचे नाव । संवर तनौ कहावै भाव ।।३६।।

दोहा

वियोगी अपने वियोग सौं, न्यारो जानत जोग ।
याकैं देख न सकति हैं, वा गुण धारण जोग ।।३७।।
इह योगी की रीति है, मिलि करें संजोग ।।
तासौं निर्जर कहत हैं, बिछुरण होइ वियोग ।।३८।।

चौपई

जनम जनम जे जोरे कर्म । अब जानौं इनको गुण मर्म ।।
ता नासन को उद्दिम रच्यो । चारित बल रीति तब पच्यो ।।३९।।
उष्ण काल गिरि पर्वत बास । सीत समें जल तट हि निवास ।।
वर्षा ऋतु तरुवर के तलें । सहैं परीसह नेकु न हलें ।।४०।।
मन चंचल को थांमे घोर । इन्द्री दंड देह अति जोर ।।
पूरब कृत थिति पूरी होइ । आगें बहुरिण बंधै कोइ ।।४१।।

यह पुदगल निर्ज्जर की रीति । निश्चय नय जब आतम प्रीति ॥
तजैं जीव परबुद्धि प्रसंग । यह निर्ज्जर भावना सुरंग ॥४२॥

दोहा

सकल द्रव्य तिम लोक में, मुनि के पटतर दीन ।
जोग जुगति सौं धावना, निश्चय भाव भरीन ॥४३॥

चौपई

तीन लोक सब पुरुषाकार । चौदह राजु उचित विस्तार ॥
जुगपद ए निगोद हैं दोइ । पिंडुरी नर्क सात अवलोइ ॥४४॥
घम्मा वंसा मेघा जांनि । अंजन अरिठा मघ्य हैं ठाम ॥
मघवा सप्तम नर्क्क विचार । आव तीनि तीस निविचार ॥४५॥
जंघस्थान परे थल चारि । द्वीप नाग औ असुर कुमार ॥
बसे भवनवासी तिहि ठौर । ऊपरि मध्य लोक की दौर ॥४६॥
उदर समान कह्यो भुवि लोक । अगनित द्वीप समुद्र को थोक ॥
ज्यों पंजरहैं लंगराकार । त्यौंही सो रहैं सुरग विचार ॥४७॥
प्रथम सौधर्म्म ईशान जु दोइ । सनतकुमार माहेन्द्र है जोइ ॥
ब्रह्म ब्रह्मोत्तर दो अभिराम । लांतव और कापिष्ट सु नाम ॥४८॥
शुक्र महाशुक्र सुर गेह । सतार महासतार गनेह ॥
आनत प्राणत ए सुरधाम । आरण अच्युत षोडस नाम ॥४९॥
वक्ष स्थान है ग्रीवक तीन । अधो मध्य ऊरध परवीन ॥
नवनवोत्तर कंठ स्थान । एक भवांतरी तहां जान ॥५०॥
तापर पंचानोत्तर नाम । अहिमिंद्रनि के पांच विमान ॥
सो कहियें सरवारथ सिद्धि । वदन ठौर जानियौ प्रसिद्ध ॥
मुक्ति स्थल ललाट पर गनौं । लोकाकाश यहि तुम भणौं ॥५१॥
त्रिय वलेन वेढ्यौ केम । छालि लपेट्यौ तरु वर जेम ॥
घनाकार है तासु विसाल । रज्जू तीनसैं और तेताल ॥५२॥

छहों द्रव्य करि यो भरि रह्यो । ज्यौं घृत करि पूरण घट धर्यो ॥
यातैं अपर अलोकाकाश । तहा सदा ही मुक्ति निवास ॥५३॥
यह अनादि की थिति [illegible] । करता [illegible] को [illegible] ॥
जिनमें सिद्धि अनन्ता सीस । तीन भुवन है आप गरीस ॥५४॥
तजो अजोग ठौर जिय जान । तब लोकानुभावना बखांन ॥
भाग्य छांडि जो चिर में अंत । तो न बने लोकानु संतु ॥५५॥

दोहा

धर्म करावें और करें, क्रिया धर्म नहीं और ।
धर्म्म जु आनु जु वस्तु है, ज्ञान दृष्टि धरि सोइ ॥५६॥
करन करावन ज्ञान नहि, पढन अर्थ इह और ।
ज्ञान दृष्टि बिनु ऊपजै, मोष तरनी जु झकोर ॥५७॥

सोरठा

धर्म न कियें स्नान, धर्म न काया तप तपैं ।
धर्म न दीये दांन, धर्म न पूजा जप जपैं ॥५८॥

दोहरा

दान करो पूजा करो, जप तप शिन करि राति ॥
आतम वस्तु न वीसरौं, यह करणी बड़ बात ॥५९॥
धर्म जो वस्तु स्वभाव है, इह जानी जो कोइ ।
ताहि और क्यों बूए, सहज ही उपजै सोइ ॥६०॥

चौपई

छिमा आदि जो दश विध धर्म्म । षोडशकारण शिव पद मर्म ॥
दान बिना पूजादिक भाव । व्यौहार धर्म जु कहाव ॥६१॥
जौ लौहैं सराग चारित्र । तौ लौं इन गुण महा पवित्र ॥
वीतराग चरित्र जब होइ । आपुकों आप मुनै सब कोइ ॥६२॥
यह धर्म भावना विचार । करतैं भवदधि पावै पार ॥
इह अनादि को व्यापक अंग । कोऊ तजो मति धर्म प्रसंग ॥६३॥

सोरठा

दुर्लभ पर को भाव, जाकी प्रापति ह्वै नहीं ।
जो आपनो स्वभाव, सो क्यों दुर्लभ जानिये ॥६४॥

चौपई

जब जिय चरतें मध्य निगोद । दुर्लभ सप्तम नरक विनोद ॥
जब आवें सातों पाथरे । एकेन्द्री दुर्लभ मन धरें ॥६५॥
एकेन्द्री यह करें सदीव । पानी तेज वाय के जीव ।
सात सात लाख परजाय । वनस्पति दश लाख गनाइ ॥६६॥
प्रथ्वी काइ सात लख जानि । चौदह लाख निगोद बखांन ॥
तामें इत निगोदी सात । उनिके दुषनि की अगनित बात ॥६७॥
ज्यों लुहार की सडसी माहि । कबहूं अगनि कबहूं जल मांहि ॥
सेष सात लष इतर निगोद । अब सुनि उनके दुष विनोद ॥६८॥
सास उस्वास एक में सार । जामन मरण अठारह बार ॥
आयु तनी संख्या नहीं तास । एकेन्द्री शरीर दुष रासि ॥६९॥
सब मिलि एकेन्द्री की जाति । थावर पंच प्रकार विख्यात ॥
तामें भुव जल हरित जु तीन । कहैं अनंत काय परवीन ॥७०॥
मसूरी दारि तनें परमांन । रहे जीव तिनिके सुख मानि ॥
वै जो जीव होइ मरि कोक । तौ भरि उपलटैं तीनों लोक ॥७१॥
तीनि इन्द्री दुर्लभ होइ । द्वै लख जाति तासु की जोइ ॥
यों भास खुलासा पग डारि । खाट मकोई की जनिहारि ॥७२॥
रसना दोई इन्द्री गनी । श्री जिन आगें ऐसी भनी ॥
यातें इन्द्री दुर्लभ तीनि । द्वै लख जाति ठीकतादीन ॥७३॥
जोंक मांकड बीछू आदि । देह नाक रसना को स्वाद ॥
यातें चौइन्द्री गति दूरि । द्वै लख जाति रही भरिपूर ॥७४॥
बर डांस माखी रु औह कांग । भृंगी भवरी कीट पतंग ॥
रसना नाक आंखि औ देह । चौइन्द्री को विवरण एह ॥७५॥

जे सब मिलि अट्ठावन लाख । लाख छबीस पंचेंद्री भाषि ।।
त्रस चारि बिनु हाड न होइ । बेइन्द्री लौं जानें सोइ ।।७६।।
ताहू में सम्मूर्छन गनो । यौं कहि गए सकल गुनि गना ।।
तामें चौदस लख नर जाति । चारि लाख तिरयंच विख्यात ।।७७।।
ताहू में त्यौरें परवीन । जलचर नभचर थलचर तीन ।।
नभचर सब पंखि पहिचानि । जलचर मीनादीक बखांनि ।।७८।।
सर्प्प चतुष्पद पशु औतार । ए सब थलचर नाम विख्यात ।।
लाख चारि गति देवनि तनी । सोऊ चारि भेद करि सुनी ।।७९।।
भवनवासी कल्प जु दोइ । ज्योतिग व्यंतर सु होइ ।।
कल्पवासी स्वर्गनि में रहैं । सुससों सकल आपदा दहैं ।।८०।।
दशविधि भवनवासी सुर जानि । पृथक पृथक गुण कहौं बखानि ।।
पहलें असुरकुमार हैं जोइ । दंड देहैं नरकनि कों सोए ।।८१।।
नागकुमार दूसरे रहैं । तिनिसौं अष्ट कुली जग कहैं ।।
विद्युत तीजो नाम कहंत । चपला दामिनि जौं चमकंत ।।८२।।
सुपरण चौथो नाम बखांन । अगनिकोल पंचम सुर जांनि ।।
षष्टम वात बखानी सही । जातें अधिक प्रबल बल मही ।।८३।।
सप्तम संतति देव विचार । जो नभ मंडल गर्जय सार ।।
अष्टम आवध नाम जु धरयौ । जासों कहैं वज्र भुवि परयौ ।।८४।।
नवमों दिघ्य ध्वनि आदेस । दशमें दश दिगपाल गनेस ।।
ज्योतिग देव तनौ परिवार । रवि शशि आदि पंच प्रकार ।।८५।।
ग्रह नक्षत्र तारागन सुनो । ऊँचे चलें ताहि अब भणों ।।
पृथ्वी तें जोजन सें सात । और नवें ऊँची अधिकात ।।८६।।
रतन जटित ज्योतिगी विमान । तिनिकी ज्योति चमक परवान ।।
शशि विमान अंजन मनि लसैं । ता ऽ तिबिंब चन्द्रवपु ग्रसैं ।।८७।।
वह स्यामता निरख मति मंद । धारयो जगत कलंकी चंद ।।
पंथ चलित आप पर धर्मों । तिनितें अगनि कोल भुव विषैं ।।८८।।
मरयौ देव कुमति यों कहैं । और टरयौ तारो सब कहैं ।।
राहु केतु हैं ग्रह ए स्याम । निकट न हों रवि शशि के धाम ।।८९।।

हूँ रवि शशि इनि ऊपरि भलें । जोजन एक अधो ए चलें ॥
शशि अरु केत दोऊ एक जोट । दयो चलें छाया की श्रोट ॥६०॥
ज्यों ज्यों छाया छूटति जाइ । त्यों त्यों चन्द्र विमल प्रगटाइ ॥
पून्यों के दिन केतुम श्रंग । सोहत पूरण कहा मयंक ॥६१॥
यहां काहू जिय संशय भई । श्री गुरु सौं इन बिनती ठई ॥
सुनियो जो पून्यों को नाथ । केतु तजे हिमकर । को साथ ॥६२॥
सो काहू तें अन्द अनूप । कबहूं कबहूं स्याम सरूप ॥
तब गुरु कहैं सुनो बुधिवंत । कहों प्रगट जो कही सिद्धन्त ॥६३॥
ता दिन दबै राहू की छांह गहन कहैं अवनी सब मांहि ॥
ताको भेद कह्यो निरधार । ज्योतिग ग्रन्थनि के अनुसारि ॥६४॥
फिरि परिवा तें दाबें केतु । छाया तरउ पति कौं लेत ॥
मावस के दिन सुनों प्रवीन । दीसैं हिमकरि कला विहीन ॥६५॥

दोहरा

रवि शशि सूरह सत्तमौं, होइराय एकंत ।
चन्द्रग्रहण तब होइसी, वादहि भरीय संत ॥६६॥
जासु नक्षहि रवि बसें, तासु अमावसु होइ ॥
राहु सूर सो जब मिलें, सूर ग्रहण तब होइ ॥६७॥

चौपई

अब सुनि व्यन्तर देव विचार । कहिये सकल अष्ट परकार ॥
किनर औ पुरुष विरांम । गंधर्व श्रौर महोरग नांम ॥६८॥
राक्षस अक्ष पिशाच रु भूत । इहि विधि देव कहैं गुण जूत ॥
नारक गति लाख जु चारि । लाख चौरासी सब मिलि सार ॥६९॥
निकसि पाथरिनि बाहिर परे । तिर्यग सुख दुर्लभ अनुसरे ॥
तिर्यग कौं दुर्लभ नर देह । तिनिकौं दुर्लभ सग सुर गेह ॥१००॥
ए दुर्लभ लहि भटक्यो सदा । श्रावक कुल उपज्यो नहिं कदा ॥
कबहूं धरयो नंपुसक रूप । तातें दुर्लभ नारि स्वरूप ॥१०१॥

नारी भएं अधिक दुख खांनि । दुर्लभ पुरुष वेद प्रधान ॥
कर्म शुभाशुभ उदै प्रमाण । पायो नर शरीर शुभथान ॥१०२॥
सत गुरु मुख सुनियो उपदेश । जान्यो निज स्वरूपको भेस ॥
....रस विक्रिय क्षेत्र क्रिया सार ॥१०३॥
तामें प्रथम बुद्धि रिद्धि कही । भेद अठारह तामें लही ॥
केवल अवधि जानियो दोइ । मनपरजय तीजो अवलोय ॥१०४॥
अब दुर्लभ शिव सरवर तीर । जामें विषै रहित शुचि नीर ॥
अब वह नीर हियो जिय जाइ । कर्म आताप सकल बुझि जाइ ॥
लेन न जाउ कहूं तुम दूरि । आतम ताल रह्यो भरपूरि ॥१०५॥
सू जिय निर्मल हंस सुजांन । और न कोऊ ताहि समान ॥
सीतल लहै मुक्ति पद होर । यह दुर्लभ भावना अंकोर ॥१०६॥

दोहा

ए शुचि बारह भावना, जिनतें मुक्ति निवास ।
श्री जिनवर के चित्त में, तबही भयो प्रकाश ॥१०७॥

इति बारह भावना

ऋषभ देव गृह त्याग वर्णन

चौपई

तब आए लौकांतिक देव । कुसुमांजलि दे कीनी सेव ॥
पंचम सुरग है सु विशाल । यह नियोग आवै तिहिकाल ॥१॥
जग अनित्य ताकी सब रीति । वरन सुनाऊ महा पुनीत ॥
तुम प्रभु हो त्रिभुवन के ईश । शशि दिवाकर हो रजनीश ॥२॥
प्राणनाथ अविचल गुणवृन्द । मनभो ईछित मोख अमंद ॥
अगम अघट अध्यातम रूप । गिरातीत श्री अलख अनूप ॥३॥
केवल रूपी करुणाकार । नित्यानंद रहित अविकार ॥
इहि विधि बहु स्तुत परकार । श्री जिन आगैं बरनी सार ॥४॥
जो वह बुद्धि न प्रभु कौं होइ । जगत जीव निस्तरेइ न कोइ ॥
प्रभु समुझाइ गए निज धाम । तब जिनराज महाबल साम ॥५॥

भरतराय को लियो बुलाइ । सौंप्यौ राज भार समुझाइ ॥
सकल देश बांटन तब भए । बाहूबलि पोदनपुर गए ॥ ६ ॥
और सुतनि जो जो चाह्यौं ठोर । बांटि दीयो स्वामी सिरमोर ॥
इतनें अंतर और जु देश । थार्पे प्रभुनें अपर नरेश ॥८॥
भरथ तनी सेवा मनि धरें । अज्ञा भंगन कोऊ करें ॥
प्रथम ही चक्रवर्ति भरतेश । सार्वे खंड छहूंनि के देश ॥६॥
इहि विधि सबको करि सनमांन । जोगारूढ होत भगवांन ॥
सविकार चित्र विचित्र मानियौ । चैत बदि नौमी को जानियौं ॥१०॥
तामें बैठा श्री जिनचंद । नाभि नरेश धरे निजु कंध ॥
सात पैंड लौं वे चले । भाव सहित मन अति ऊजले ॥११॥
सुर नर देव सकल अभिराम । ले गए नंदन वन अभिराम ॥
इंद्रनि कियौ अति उछव तबैं । जय जयकार उच्चरे जबैं ॥१२॥
बट तरवर वहां परम पुनीत । तातरि रिद्धि तजि भए अतीत ॥
नमः सिद्ध मुख तें उच्चरयौ । पंचमुष्ठि लोंच तब करयौ ॥१३॥
मंडे पंच महाव्रत घोर । त्यागौ सकल परिग्रह जोर ॥
मणिमय भाजन में धरि केश । क्षीर समुद्र में डारत भयौ ॥१४॥
पुष्कराद्ध पर पहुँच्यौ जबै । न्योहर गए करतें कच सबैं ॥
भाव द्रव्य ले मघवा गयौ । षीर समुद्र में डारत भयौ ॥१५॥
नाथि चिहुरसौ निज पद जाय । संजम बल प्रभु अधिकाय ॥
संजम तें मनपर्यय ज्ञान । प्रभु के हृदय भयौ सुख खांनि ॥१६॥
मौन सहित तपु करत दयाल । तहां बीत्यौ तब किंचित काल ॥
प्रगट भई आप बसु रिद्धि । श्री जिनवर की परम प्रसिद्धि ॥१७॥
अब सुनि पृथक पृथक गुण तास । होइ सकल मिथ्यामत नास ॥
बुद्धि औषधी बल तप चार । रस विक्रिय क्षेत्र किया सार ॥१८॥

बुद्धि औषधी बल ऋद्धि—

तामें प्रथम बुद्धि ही रिद्धि । अठारह नामें लहौं प्रसिद्ध ॥
केवल अवधि जानियौ दोय । मनपरजय तीजी अवलोय ॥१६॥
बीज चतुर्थम पंचम कोष्ठ । षष्टम संभिन्न श्रोष्टता सोष्ट ॥
सप्तम पादार सारिणी बुद्धि । दूरस परसन अष्टम शुद्ध ॥२०॥

दूरा रसन नवम बुद्धि जांन । दूरा घ्राण दशम बखांन ।।
चतुर्दश पुरब तेरम गनी । प्रत्येक बुद्ध चौदहीं भनी ।।
निमित्त ग्यांन पन्द्रही अनूप । वाद बुद्धि षोडशमें स्वरूप ।।२२।।
प्रग्या हैतु सत्रही विचित्र । दश पूर्वा अष्टा पद पवित्र ।।
अब बरणौं सबके गुण जुदे । जाके सुनत होइ मन मुदे ।।२३।।
केवल रिद्धि कहावै सोइ । जहाँ सर्व दृष्टि जिन होय ।।
तीन लोक प्रतिभासे जेम । जल की बूंद हस्त पर एम ।।२४।।
अवधि बुद्धि को कारण यहै । गत आगत भव सात जु कहै ।।
बिनि पूछें नहीं अवदात । कहैं जब कोऊ पूछै बात । २५।।
सोइ अवधि तीन परकार । देश परम सरबावधि सार ।।
देश एक की मानें बात । सो देशावधि नाम विख्यात ।।२६।।
मानुषोत्र लौं बरने भेद । परमावधि जानैं जिषवेद ।।
तीन लोक संबंधी कहै । सर्वावधि ऐसो गुण लहै ।।२७।।
मनपरजय जब उपजै भेद । मन विकार तजि निर्मल शुद्धि ।।
सबके मनकी जानें जीय । जैसी जाके बरते हीय ।।२८।।
ताहू में द्वै भेद बखांन । रिजु बिपुल भाखें भगवान ।।
सबके मन को सरल स्वभाव । रिजुमति वारै को जु लखाव ।।२९।।
सूधी टेढ़ी सब जानई । विपुलमति ताको मानई ।।
बीज बुद्धि जब उदय कराइ । पठत एक पद श्री जिनराय ।।
पद अनेक की प्रापति होइ । यह वा बुद्धि तनो फल जोइ ।।
एक श्लोक अर्थ पद सुनें । पूरण ग्रन्थ आपतैं भनें ।।३१।।
रह्यो न भेद छिप्यौ कछु तहां । कोष्ठ बुद्धि प्रगटत है जहां ।।
नव जोजन को है बिस्तार । बारह जोजन लाम्बो सार ।।३२।।
चक्रवर्त्ति दल जितक प्रमाण । देश देश के नर तहां जान ।।
एक ही बेर जो बोलें सबै । पहिचानें सब के बच तबै ।।३३।।
संभिण श्रोष्टता बुद्धि विशेष । प्रतक्ष प्रगटैं ऐसे गुण देषि ।।
आदि को एक अन्त को एक । पढ ग्रन्थ पद सुनौं विवेक ।।३४।।

होइ समस्त अर्थ को ज्ञान । कंठ पाठ सब ग्रन्थ बखान ।।
एह पादुनासारिता बुद्धि । जिनबानी तैं पाई सुद्धि ।।३५।।
गुरु लघु रूक्ष उष्ण जो सीत । तिक्त कटुक चिक्कन रस रीति ।।
आठ प्रकार जिनेश्वर कहैं । सपरसन रस इन तैं गुण लहैं ।।३६।।
द्वीप अढाई तै जु असंग । परसे रिद्ध धनि के अंग ।।
इह मरजादा पर उतकिष्ट । जोजन नो तैं गणी कनिष्ट ।।३७।।
सब गुण जुदे कहन को इच्छ । दूरी परसन बुद्धि प्रतक्ष ।।
मीठो करुवो अरु चरपरो । चिकनो और कसेलो धरे ।।३८।।
रसन भेद ए बरणौं पांच । दीप जुगल अर्ध तेलहि सांच ।।
जो कि… सब खोलइ तहां । स्वाद बखानें रिद्धि बल इहां ।।३९।।
दूरा रसन बुद्धि बलवंत । जिन आगम भाषित अरहंत ।।
दुर्गंधा अरु परम सुवास । ए नासा के परम विलास ।।४०।।
पूर्वरीति जानें रिद्धिवान । यह कहिये बुद्धि दूरा घ्राण ।।
रिसभ निषाद गंधार बखान । षडज अरु मध्य धैवत जान ।।४१।।
पंचम सकल मिले सुर सात । सुनि इनके प्रगटन की जात ।।
पुश्व नाभिख रिष भगवान । सुर निषाद नभ गरज प्रमान ।।४२।।
पंचम कंठ कोकिला जेम । सप्तम सुर जु उचारे एम ।।
कहां कहां प्रगटैं सुर सात । पंच शब्द कहिये विख्यात ।।४३।।
प्रथम शब्द जो चर्म बजंत । दूजा फूंक तीसरी तन्त ।।
चौथी झांझि मजीरा ताल । पंचम जल तरंग को ख्याल ।।४४।।
पूर्व रीति तैं सोइ लखाय । दूरा श्रवन बुद्धि परभाव ।।
श्वेत पीत अरु रक्त सुरंग । हरित कृष्ण गुह चक्षु अंग ।।४५।।
वाहा भांति दूरतैं ग्यांन । रिद्धि दुराव अवलोकन जांन ।।
दश पूरव अरु ग्यारह अंग । विनुम सकति विध्याजा अंग ।।४६।।
रोहिणी आदि पंचसो जांनि । क्षुलक आदि सातसौं मांनि ।।
ए देवी सब ता ढिग आव । करैं कटाक्ष हाव अरु भाव ।।४७।।
तिनिको चपल चित्त कदा । करत आर्वे न होइ थिर सदा ।।
अर्थ सकल मुख कहौ विचार । दशपूर्व बुद्धि के अनुसार ।।४८।।

जहाँ चतुर्दश पूरब पढ़े । ग्यारह अंग बिना श्रम बढ़े ।।
बुद्धि चतुर्दश पूरब एह । सोहै रिद्धवंत की देह ।।४९।।
संजम अरु चरित्र विधान । बिनु उपदेशनि दुहुनि के थांम ।।
दया दमन इन्द्री तप घोर । इह प्रत्येक बुद्धि को जोर ।।५०।।
इन्द्र आदि को विद्यावान । प्रावै वाद करण धरि मान ।।
उत्तर प्रथम रहैं सब मनी । इह बल वादि बुद्धि के धनी ।।५१।।
तत्त्व पदारथ संजम संतु । तिनिके सूक्षम भेद अनन्त ।।
द्वादशांग बानी बिनु कहै । प्रग्या बुद्धि होइ गुण लहै ।।५२।।

दोहरा

अन्तरीक्ष भौमंग सुर व्यंजन लक्षिन छिन्न ।
स्वपन मिलैं जब देखिये, आठ निमत्तम अन्न ।।५३।।

चौपई

सूर सोम ग्रह नक्षत्र प्रशस्त । तिनिको ग्रहन अरु न उदयस्त ।।
शुभ अरु अशुभ जानत फल तास । अतीत अनागत सकल प्रकास ।।५४।।
वर्तमान जैसो कछु होय । अन्तरीक्ष को वर्णन सोइ ।।
निमित्त अंग पहिलो यह भलो । अन्तरिक्ष कहियें निर्म्मलो ।।५५।।
छिपी वस्तु जो भूमि मझार । द्रव्य आदि नाना परकार ।।
जथा जुगति सौं देय बताइ । स्वयं बुद्धि पर कौन सहाय ।।५६।।
भूमिकंप फल बरतैं जेम । सब विधि वरण सुनावैं तेम ।।
भूमि भेद कछु गोप्य न रहैं । भूमि ऐसो गुण कहैं ।।५७।।
नर तिरयंच अंग प्रत्यंग । तिनिके दरसन परस अभंग ।।
दुख सुख सब कऊन जानइ । वैद्यक सामुद्रिक मानइ ।।५८।।
करुणाजुत भाषै उपचार । सब जग पर उनिको उपगार ।।
लक्षण प्रगट कोप ग्यान । अंग नाम ऐसो गुण जान ।।५९।।

खग चौपद की भाषा जेती । प्रगटै आनि हृदय सो तेती ॥
तिनितैं जो कछु भावी काल । प्रगट बखान्यो दीन दयाल ॥६१॥
सुख दुख को आगम यही । अब जग सगुण कहावै सही ॥
इह निमित्त को चौथो भेद । सुर कहि नाम बखानैं वेद ॥६२॥
तिलम से औ लसन है आदि । सामुद्रिक तैं जुदे अनादि ॥
तिनिके फल को पूरण ज्ञान । व्यंजन अंग तनौं गुण जांनि ॥६३॥
श्रीवच्छादि लांछण लीक । अष्टोत्तर सौ तिनिकौं ठीक ॥
कर पतरत शुभा शुभ जेम । लक्षण केवल भाखैं तेम ॥६४॥
वस्त्र शस्त्र उमापति छत्र । आसन सैनादिक अरु वस्त्र ॥
राक्षस सुर नर अन्स मंझार । मूषक कंटक शस्त्र पहार ॥६५॥
गोमय अगनि बिनासी होइ । शुभ औ अशुभ तास फल जोइ ॥
प्रगट बखानें संसै नाहि । यह अधिकारी छिन्न के माहि ॥६६॥
सकल पदारथ जो जग रचे । जब वे आइ स्वपन में घचे ॥
तिनिमें प्रगट सुख औ ताप । बरणि सुनावैं स्वपन प्रताप ॥६७॥
इह विधि जे अष्टांग निमित्त । बरण सुनावैं तहाँ पवित्त ॥
सबकी संसै खावैं घोर । बुद्धि निमित्त प्रतिग्या जोर ॥६८॥

दोधरा

इह अष्टादश अंग जुत, । बुद्धि रिद्धि गुण गेह ।
विमल रूप प्रगटैं सदा, आइ तपोधन देह ॥६९॥

इति बुद्धिऋद्धि वर्णनं

अथ औषधी रिद्धि वर्णनं

चौपई

अब सुनि रिद्धि औषधी भेद । अष्ट प्रकार बखानी वेद ॥
विटुमल आमर्म्बल मूल अंग । सर्व दृष्टि विष महा अभंग ॥१॥

तिनिकी विष्टा लेपैं गात । सकल रोग को होई निपात ।।२।।
निर्म्मल अमल निरोग शरीर । विट प्रताप यह परम गंभीर ।।
दांत कान नासा को मैल । देखत रोग सबै गहै गैल ।।३।।
सकल धातु को होइ कल्याण । मल प्रताप गहू परम गंभीर ।।
रोग उरस [illegible] दुखी । [illegible] चिता करि सुखी ।।४।।
हाथ छुवत सावासब छोर । श्राम अंग की ह्यांलीदोर ।।
अमअल में रज लागे अंग । सुख साता दुखहरण अभग ।।५।।
टलैं असाता लागत देह । जल्ल अंग है सब सुख गेह ।।
लार खखार थूंकि ते जानि । व्याधिहरण श्रौ धातु कल्यान ।।६।।
पूरण करैं मनोरथ महा । भूल अंग गुण उत्तम कहा ।।
परसैं अंग लो आवैं ठाइ । जिनको लगैं परम सुखदाइ ।।७।।
हरैं अताप करैं अघ नास । सर्व अंग को इह परगास ।।
काटयौ होइ सर्प नैं कोई । कैं काहु विष पीयौ होई ।।८।।
दृष्टि परैं अतापन रहै । दृष्टि अंग ऐसो गुण लहै ।।
जो कोऊ नैं विशु देइ । ब्यापैं नहीं परम सुख लेइ ।।९।।
बचन योग सबको बिस हरैं । अंग असन विषैं यह गुणधरैं ।।
सर्प्पादिक लहि उनको वास । करैं नहीं मुनि निकट निवास ।।१०।।

दोहरा

यह विधि आठ प्रकार जू, रिद्धि औषधी सार ।
प्रगटैं श्री मुनिराज को, तप बल यह निरधार ।।११।।

इति औषध रिद्धि वर्णनं

बल ऋद्धि वर्णन

चौपई

अब तुम सुनो रिद्धि बल सार । मन वच काय त्रिविध परकार ।।
भिन्न भिन्न गुण तिनि के कहौं । ऐसो गुण आगम में लहौं ।।१।।

श्रुत आवरणी कर्म प्रधान । ताके क्षय उपशम तैं जानि ॥
अन्तर महूरत विषै समर्थ । द्वादशांग बानी कौ अर्थ ॥२॥
तिनके मनमें करैं विलास । यहु कहिये मन बल परकास ॥
द्वादशांग बानी अध्ययन । करत महासुख उपजै चैन ॥३॥
तिनकौ कष्ट न होइ लगार । अंग वाक्य बल के अनुसार ॥
बानी पठत देह श्रम नाहीं । पढइ मंत्र महूरत माहीं ॥४॥
काय अखंडित बल कौं करैं । अंग काय बल यहु गुण धरैं ॥
अतुल अखंड बली बलवीर । सोहै जिनकौ सुभग शरीर ॥५॥

दोहरा

यहु बल रिद्धि गंभीर गुण, प्रगट बखांनी देव ।
उदय होइ तप जोग तैं, यहु जिनबानी भेव ॥६॥

इति बल ऋद्धि वर्णनं

तप ऋद्धि वर्णन

चौपई

सुनौ भव्य अब तप ऋद्धि सार । तामैं सात अंग निरधार ॥
घोर महत औ उग्र बनंत । दीप्त गुण घोर अनंत ॥१॥
सप्तम ब्रह्मा घोर बखांन । अब तिनके गुण सुनौ सुजांन ॥
महानसान भूति अनि होइ । जोग धरैं रुचि सौं मुनि जोइ ॥२॥
सहैं उपसर्ग धुरंधर घोर । याही सैं कहिये तप घोर ॥
सिंघनि क्रीडित आदि उपवास । तिनकौ करैं सदा अभ्यास ॥३॥
मौन अन्तराय सौ यहु पाल । इह कहिये तप महतिरमाल ॥
वेद काय बसु द्वादश मास । इत्यादिक जे औ उपवास ॥४॥
करैं निर्वाहु योग आरूढ । यहु तप उग्र तनौ गुण गूढ ॥
करत उपवास घोर बहु भांति । घटै नहीं देही की कान्ति ॥५॥

उपजैं नहीं दुर्गन्ध शरीर । यह कहियैं तप दीप्त गंभीर ।।
तप्त लोह गोला पर नीर । परत ही सूकैं सहै नहीं पीर ।।६।।
लियैं आहार निहारन जहां । तप्त अंग तप जानौं तहां ।।
अलीचार बिनु मुनि अभिराम । घोर गुण तप याको नाम ।।७।।
दुषमादिक होइ न तास । घोर ब्रह्मचर्य गुण भास ।।
अंत शत और आठ निरधार । तितिकै मुनिवर साधन हार ।।

दोहरा

तप ऋद्धि के सात गुण अभ्यासैं मुनिराज ।
अनुक्रम तातैं जानियै, केवल ज्ञान समाज ।।६।।

X .... X .... X .... X .... X .... X .... X .... X .... X .... X .... X .... X X

काष्ठा संघ उत्पत्ति वर्णन

समोसरण श्री सनमति राय, आरजखंड परयौ सुखदाइ ।
अन्ति समै पावापुर आनि, पुन्य प्रकृति की ह्वै गई हानि ।।१।।
सुधि आषाढ़ चौदसि के दिनां । धार्यौ जोग सकल मुनि जनां ।।
पुर की सीम नखैं नहिं कोइ । पार न जाइ नदी ज्यौं होइ ।।२।।
कातिग सुदि चौदशि आवई । ता दिन मुनि चौदिसि धावई ।।
च्यारि मास पूरो भयौ योग । देय ठान भाखैं सब लोग ।।३।।
गौतम आदि सकल मुनि चंग । ता तल धर्यौ जोग प्रभु संग ।।
हुतो तडाग तहां शुचि रूप । एक कूट ता मध्य अनूप ।।४।।
तापर निबसे श्री भगवान । हिरदैं तुरीय पद शुकल जु ध्यान ।।
कातिग बदि मावस की रीति । चारि घडी जब रह्यौ प्रभात ।।५।।
श्री जिन महावीर तीर्थेश । पंचम गति को कियो प्रवेश ।।
मुक्ति सिलापर सिद्ध सरूप । परमातमा भए चिद्रूप ।।६।।
जो मुनि देखैं नैन निहार । कूट नहीं प्रभु प्रतिमा सार ।।
उनि समान मुनि सुधि हारि । प्रभुजू नैं किल कियो बिहार ।।७।।
भटकत डोलैं चउदिसि मुनी । गौतम ज्ञान रिद्धि तब सुनी ।।
श्री गौतम मुख बानी खिरी । सब के जिय कौ संसय हरी ।।८।।

आए इन्द्र सकल जुरि तहाँ । प्रभु निर्वान ज्ञान मुनि जहाँ ॥
कियौ महोत्सौ पूरव रीति । मुनि सौं कहैं इन्द्र धरि प्रीति ॥९॥
काहे कों मुनि जन भ्रम करयौ । जोग दिसा क्यौं सुधि विसरयौ ॥
सिद्ध सिला निवसें भगवान । काहे कौ तुम चित्त मलान ॥१०॥
तब मुनि कहें सुनौ सुरपती । जोग दिसा तजि दो रे जती ॥
माग्या मिटी भयो व्रत भंग । करें कहा अब भाष्यौ संग ॥११॥
तब सुरपति जिय सोच अपार । आवतु है पंचम अनवार ॥
धर्म रहित परमादी जीव । वरसेंगे ता काल सदीव ॥१२॥
जो हो इनिसों कहो प्रकार । पूरौ करो आइ चौमास ॥
मति डरयो व्रत भंग जु भयौ । तुम प्रभु कें हित हो चित्त दयौ ॥१३॥
सो पंचम परमादी लोग । संख्या तोरि करेंगे जोग ॥
ता तैं आज भलौ दिन जांनि । श्री गौतम भयौ केवल ज्ञांन ॥१४॥
उछव करि सब करयौ विहार । ज्यौं अखण्ड व्रत की नहि हार ॥
तबतें आहूंठ मास को जोग । पंचम काल धरें मुनि लोग ॥१५॥

दोहरा

वाही निधि श्री वीर कौं पूजें पद निर्वान ।
कथा काष्ट जु संघ की, आगें करो बखांन ॥१६॥

इति चतुर्मास भेद जोग वर्णनं

चौपई

गुप्तागुप्त आचारज रिख्य । भद्रबाहु मुनि तिनि के शिष्य ॥
तिनि के पट्ट जु माघनंदि मुनि । ज्यां चरननि में जाइ गुनी ॥१७॥
उनके पट्टाधीश बखांनि । श्री कुन्दकुन्द आचारज जांन ॥
तिनिके पट्ट जु उमास्वाति । जिनतें तत्त्वारथ विख्यात ॥१८॥
तिनिके पट्ट लोहाचारज भए । जिन काष्ठासंघ निरमये ॥
आचारज विद्या भण्डार । साक्षात सारद अवतार ॥१९॥

तिनके तन क्यों उपज्यौ रोग । आय बन्यो मरवाको जोग ।।
बाय पित्त कफ घेरी देह । अब श्रीगुरु धरि आन् नेह ।।२०।।
ह्वै दयाल दीनौं संन्यास । जब जीवन की रही न आस ।।
पुन्य प्रभाव वेदनी घटी । व्याधी सकल मुनिवर तैं हटी ।।२१।।
क्षुधा पिपासा व्यापी अंग । बिनती जु गुरु सौं चंग ।।
टली असाता आयु प्रताप । अब कीजें जो आज्ञा आप ।।२२।।
श्रीगुरु कहे तब भाग्या आन । करि संन्यास मरण बुद्धिवान ।।
ज्यों आगे परमादी जीव । प्रतिपालैं जो व्रत जोग सदीव ।।२३।।
लोहाचारज धरी न कांन कियौ आहार अन्न रु पांन ।।
गुरु मुनि संघ उच्चरै । अट्ठाईस मांर अनुसरै ।।२४।।
लोहाचारज सोच विचार । गुरु तजि कीयौ देश विहार ।।
संवत त्रेपन सात सें साल । विक्रमराय तनौ विख्यात ।।२५।।
आए चले नंदीवर ग्राम । जाकों है अगरोहा नाम ।।
ता पुर अगरवाल सब बसें । धनकरि सब लोकनि की हंसें ।।२६।।
परमत कौ जिनकें अधिकार । और धर्म कौ गनें न सार ।।
अब उनिकि उतपत्ति सांभलैं । मत मिथ्यात सकल दल मलौ ।।२७।।
अगर नाम रिष हैं तप धनी । वनवासी भाता वा भांन ।।
एक दिवस बैठें धरि ध्यान । नारी शब्द परचो तब कांन ।।२८।।
मधुर वचन और ललित अपार । मानौं कोकिला कंठ उचार ।।
छूट गयौ रिष ध्यांन अनूप । लागे निरिखन नारी रूप ।।२९।।
व्याप्यौ काम धीर नहीं धरैं । तिय प्रति तब बोलन अनुसरैं ।।
तब बोली नारी वह जान । नाग तनी मोहि कन्या जान ।।३०।।
जो तुम काम सताये देव । जाचयौ मम पिता कौं करि सेव ।।
निरिखि वरन न धरि है मांन । तुरत करेंगो कन्या दान ।।३१।।
सुनत वचन उठि ठाडे भए । तत्क्षिन नाग लोक को गए ।।
नाग निरिख तपस्वी अवतार कीनौ आदर भाव अपार ।।३२।।
तब ऋषिराय प्रार्थना करी । तव कन्या हमि जिय में बरी ।।
अब तुम देहु हमें करि दांन । ज्यों संतोषु लहें मम प्रांन ।।३३।।

नाग दई तब कन्या ताहि । कर गहि अगर ले गए ताहि ॥
ताके सुत अष्टादश भए । गर्ग आदि सुतमें वरनए ॥३४॥
तिनिको बंश बढ्यो असराल । ते सब कहियें अगरवाल ॥
उनिके सब अष्टादश गोत । भए रिषि सुत नाम के उदोत ॥३५॥
तिनिके सुन्यौं एक आयौ मुनी । पुर के निकट वह उतर्‌यौ गुनी ॥
भिक्षुक जांनि सकल जन नए । भोजन हेत बिनयवत भए ॥३६॥
तब मुनि कहें सुनों धरि प्रीति । हम दिगंबरनि की ऐसी रीति ॥
जो कोऊ श्रावक धर्म कराइ । मिथ्यामत जाकौं न सुहाइ ॥३७॥
सो अपनें घरि आदर करें । ले करि जाइ दया तब चरें ॥
और ग्रेह नहीं आहार । यह हम रीति मुनी निर्धार ॥३८॥
तब पुर जन जिय बिसमय भई । यह कैसा मुनि आयौ दई ॥
जो न देइ हम जाहि आहार । तो आवैं हमरे पन हार ॥३९॥
कछुक लोग तब जैनी भए । श्री मुनिराज चरन आइ नए ॥
धर्म समझि लेहि गुरु उपदेश । तब गुरु जुत कियो नगर प्रवेश ॥४०॥
दयौ भली विधि मुनि आहार । आनंद उछव करें अपार ॥
यह विधि प्रतिबोधें विख्यात । श्री मुनि अगरवाल सौ सात ॥४१॥
तब जिनभवन रच्यौ बहु चंग । रची काष्ट प्रतिमा मन रंग ॥
पूजा पाठ बनाए और । गुरु विरोधि हित कीनि दोर ॥४२॥
चली बात चलि आई तहां । उमा स्वामि भट्टारक जहाँ ॥
मुनि जिय चिन्ता भई अगाध । करी काठ की नई उपाधि ॥४३॥
भली भई परमत किये जैन । सुनत बात उपज्यो उर चैन ॥
चलि आये तहां श्री मुनिराइ । नंदीपुर वर जैनसमाइ ॥४४॥
आवत सुनी श्री निज गुरु भले । आगें ह्वों न आचारज चले ॥
लीनें सकल नगर जन संग । बाजत आगे बाजे मन रंग ॥४५॥
निरखि मुनी तब पकरे पाइ । आनंद बढ्यो न अंग समाइ ॥
तब मुनिराज दई आसीस । लयो उठाइ चरन तें सीस ॥४६॥
तब पुरजन सब बंदन करें । उमास्वामि धर्म वृद्धि उच्चरें ॥
अगोनी करि लाए गांम । राजतु हैं जहां जिनवर धांम ॥४७॥

भोजन हित विनती सब करें । तब श्री गुरु मुख तें उचरें ॥
जो देहै हम गुरु को सीख । और आचारज मानें सीख ॥४८॥
तौ हम लेही या पुर चरी । तब आचारज विनती करी ॥
आग्या होइ करो सोइ नाथ । भयो हमारो जनम सनाथ ॥४९॥
इन मुनि कैहूँ सुनौं [illegible] । शिष्यन मैं भए [illegible] सपूत ॥
परमत भंजन पोखन जैन । धर्म बढ़ायो जीत्यो मैन ॥५०॥
यही सीख हमरे अरि धरयौ । काल [illegible] करो ॥
अग्नि जरावे घन जिह दहै । भंग संग नहिं जिन गुन लहै ॥५१॥
जल डारें चंचल तसु खांन । लेख किये सदोष मह जानि ॥
तब आचारज करी प्रमान । भाखें गुरु सौं वचन निदांन ॥५२॥
पाठन फेरो दीन दयाल । कर पीछी मुरही के बाल ॥
गुरु मानी बाढ्यो मतिरंग । जेउ न उठें शिष्य गुरु संग ॥५३॥
तब तें काष्ठासंघ परवरयौ । मूलसंघ न्यारो विस्तरयौ ॥
एक घना कीज्यौं द्वै वारि । त्यौं ए दोऊ संघ विचार ॥५४॥
जैन बहिर्मुख कोऊ नाहि । नाम भेद दीसें गुरु माहि ॥
तातें भव्य भ्रान्ति जिय तजो । मन वच तन आतम हैं भजो ॥५५॥

दोहरा

कह्यौ काष्ठासंघ को, भेद सकल निरधार ।
गुरु प्रसाद आगे कहौं, पंच स्तवन विचार ॥५६॥

इति काष्ठा संघ उतपत्ति वर्णनं

जैसवाल जाति उत्पत्ति इतिहास—

चौपई

श्री जिनदेव ऋषभ महाराज । जब बांट्यो सब महि को राज ॥
अवधपुरी दई भरथ नरेश । बाहूबलि पोदनपुर देश ॥१॥
और सुतन मांग्यो ठांम । श्रीप्रभु तें दीयो अभिराम ॥
कुंवर अरिजित बाट नरेश । चलि आए जहाँ जैसलमेर ॥२॥

वें मण्डल को साधें राज । सुख साता लें सर्व समाज ।।
तिनिको वंश बढ्यो असराल । जैन धर्म पालें मांहुपाल ।।३।।
उनिके वंश नृपति एक जान । तिनि कीयो परमत सों प्रान ।।
जिनमत की छांडी सब रीति । कल्पित मत सों बांधी प्रीति ।।
शुभ कर्म घटें घटि गयो प्रताप । प्रबलीमंद फले सब पाप ।।
और इकदिन चढ़ाई कीन । गयो देश या पें ते छीन ।।
पर जाकरि राखें........ ठौर । भ्रष्ट भए देश सिरमौर ।।
राज भ्रष्ट ह्वै कृषि आदरी । कोऊ बनिज कोऊ चाकरि ।।६।।
इहि विधि रहित गयो बहुकाल । छूटि गयी जिनमत की चाल ।।
महावीर प्रभु प्रकट्यो ज्ञान । रची सभा अमरनि आन ।।७।।
सकल सुरासुर पुन्न प्रचण्ड । ताहि ले फिरें आरजा खंड ।।
खंड सकल परस्यों चो फेर । चलि आए जहां जैसलमेर
आयो समोसरण वन मांहि । सब ऋतु वृक्ष सफलाईं ।।
वन माली राजा पें आय । प्रभु आगमन कह्यौ समुझाय ।।६।।
सुनि राजा चल्दौ वन्दन हेतु आन रहित पुर लोक समेत ।।
प्रथम नमैं श्री जिनवर राय । फिर नर कोठे बैठे जाइ ।।१०।।
पूछत भए श्री प्रभु को बात । जे ए वात वंश विख्यात ।।
रहो कृपा करि सुर महाराज । घट्यो क्यों हमतें मुनिराज ।।
तब बोले गौतम बल राइ । जैन त्यागो रे भाइ ।।
जो वह फेरि आदरो धर्म । विहुर जाइ तुमतें दुख कर्म ।।१२।।
तब करि जौर जथारथ सार । धर्म लयो जन चारि हजार ।।
वाचा बंध सबनि मिलि गरयौ । जिनधर जैन धर्म आदरयौ ।।१३।।
तिनही सों अपनी ब्यौहार । खांन पांन अरु सगपन सार ।।
इनि तजि औरजु कों आदरें । तजें ताहि दोष सिर धरें ।।१४।।
यह ठहराइ धर्म ले फिरि । सब आए पुर जैसलमेर ।।
समोसरण आयो पंच पहार । मगध देश राज गृह सार ।।
वें सब जैसवाल प्रतिपाल । खोयो उरतें मिथ्य साल ।।
रच्यो नगर जिन आलय चंग । जिन पूजन तहां करें अभंग ।।१६।।

देई चतुविध संघहि दान । निसि दिन श्रनि सों सुनें पुरान ॥
दालिद्र गेह हुते जे लोग । तिनिके नाना विध के भोग ॥१७॥
सब कें अटल लजि घर भई । सकल त्याग बनिज बुधि ठई ॥
या अन्तर एक श्रावक धान । कन्या रूप भई अभिराम ॥१८॥
तास रूप की सब पुर वास नृप जिय उपजी व्याहनि बात ॥
पठयौ दूत कह्यो हम देहु । कन्या दान तनो फल एऊ ॥१९॥
सुनत सबनि के विसमय भई । कौन बुद्धि राजा यह ठई ॥
पंच सकल जुर करि आइयो । अब हम जैन धर्म व्रत लयौ ॥२०॥
अपर जाति सों रह्यो न काज । खांन पांन अरु सगपन साज ॥
दूत कह्यो राजा सों जाइ । हठ किए विसमय अधिकाइ ॥
सुनि राजा कहि पठयौ फेरि । तौ तुम त्यागो जैसलमेर ॥
जहां जहां न लगी मेरी आंन । रजा ऐसी कही निदान ॥२२॥
तब वे सकल चले तजि ठांम । जैन मती जिन तें अभिरांम ॥
जिहि पुर आइ संघ यह परें निरिखि सबें कोऊ पूछन करें ॥२३॥
कौन देश तें आयौ संघ । कौन जाति कहौ कारण चंग ॥
उत्तर देई सबै गुणमाल । वंश इक्ष्वाक जैसवाल ॥२४॥
जैसवाल तब ही तें जान । जैसवाल कहित परवान ॥
चले चले आये सब जहां । हुती तिहं गिरी नगरी जहां ॥२५॥
ता पुर हुतो निकट वन चंग । उतरयो तहां जाइ वह संघ ॥
पायें यह जहां चातुरमास । सकल संघ उहां कियो निवास ॥२६॥
बीतें रहाइ दिन जबें । वन क्रीड़ा नृप निकस्यो तबें ॥
कटक दृष्टि नृप के जब परयो । सबनि कों पूछन अनुसरयौ ॥२७॥
का को कटक कौन आइयो । आ बन तूं पूछाइयो ॥
कहें मन्त्री ए जैसवाल । सबनि लियो मत जैन रसाल ॥२८॥
नृप कन्या न दई याहु । दई नहीं रूस्यो नर नाहु ॥
निज पुर तें ए दये निकार । चलि आये या देश मझारि ॥२९॥
चातुर्मास आबड़ो आइयो । नाद बहि तन छाइयो ॥
राजा कहें सुनो परधान । क्यों न मिलि हैं हम को आन ॥३०॥

सचिव कहैं इनैं गर्व अपार । याही तै नृप ए दीए निकार ।।
सुनि राजा कर मूछनि धर्यो । मन में रोस संघ पर कर्यो ।।३१।।
मुख तैं कछू न कारी उचार । आए महीपति नगर मझार ।।
संग तनै कछु बालक संग । क्रीडित हुते तहां मनि रंग ।।३२।।
तिनि में हुतो एक बुधिवान । नृप चरित्र सब वह पहिचांन ।।
चलि आयो सिसु संग मझार । बैठो जहां सकल परिवार ।।३३।।
बालक भवनों भाखी बात । नृप को बेगि मिलो तुम तात ।।
नहीं तो मान भंग तुम होय । सत्य वचन मानो सब कोइ ।।३४।।
तब सब बनुकर उठें अकुलाइ । चलो जाइ देखें पुर राइ ।।
मनि मानिक मुक्ता फल भले । राजा भेट काज ले चले ।।३५।।
पहुँचे जाइ नृपति के द्वार । भेट धरी अरु कर्यो जुहार ।।
राजा पूछै ए को हेत । जिनि में प्रीत तनो उद्देत ।।३६।।
सचिव कहैं ए सब सुनों भूपाल । हम चित नही सबै को साल ।।
नृप अनीत त्यागे निज देश । चलि आए तुव शरण नरेश ।।३७।।
करी हुती जहां जिय में चित । बीतें भादव वरत पुनीत ।।
देखें जाइ चरण प्रभु तनों । और मनोरथ चित के भनौ ।।३८।।
मांगि लेऊ कछु भूमि विसाल । तहीं बसें हम अंसवाल ।।
अब जब सुनि राय रीस धरी । तब हम आइ भेट अब करी ।।३९।।
तब नृप जिय विसमय अधिकाइ । मैं निज रीस काहू न जताइ ।।
तुम क्यों जान्यो मेरो क्रोध । बिनु भाखें किहि विधि भयो बोध ।।४०।।
तब सब मिलि नृप सों विनए । जा दिन तुम प्रभु क्रीडा बन गए ।।
पूछी सकल हमारी बात । सचिव कही जैसी इह तात ।।४१।।
तहां एक बालक हमरो हुतो । बुधिवांन क्रीडा संजुतो ।।
तिनि सब बात कही समझाय । बेगि मिलो तुम नृप को जाइ ।।४२।।
क्रोध कियें हम ऊपरि चित्त । मैं भाषी सब सों सब सत्ति ।।
या पर हम जिय में बहु सके । आप मिलिन महा भय थके ।।४३।।
सुनि करि तब बोल्यो क्षिति पाल । बेगि बुलायो अपनो बाल ।।
जिनि मम जिय की पाई बात । पूछो बोध तनो अवदात ।।४४।।

तब उन बालक दयो बुलाय । रूप निरिख नृप आनन्द थाय ॥
पूछै महिपति सुनि रे बाल । तैं क्यों जानों मम उरसाल ॥४५॥
बालक कहै उभय कर जोरि । अब प्रभु निज कर मूंछ मरोरि ॥
कोष बिना मूंछ नही हाथि । यासें हम जान सके नरनाथ ॥४६॥
सुनि राजा परिफुल्लित भयो । कर गहि कंठ लागि शिशु लयो ॥
आदर सहित दिवाए पान । बिदा दई राख्यौ बहु मान ॥४७॥
रहिबे कौं दयौ पुर में ठांम । मन्दिर तहाँ सुभग अभिराम ॥
बसे आनि जब बीत्यो जोग । करैं तहां बहु विधि के भोग ॥४८॥
नृप पठयो एक दूत सुजान । ओसवाल सुनौ बुधिवान ॥
मम जिय [illegible] तुम ऐसी [illegible] । इह बालक को है दुख तनी ॥४९॥
तकों देऊं सुता मम तनी सेवा करौं बहु तुम तनी ॥
सुनत बात बोले सब लोग । यह तौ होइ न कोई जोग ॥५०॥
जो हम ऐसो करते काज । जैसलमेर न तजते आज ॥
बात सुनत नृप रिस होइ । पकरि मगायो बालक सोइ ॥५१॥
निज कन्या दीनी परनाइ । कछु न काहू तौ न बसाइ ॥
बालक नृप अनीति पहिचानि । छोडि दियो भोजन अरु पानी ॥५२॥
मात पिता देखौं जब नैंन । तब ही मो जिय उपजै चैन ॥
नहीं तो प्रान तजौं निसन्देह । कौन काज मेरो नृप गेह ॥५३॥
तब नृप जिय सोच अपार । बाल करैं अपजस सिर नाइ ॥
तब बालक को सब परिवार । गढ़ लाए वाही परकार ॥५४॥
और हितू जे हे उनि तने । तेऊ आइ बसे गढ़ घने ॥
अर हजार द्वै नीचै रहें । जिन गुरु बचन प्रेम सों गहैं ॥५५॥
तिनि सब मिलि यह ठहराव । मेंट दिसौं अब परम अभाव ॥
कोऊ हमरो उनिकैं नहीं जाइ । उनिको ह्यां कोऊ धरै न पाइ ॥५६॥
गुरु बचननि की छांडी टेक । कहा भयो बालक गयो एक ॥
धनु अरु जोबन सब निजकै । धर्म तनो मलि होइ अभाव ॥५७॥
तातें अब हम सों नहि खेल । गुरु बचननि कीए सीसु खेल ॥
इह विधि स्यों गयो काल वितीत । राज काज कियो अनचित ॥५८॥

यह मन्त्रिनि मिलि कीयौ काज । थाप्यौ जन पद सिर राज ॥
अब वह भयौ पहुमि को राइ । निजनि कु सब लियौ बुलाइ ॥५९॥
वकोश देश आंधि के दयो । आप तिहुन नगर राजा भयौ ॥
बाभन कुल ओहित थापियो । तौ में पत्र तिनें लखि दयौ ॥६०॥
[illegible] । तिनि दई बाभन को सोइ ॥
रूपे के रूपैया सो पांच । एक अधिक नहीं तामें बांच ॥६१॥
तब इह मनमें आयौ बात । बिछुरि कछु हमतें जात ॥
एकाकी जिए ताहि मनाइ । जाति मिलें आनन्द अधिकाइ ॥६२॥
तब नृप सहित सकल परिवार । आए गढ़ नीचें सागार ॥
बैठें जिनमन्दिर नृप आहि । सकल पंच तहां लए बुलाइ ॥६३॥
विनती करी जोरि कै हाथ । सोई करो जो हो इक साथ ॥
बगसौ चूक जु हम मैं परी । बडो सोइ जो चित्त न धरी ॥६४॥
अब सब बरतो पूरब रीति । दुविधा मनतें करौ बितीत ॥
तब सब पंचनि कियो विचार । कीजे नहिं नृप मान प्रहार ॥६५॥
विनती करी राय सों सबैं । आग्या देहु अब हम तबैं ॥
व्याहु काज नहीं नरेश । हठ करौ तो तज हैं देश ॥६६॥
तब मन में सोचियौ नरेन्द्र । हठ के किये नहीं आनन्द ॥
मानि बात नृप गढ़ पें गये । जैसवाल दो विधि तब भये ॥६७॥
उपरोतिया जु गढ़ पर रहे । तिरोतिया जे नीचे कहें ॥
काज समें उपज्यों यह नाम । बोलि पठावैं इहि विधि धाम ॥६८॥
उपरोतिया थये गुरु देव । काष्टा संघ करें तसु सेव ॥
मूल संघ गुरु परम पुनीत । तरोतिया उर तिनिकी प्रीति ॥६९॥
इहि विधि बीत गयो कछु काल । राजा परचो जाइ जम जाल ॥
राजधनी भयो मोरें आय । तिहिनपाल नाम कहवाइ ॥७०॥
तिनि सब जैसावाल सु बंश । तहांतें काढि दिए अवतंस ॥
या अन्तर उपजी एक भली । जम्बू स्वामि अन्त केवली ॥७१॥
मथुरा नगर निकट उद्यान । तहां प्रगट्यौ प्रभु केवल ज्ञान ॥
तावत सबकों खग लोइ । जुरि आये मथुरा वन सोइ ॥७२॥
छांडि तिहुवन गिरि उठि धाइवौ । जैसवाल बाल मानियौ ॥
प्रभु दरसन जइए नचि हुंड । दुरमति करि मारि सत खण्ड ॥७३॥

जम्बू स्वामी भयो निरवान । पाई पंचमगति भगवान ॥
जैसवाल रहे तिहि ठांम । [illegible] परम ॥७४॥
कारज गांम गोत परनए । इंह बिधि जैसवाल बरनए ॥
उपरोतिया गोत छतीस । तिरोतिया गनि छह चालीस ॥७५॥

दोहरा

जैसवाल कुल बरनयो, जिहि विधि उतपति तास ॥
अब कवि अपने नाम को, करै विचर परगास ॥७६॥

कवि प्रशस्ति

चौपई

[illegible] विधि में एक जाति । [illegible] जाति ॥
रामाखेरा को चउधरी । अर्गलपुर की आनु जु बरी ॥७६॥
ताके पांच पुत्र अभिराम । अनुज लालचन्द तसु नाम ॥
ता सुत हूये प्रीति जिनचन्द । सब कोऊ कहै बुलाखीचन्द ॥७७॥
तासु हिरदै उपजी यह आनि । कीजे क्यों जिन कथा बखांन ॥
वृन्दावन सागरमल मित्र । जिनधर्मी अरु परम पवित्र ॥७८॥
तिनिकी की आज्ञा ले सिर धरी । बचनकोश की रचना करी ॥
भाषा ग्रन्थ भयो अति भलो । वचनकोश नाम जु उजलो ॥७९॥
विनसै तासु पढत मिथ्यात । सांची लगै न परमत बात ॥
क्षयोपशम को कारण यही । वचन कोस प्रगट्यो यह मही ॥८०॥
श्रवन करैं रुचिसों नर नारि । लक्ष्मी होइ सुभग निरधार ॥
लक्ष्मी होइ न राग आकुली । याकै पढै होइ मति भली ॥८१॥
जिनवानी की कीरति घनी । कहां लौं वरनि सकैं नहीं मुनि ॥
सुनें तासु न पावें पार । मोनि सकति जु बुधि बल सार ॥८२॥

दोहरा

संवत सत्रह सै बरस, ऊपरि सप्त रु तीस ।
बैसाख अंधेरी अष्टमी, वार वरतऊ नीस ॥८३॥

वर्द्धमानपुर नगरी सुभग, तहाँ बुद्धि को ओस ।
रच्यो बुलाखीचन्द ने, भाषा वचन जु कोश ॥८४॥
मुनी पढ़ैं जो प्रीति सों, चूकहिं लेइ सम्हारि ।
लघु दीरघ तुक छन्द को, छमियो चतुर विचारि ॥८५॥

इति वचन कोष भाषा बुलाखीचन्द जैसवाल कृत विरचि
सम्पूर्णं समाप्तं ॥

सम्वत् १८८३ वर्षे मासे चैत्र वदी १०
शुभ वासरे ॥

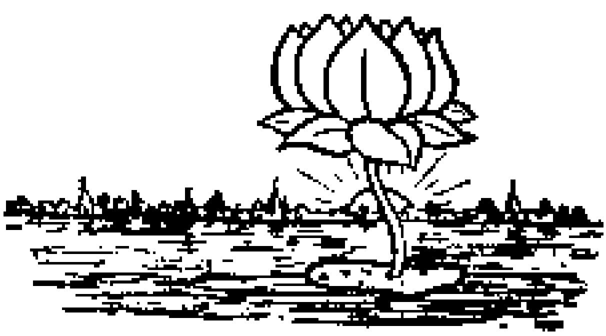

२

कविवर बुलाकीदास

कविवर बुलाकीदास इस भाग के दूसरे कवि हैं जिनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है। वे अपने समय के ऐसे कवि थे जिनकी कृतियां समाज में अत्यधिक लोकप्रिय बनी रही। राजस्थान के जैन ग्रन्थालयों में उनके पाण्डवपुराण की पचासों पांडुलिपियां संग्रहीत हैं। काव्य सर्जना की प्रेरणा उन्हें अपनी माता से प्राप्त हुई थी। वैसे कवि का पूरा परिवार ही साहित्यिक रुचि वाला था। बुलाकीदास के समय में आगरा नगर कवियों का केन्द्र था। समाज द्वारा उस समय काव्य रचना करने वालों का खूब सम्मान किया जाता था। बुलाखीचन्द, हेमराज एवं स्वयं बुलाकीदास सभी के लिए आगरा नगर साहित्यिक केन्द्र था।

बुलाकीदास गोयल गोत्रीय अग्रवाल जैन थे। कसावर उनका बैंक था। उनका मूल स्थान बयाना था। संवत् १७४७ में रचित अपनी प्रथम कृति प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

दोहरा

अगरवाल सुभ ज्ञात है, श्रावक कुल उत्पत्ति।
पेमचन्द नामी भलौ, देहि दान बहुनित्त ।।१३।।
धारै ब्योंक कसावरौ, दया धर्म की खांनि।।
जैन वचन हिरदै धरै, पेमचन्द सुरभांन ।।१४।।
अगंज ताकौ कंज छवि, श्रवनदास परवीन।
ताकै पुत्त सपुत्र है, नन्दलाल सुखलीन ।।१५।।
नन्दलाल सुभ ललित तन, सेवत निज गुरुदेव।।
सकल ऋद्धि ताके निकट, आवत है स्वयमेव ।।१६।।

नन्दलाल गृह गेहिनी, जैनुलदे सुमनाम ।
ते दोऊ सुखस्यौ रमै, ज्यौं रुकमनि ग्ररु स्याम ॥१७॥
धर्मपुत्र तिनके भयो बूलचन्द सुभ नाम ।
तिहि जैनुलदे यो चहै, ज्यो प्रानी उरप्रान ॥

लेकिन इसी परिचय को प्रश्नोत्तर श्रावकाचार के सात वर्ष पश्चात् निबद्ध पाण्डव पुराण में निम्न प्रकार दिया है—

नगर आगरे तह लसै, मध्य देश विख्यात ।
चारु चरन जहं आचरै च्यारि वर्ण बहु भांति ॥२४॥
जहां न कोऊ दालदी, सब दीसै धनवान ।
जप तप पूजा दान विधि, मानहि जिनवर आन ॥२५॥
वैश्य वंश पुरुदेव नै, जो थाप्यौ अभिराम ।
तिसही वंस तहां अवतरयौ, साहु अमरसी नाम ॥२६॥
अगरवाल सुभ जाति है, श्रावक कुल परवान ॥
गोयल गोत सिरोमनी, ब्योक कसावर जान ॥२७॥
धर्म्म रसी सौ अमरसी, लछिमी कौ आवास ।
नृपगन जाकौ आदरै, श्रीजिनन्द कौ दास ॥२८॥
प्रेमचन्द ताकौ तनुज, सकल धर्म कौ धाँम ।
ताकौ पुत्र सपुत्र है, श्रवनदास अभिराम ॥२९॥
उतन बयानौ छोडि सो, नगर आगरे आय ।
अन्न पान संयोगतैं, निवस्यौ सदन रचाय ॥३०॥
बुधि निवास सो जानिए, श्रवन चरन कौ दास ।
सत्य वचन के जोग सौं, वरतै नो निधि तास ॥३१॥
गनिए सरिता सील की, वनिता ताके गेह ।
नाम अनन्दी तास कौ, मानौं रति की देह ॥३२॥
उपज्यौ ताके उदर तैं, नन्दलाल गुन वृन्द ।
दिन दिन तन कातुर्यता, बढ़ै दोज ज्यौं चन्द ॥३३॥
मात पिता सो पढन कौं, भेज दियौ चटसाल ।
सब विद्या तिन सीखि कै, धारी उर गुनमाल ॥३४॥

हेमराज पंडित बसैं, तिसी आगरे ठाइ ।
गरग गोत गुन आगली, सब पूजैं तिस पाइ ॥३५॥
जिन आगम अनुसार तैं, भाषा प्रवचनसार ।
पंच अस्ति काया अपर, कीनैं सुगम विचार ॥३६॥
[illegible] ताकै देहजा, जैनी नाम विख्यात ।
शील रूप गुन आगली, प्रीति नीति की पांति ॥३७॥
दीनी विद्या जनक नै, कीनी अति वितपन्न ।
पंडित जापै सीखिलैं, धरनी तल मैं धन्न ॥३८॥

सवैया

सुगुन की खानि किधौ सुकृत की बांनि,
सुभ कीरति की दांनि अपकीरति कृपान है ।
स्वारथ विधनि परमारथ की राजधानी,
रमाहू की रानी किधौं जैनि जिनवानी है ।
धरम धरनि भव भरम हरिनि किधौं,
असरनि सरनि कि जननि जहांन है ।
हेम सो उपनि सील सागर रसनि,
भनि दुरित दरनि सुर सरिता समांन है ॥३९॥

दोहरा

हेमराज ताहां जानि कैं, नन्दलाल गुन खानि ।
वय समान वर देखि ही, पांनग्रहण विधि ठानि ॥ ४०॥
तब सासू नैं प्रीति सौं मोतिन चौक पुराय ॥
लीनी ग्रह सुभ नाम धरि, जैंनुलदे इहि भाइ ॥४१॥
नारि पुरुष सुख सौ रमैं, धारैं अन्तर प्रेम ।
पूरब पुण्य फल भोगवे जय सलोचना जेम ॥४२॥
अल्पबुधि तिनकैं भयौ, बूलचन्द सुख खानि ।
तहि जैंनुल दे यौ चहै, ज्यौं प्रानी निज प्रान ॥४३॥
अन्नोदक सम्बन्ध तैं आइ इन्द्रपथ थानि ।
मात पुत्र तिष्टे सही, भनैं सुनै जिनवानि ॥४४॥

इस प्रकार कवि ने अपना वंश परिचय बहुत ही उत्तम शब्दों में दिया है।

पाण्डव पुराण में कवि ने अपना वंश परिचय साहु अमरसी के नाम से प्रारम्भ किया है जबकि प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में साहु अमरसी के पुत्र पेमचन्द से प्रारम्भ किया है। दोनों ग्रन्थों के आधार पर कवि का निम्न प्रकार वंश वृक्ष ठहरता है—

(१) प्रश्नोत्तर श्रावकाचार

पेमचन्द
|
अवनदास
|
नन्दलाल—पत्नि जैनुलदे
|
बूलचन्द अपर नाम बुलाकीदास

(२) पाण्डवपुराण

साहु अमरसी
|
पेमचन्द
|
अवनदास—अनन्दी पत्नि
|
नन्दलाल—जैनी पत्नि
|
बूलचन्द अपर नाम बुलाकीदास

इस प्रकार दोनों कृतियों में से पाण्डवपुराण में कवि ने अपने पूर्वजों में साहु अमरसी का नाम एवं बुलाकीदास के पितामह अवनदास की पत्नि का नाम का विशेष उल्लेख किया है। शेष नाम समान हैं।

बुलाकीदास के पूर्वज साहु अमरसी बयाना में रहते थे। उस समय बयाना मध्यदेश का अंग था। वहाँ चारों ही वर्णों वाले रहते थे सभी सम्पन्न दिखायी देते

थे। उनमें से दरिद्री कोई नहीं था। जैन परिवार अच्छी संख्या में थे जो जप, तप पूजा एवं दान चारों ही क्रियायें करने वाले थे। इन्हीं जैनों में साहु अमरसी थे जो वैश्य वंश में उत्पन्न हुए थे जिसे प्रथम तीर्थंकर पुरुदेव ने स्थापित किया था। वे अग्रवाल थे गोयल उनका गोत्र था। तथा 'कसावर' उनका व्योंक था। अमरसी धर्मात्मा थे तथा जिनके घर में लक्ष्मी का वास था। तत्कालीन राजा महाराजा भी साहु अमरसी का सम्मान करते थे। विशाल वैभव सम्पन्न होते हुए भी जिनेन्द्र भगवान के वे दृढ़ भक्त थे।

साहु अमरसी के पुत्र का नाम प्रेमचन्द था। वह सुपुत्र था तथा अनेक गुणों की खान था। उसका जीवन पूर्णतः धार्मिक था। प्रेमचन्द के पुत्र श्रवणदास थे। श्रवणदास अपने पूर्वजों का नगर बयाना छोड़कर आगरा आकर रहने लगे। अपनी जन्मभूमि छोड़ने का मुख्य कारण आजीविका उपार्जन था इसलिए बुलाकीदास ने "अन्नपान संयोग है" लिखा है ऐसा। आगरा में बसने के साथ ही उन्होंने वहां अपना मकान (सदन) भी बना लिया था। श्रवणदास बुद्धिमान थे तथा भगवान जिनेन्द्र देव के भक्त थे। वे पूर्णतः सत्यभाषी थे इसलिए सभी ऋद्धियां उनके घर में व्याप्त थी। उनकी पत्नि जिसका नाम आनन्दी था अत्यधिक सुन्दर तो थी ही साथ में शील की खान थी। उन दोनों के पुत्र का नाम नन्दलाल था जो गुणों का मानों समूह ही था। कुछ बड़ा होने पर माता पिता ने उसे पढ़ने चटसाल भेज दिया। वहां उसने सभी विद्याएं पढ़ ली।

उसी आगरा नगर में पंडित हेमराज रहते थे। वे गर्ग गोत्रीय अग्रवाल जैन थे। सारा नगर उनके चरणों का दास था। हेमराज ने उस समय तक 'प्रवचनसार' एवं 'पंचास्तिकाय' जैसे कठिन ग्रन्थों का हिन्दी भाषानुवाद कर दिया था। उसके घर में एक पुत्री जैनी ने जन्म लिया जो रूप एवं शील की खान थी। जैनी को उसके पिता हेमराज ने खूब पढ़ाया और अत्यधिक व्युत्पन्न कर दिया। हेमराज ने नन्दलाल को उचित वर जान कर उसके साथ अपनी पुत्री जैनी का विवाह कर दिया। दोनों समान वय के थे। फिर क्या था चारों ओर प्रसन्नता छा गयी और जब जैनी ने वधू के रूप में अपने श्वसुर श्रवणदास के घर में प्रवेश किया तो उसकी पत्नि (सास) ने मोतियों का चौक पूरा। गृहप्रवेश के अवसर पर उसका नाम जैनुलदे रखा गया।

नन्दलाल एवं जैनुलदे पति पत्नि के रूप में सुख से रहने लगे। दोनों में अत्यधिक प्रेम था तथा वे जयकुमार सुलोचना के रूप में सर्वथा विख्यात थे। प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में इन्हें रुकमणि और श्याम के रूप में लिखा है। उन्हीं के पुत्र के रूप में बूलचन्द ने जन्म लिया जो अपनी माता के लिए प्राणों से भी प्यारा था। कविवर बुलाकीदास का बचपन में बूलचन्द ही नाम था।

बूलचन्द बड़े हुए। आजीविका के लिए आगरा से इन्द्रप्रस्थ (देहली) आ गये और जहानाबाद रहने लगे। उनकी माता जैनुलदे भी अपने पुत्र के साथ ही देहली आकर रहने लगी। वहां माता एवं पुत्र दोनों ही रहने लगे। ऐसा लगता है कवि के पिता का जल्दी ही स्वर्गवास हो गया था। अपने पुत्र के साथ जैनी का अकेला आने का अर्थ भी यही लगता है। वहीं पं० अरुणरत्न रहते थे जो सभी शास्त्रों में प्रवीण थे। संस्कृत प्राकृत के वे अच्छे विद्वान थे। वे ग्वालियर (गोपाचल) के रहने वाले थे। बुलाकीदास ने देहली में उन्हीं के पास ग्रन्थों का विशेष ज्ञान प्राप्त किया था।[1]

बुलाकीदास संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने विवाह किया अथवा नहीं। इसके बारे में दोनों ही कृतियां मौन हैं। क्योंकि यदि उनका विवाह होता तो पत्नि का परिचय भी अवश्य दिया जाता। वे सम्भवतः अविवाहित ही रहे होंगे।

प्रथम रचना

बुलाकीदास ने सर्व प्रथम 'प्रश्नोत्तर श्रावकाचार' का हिन्दी में पद्यानुवाद किया। प्रश्नोत्तर श्रावकाचार मूल संस्कृत भाषा में निबद्ध है जो भट्टारक सकलकीर्ति की रचना है पद्यानुवाद करने के लिए कवि की माता जैनुलदे ने इच्छा व्यक्त की थी।

सब सुख देके यों कही, सुनो पुत्र सुभ बात।
प्रश्नोत्तर सुभ ग्रन्थ की, भाषा करहु विख्यात ॥२२॥

---

१. यह हेत करि अरुन नै दयो ज्ञान को भेव।
तब सुबुद्धि घर में जगो करि कुबुद्धि तिम छेव ॥२२॥

जासौं श्रावक भव्य सब, लहइ अरथ तत्काल ।
धारैं ते चित भाव धरि श्रावक धर्म विसाल ।।२३।।
जननी के ए वचन सुनि, लीने सीस चढाइ ।
रचिवे कौ उद्दिम कीयौ, धरि के मन वच काइ ।।२४।।

ग्रन्थ की रचना होने के पश्चात् जैनुलदे ने उसे पूर्ण रूप से सुना तथा अपने पुत्र को खूब आशीर्वाद दिया। उसे मानव जीवन को सार्थक करने वाला कार्य बतलाया। कवि ने यद्यपि मूलग्रन्थ का पद्यानुवाद किया है लेकिन व्रत विधान वर्णन अपनी बुद्धि के अनुसार किया है।[1]

प्रश्नोत्तरश्रावकाचार का रचनाकाल संवत् १७४७ वैशाख सुदी द्वितीया बुधवार है। कवि ने ग्रन्थ के तीन भाग जहानाबाद दिल्ली में तथा एक भाग पानीपत जलपथ) में पूर्ण किया था।

सत्रहसै सैंताल मैं दूज सुदी वैशाख ।
बुधवार भैरोहिनी, भयौ समापत भाष ।। १०४।।
तीनि हिसे या ग्रन्थ के, भए जहानाबाद ।
चौथाई जलपथ विषै, वीतराग परसाद ।।१०५।।

द्वितीय रचना–पाण्डवपुराण

पानीपत में कवि कितने समय तक रहे इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता लेकिन कुछ वर्षों पश्चात् वे वापिस अपनी माता के साथ इन्द्रप्रस्थ देहली आगये और वहीं रहने लगे। वहां माता एवं पुत्र का जीवन सुख एवं शान्तिपूर्वक चलता

---

१. ऐसी विधि यह ग्रन्थ शुभ, रच्यौ बुलाकीदास ।
सो सब जैनुलदे सुन्यौ, धार्यौ परम उल्हास ।।८८।।
बहु असीस सुत कौ दई, बाढ्यौ अरस सनेह ।
धन्य पुत्र तुम जन्म कौ, रच्यौ ग्रन्थ शुभ एह ।।८९।।
व्रत विधान बरने विविध, अपनी मति अनुसार ।
बरनत भूलि परि जहां, कविकुल लेहु संवार ।।९०।।

रहा। प्रतिदिन शास्त्र स्वाध्याय एवं शास्त्र प्रवचन सुनने में समय व्यतीत होने लगा। उस समय माता ने अपने पुत्र के समक्ष पाण्डवपुराण की भाषा करने का निम्न शब्दों में प्रस्ताव रखा—

सब सुख दै तिन यौं कही, सुनौ पुत्र मो बात।
सुभ कारज तै जग विषै, सुजस होय विख्यात ॥४७॥
महापुरिष गुन गाइए, ताही तै यह जानि।
दोइ लोक सुख दाइ है, सुमति सुकरिति थांन ॥४८॥
मुनि सुभचन्द्र प्रणीत है, कठिन अर्थ गम्भीर।
जो पुराण पाण्डव महा, रचहै पण्डित धीर ॥४९॥
ताको अरथ विचारि कै, भारथ भाषा नाम।
कथा पांडु सुत पंचमी, कीज्यौ बहु अभिराम ॥५०॥
सुगम अर्थ श्रावक सबै, भनै भनावै जाहि।
ऐसी रचि कै प्रथम ही, मोहि सुनावो ताहि ॥५१॥

बुलाकीदास की माता स्वयं विदुषी थी इसलिए उसने अपने पुत्र से भट्टारक शुभचन्द्र प्रणीत पाण्डवपुराण का हिन्दी में सुगम अर्थ लिखकर सर्वप्रथम उसे सुनाने के लिए कहा जिससे भविष्य में उसकी निरन्तर स्वाध्याय हो सके। बुलाकीदास की माता के प्रति अपार भक्ति थी इसलिए उसने तत्काल साहस बटोर करके लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया। जितने अंश की वह भाषा लिखता उतना ही अंश वह अपनी माता को सुना देता।

इहि विधि भाषा भारती सुनीं जिनुलदे माइ।
धन्य धन्य सुत सौ कही, धर्म सनेह बढाइ ॥५॥

अन्त में ग्रन्थ समाप्ति की शुभ घड़ी आगयी और वह भी संवत् १७५४ आषाढ सुदी द्वितीय गुरुवार की पुष्य नक्षत्र की घड़ी। इस प्रकार प्रथम ग्रन्थ के ७ वर्ष पश्चात् कवि अपनी दूसरी कृति साहित्यिक जगत् को भेंट करने में सफल रहे। पाण्डव-पुराण को कवि ने महाभारत नाम से सम्बोधित किया है। कवि की यह कृति जैन समाज में अत्यधिक लोकप्रिय बनी रही। इसकी पचासों पाण्डुलिपियां आज भी राजस्थान एवं अन्य प्रदेशों के ग्रन्थागारों में संग्रहीत है।

लघु कृतियां

बुलाकीदास की दो प्रमुख कृतियों के अतिरिक्त निम्न कृतियों के नाम और मिलते हैं—

१. प्रश्नोत्तररत्नमाला

२. वार्ता

३. चौबीसी

१. प्रश्नोत्तर रत्नमाला—दो पत्रों में निबद्ध यह कृति संस्कृत भाषा की है तथा जिसकी एक मात्र पाण्डुलिपि दि० जैन पार्श्वनाथ मन्दिर बून्दी के शास्त्र भण्डार में वेष्ठन संख्या ११० में संग्रहीत है। यह प्रति सुभाषित के रूप में है।[1]

२. **वार्ता**—प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में से संग्रहीत वार्ता के रूप में यह दि० जैन मन्दिर कोट्यों नैणवा के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में उपलब्ध होती है। गुटका सम्वत् १८१४ का लिखा हुआ है।[2]

इसका उल्लेख काशी नागरी की प्रचारिणी पत्रिका में हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों के पन्द्रहवें त्रैवार्षिक विवरण में हुआ है। पत्रिका के सम्पादकों को इसकी प्रति 'मॉगरोल गुजर' के रहने वाले श्री दुर्गासिंह राजावत के पास प्राप्त हुई थी। मांगरोल का डाकखाना रनकता तहसील किरावली जिला आगरा है। इसमें १६६ अनुष्टुप छन्द हैं। भगवान आदिनाथ की वन्दना में एक छन्द इस प्रकार है—

वन्दो प्रथम जिनेश को, दोष अठारह चुरी।
वेद नक्षत्र ग्रह औरष, गुन अनन्त भरी पुरी।
नमो करि फेरि सिद्धि को, अष्ट करम कीए छार।
सहल आठ गुन सो भई, करै भगत उधार।

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची पन्चम भाग—पृष्ठ संख्या ६८८

२. वही पृष्ठ संख्या १०२२

३. देखिये भक्त काव्य और कवि,-डा० प्रेमसागर-पृष्ठ संख्या २६२-६३

आचारज के पद रामो दूरी अन्तर गति भाउ ।
पंच प्रचरजा सिद्धि ते, भारै जगत के राउ ।

कविवर बुलाकीदास ने इन रचनाओं के अतिरिक्त, अन्य कितनी रचनायें निबद्ध की थी । इस सम्बन्ध में निश्चित जानकारी देना कठिन है । लेकिन सम्भव है आगरा, मैनपुरी, राजाखेड़ा एवं इनके आसपास के नगरों में स्थित शास्त्र भण्डारों की पूरी छानबीन एवं खोज में बुलाकीदास की और भी रचनायें मिल जावें ।

वैसे मिश्रबन्धु विनोद में कवि की एक मात्र कृति पाण्डवपुराण का उल्लेख किया हुआ है ।[1] डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने भी "तीर्थंकर महावीर एवं उनकी आचार्य परम्परा" में बुलाकीदास के परिचय में केवल पाण्डव पुराण का ही उल्लेख किया है ।[1] पं० परमानन्द जी ने "अग्रवालों का जैन संस्कृति में योगदान" लेख में बुलाकीदास की दो प्रमुख रचनाओं प्रश्नोत्तरश्रावकाचार एवं पाण्डवपुराण का उल्लेख किया है ।[3]

शेष जीवन

बुलाकीदास की जन्म तिथि के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता । लेकिन उनका बाल्यकाल आगरा में ही व्यतीत हुआ । शिक्षा भी यहीं हुई । पं० अरुण रत्न जो देहली के पण्डित थे, इनके पास बुलाकीदास ने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया तथा साथ ही में अपनी माता जैनुलदे से विशेष शिक्षा प्राप्त की थी । जैनधर्म एवं साहित्य की शिक्षा उनको पैतृक रूप में प्राप्त हुई । संवत् १७४५ से १७५४ का दस वर्ष का जीवन उनका साहित्यिक जीवन रहा जिसमें वे 'प्रश्नोत्तरश्रावकाचार' एवं 'पाण्डवपुराण' जैसे ग्रन्थों की रचना करने में सफल हुये । इसके पश्चात् वे कितने वर्षों तक जीवित रहे इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती । फिर भी बुलाकीदास का समय संवत् १७०० से १७६० तक माना जा सकता है ।

---

१. मिश्र बन्धु विनोद—पृष्ठ संख्या ३४०

२. तीर्थंकर महावीर एवं उनकी आचार्य परम्परा—चतुर्थ भाग—पृष्ठ २६३

३. देखिये अनेकान्त वर्ष २० किरण—४ पृष्ठ १८३-१८४

बुलाकीदास के दो प्रमुख ग्रन्थों का अध्ययन

१. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार

जैनधर्म में एकदेशधर्म एवं सर्वदेशधर्म नामसे धर्म पालन की दो प्रक्रियायें बतलायी गयी है। इनमें एकदेशधर्म श्रावकों के लिये एवं सर्वदेशधर्म का पालन साधुओं के लिए कहा गया है

प्रथम धर्म श्रावक करै कह्यौ जु एको देस ।
द्वितीय धर्म मुनिराज को, भाषित सर्वोदेस ।।४६।।
सुगम धर्म श्रावक करैं, धरै जु ग्रह को भार ।।
कठिन धर्म मुनिराज को, सहै परीसह सार ।।५०।।

बारह अंगो के ग्रन्थों में सातवां अंग उपासकाध्ययनांग है जो वृषभ गणधर द्वारा कहा गया है। ये आदिनाथ स्वामी के गणधर थे। अजितनाथ ने भी श्रावकक्रिया का पूर्ण रूप से बखान किया। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर एवं उनके पश्चात् होने वाले गौतम, सुधर्मा एवं जम्बुस्वामी ने श्रावक धर्म का विस्तार से वर्णन किया। इसके पश्चात् विष्णुकमार मुनि ने द्वादशांग वाणी का कथन किया। लेकिन धीरे धीरे आयु और बुद्धि दोनों में कमी आती गयी। आचार्य कुन्दकुन्द ने श्रावकधर्म का प्रतिपादन किया। उनके पश्चात् जिस रूप में श्रावक धर्म चलता रहा तथा श्रुत ज्ञान प्राप्त किया उसी रूप में आचार्य सकलकीर्ति ने श्रावक धर्म का वर्णन किया। भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा प्रतिपादित श्रावक धर्म का वर्णन संस्कृत में था वह सामान्य बुद्धि वालों के लिए भी कठिन रहता था इसलिये उसे ही बुलचन्द अर्थात बुलाकीदास ने हिन्दी में छन्दोबद्ध किया।[1]

---

१ घटी आयु अरु मेधा अंग, घट्यो धर्म कारन तिहि संग।
कुन्दकुन्द आचारज भयो तासों ज्ञान सराधन लह्यो ।।६४।।
क्रम सौं चल्यो असोई धर्म, कछुक जान्यो श्रुत को मर्म।
सकलकीर्ति आचारज भयो, श्रावक धर्म जु तासौं लह्यो ।।६५।।
सकलकीर्ति शुभ संस्कृत कह्यौ, कठिन अर्थ पंडित ही लह्यौ।
लियौ जु सोई अरथ विचार, बूलचन्द मति थोरी सार ।।६६।।

सर्व प्रथम कवि अपनी लघुता प्रकट करते हुये धर्म की महिमा का वर्णन करता है—

मेघ बिना नहि थावर होंहि, होइ मेघ तब उपजै सोइ।
धर्म्म बिना त्यों सुख भी नाहि, सुख निवास इक धर्म्म जु आहि ।।७४।।

दोहा

जैसे अजगर मुख विषै नाही सुधा निवास ।
पाप कर्म के करन त्यों, लहै न सुख की वास ।।५।।

प्रथम प्रभाव में ८४ पद्य हैं। दूसरा प्रभाव अजितनाथ के स्तवन से प्रारम्भ किया गया है। इसके पश्चात् श्रावक निम्न प्रकार प्रश्न करता है—

तहां प्रश्न श्रावक करै, कहै अ स्वामी अनूप ।
कैसे दरसन पाइये, कहीयत कौन सरूप ।।५।।

इस प्रश्न का उत्तर निम्न प्रकार है—

सप्त तत्व को सर्द्दहन, कह्यो जु दरसन एहु ।
भव्य जीव तातै प्रथम, तत्व ठीकता लेहु ।।६।।

इसके पश्चात् जीव अजीव आदि सात तत्वों में से जीव तत्व का व्यवहार एवं निश्चय की दृष्टि से कथन किया गया है। अजीव द्रव्य के कथन में पुद्गल धर्म, अधर्म आकाश और काल द्रव्य का सामान्य लक्षण कहने के पश्चात् आस्रव द्रव्य का वर्णन किया है। पुण्य पाप का लक्षण जोड़ कर नो पदार्थों का वर्णन हो हो जाता है। पुण्य का कवि ने निम्न प्रकार कथन किया है—

पुन्य पदारथ सोइ, सुख दाइक संसार मैं ।
नर ऊरध गति होइ, जो निर्म्मल भाव निबंधइ ।।१०४।।

बुलाकीदास ने प्रभाव (अध्याय) समाप्ति पर निम्न प्रकार अपना परिचय दिया है—इति श्रीमन्महाशीलाभरण भूषित जैनी सुनु लाल बुलाकीदास विरचितायां प्रश्नोत्तरपासकाचार भाषायां सप्त-तत्व नव-पदार्थ प्ररूपणो नाम द्वितीयः प्रभावः।

तीसरे प्रभाव में सम्यग्दर्शन के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है जिसका एक पद्य निम्न प्रकार है—

वीतराग जो देव है, धर्म अहिंसा रूप,
गुरु निग्रन्थ जु मानिए, यह सम्यक्त्व सरूप ॥३॥

अरहन्त के ४६ गुणों का विस्तृत वर्णन करने के पूर्व केवली के आहार का निषेध किया गया है। कवि ने अपने बुलचन्द के नाम का भी प्रयोग किया है।

छयालीस गुन ए कहे, पढो भव्य सुभ लीन।
बूलचन्द यों बीनवै, राखो कंठ सदीव ॥५६॥१२॥

इस प्रकार तीसरे प्रभाव में देव, धर्म एवं गुरु के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश डाला है जो १०२ पद्यों में समाप्त होता है।

चतुर्थ प्रभाव में अष्टांग सम्यग्दर्शन का ५६ पद्यों में वर्णन किया है। पञ्चम प्रभाव सुमति जिन की स्तुति से प्रारम्भ होता है। इसके पश्चात् सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की कहानी को निम्न प्रकार विभाजित किया है —

पञ्चम प्रभाव—	निशंकित अंग—अञ्जन तस्कर कथा—		१४० पद्य
षष्टम प्रभाव—	निःकांक्षित अंग—अनन्तमतीकथा—		पद्य ६४
सप्तमप्रभाव—	निर्विचिकित्सा एवं अमूढ दृष्टि अंग —उद्दायन राजा रेवती रानी कथा—		पद्य ७३
अष्टम ,,—	उपगूहन एवं स्थिति करण अंग—	जिनेन्द्र भक्त श्रेष्ठि एवं वारिषेण मुनि—	७० पद्य
नवम ,, —	वात्सल्य अंग—	विष्णुकुमार मुनि—	७० पद्य
दशम ,, —	प्रभावना अंग—	वज्रकुमार मुनि—	६४ पद्य
एकादश ,, —	सम्यक्त्व महात्म्य—	अष्ट मदों का वर्णन —	५३ पद्य
द्वादश ,, —	अष्ट मूलगुण, सप्तव्यसन अहिंसा अणुव्रत वर्णन—	—	१०० पद्य

अष्ट मूलगुणों को एक सवैय्या छन्द में निम्न प्रकार गिनाए हैं—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
मदिरा अमिष मधु वट फल पीपल जु ऊंबर कठूंबर भी तिलुवन जानियें।
इनको खाइ नर सोइ महापाप धर सुमति को नास कर कुमति जु मानियें।

> हिंदी कोरी इन आदि नीचकुल उतपाल
> अथवा नरक गति तिरजंच ठानियें ।
> इनकौ जु त्यागी नर सोइ मूल गुन
> वाही कौ मुकति वर आगम बखानियें ।

इसी प्रभाव में यमपाल चांडाल एवं धनश्री की कथा भी दी हुई है ।

त्रयोदश प्रभाव	सत्याणुव्रत एवं धनदेव सत्यघोष की कथा	— ७४
चतुर्दश प्रभाव	अदत्तादान विरतिव्रत एवं महाराज कुमार श्री वारिषेण तापस कथा	— ६१ पद्य
पञ्चदश प्रभाव	स्थूल ब्रह्मचर्याणुव्रत नील्या रक्षक कथा	— ७० पद्य
षोडशम प्रभाव	परिग्रह परिमाणव्रत जयकुमार कथा	— ७७ पद्य
सत्रहवां प्रभाव	तीन गुणव्रतों का वर्णन	— ६५ पद्य
अठारहवां प्रभाव	चार शिक्षाव्रतों में से देशावकाशिक एवं सामाइक व्रत का वर्णन	— १२० पद्य
उगनीसवां प्रभाव	प्रोषधोपवास व्रत वर्णन	— ३२ पद्य
बीसवां प्रभाव	चतुर्विधदान वर्णन (वैय्यावृत्त)	— १४७ पद्य
इक्कीसवां प्रभाव	चतुर्विधदान कथा, जिन पूजा कथा श्रीषेण, वृषभसेन आदि कथा	— १६५ पद्य

इस प्रभाव में पूजा पाठ भी दिया हुआ है ।

बाईसवां प्रभाव	सल्लेखना, ग्यारह प्रतिमा वर्णन में से सामायिक प्रतिमा तक वर्णन	— ६६ पद्य
तेईसवां प्रभाव	ब्रह्मचर्य प्रतिमा तक वर्णन	— ८४ पद्य
चौबीसवां प्रभाव	शेष दो प्रतिमाओं का वर्णन एवं ग्रन्थकार प्रशस्ति	— १०५ पद्य

ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन बुलाकीदास ने आचार्य समन्तभद्र के रत्नकाण्ड श्रावकाचार के अनुसार लिखा है ऐसा उसने संकेत किया है—

> रत्नकरंडक ग्रन्थ सौ, देखि लिखो यह बात ।
> वचन समन्त जु भद्र के, जानौं सत्य विख्यात ।।८१।।

ग्रन्थ के अन्त में कवि ने अपने गुरु अरुणरतन, तत्कालीन बादशाह औरंगजेब तथा अपनी माता जैनुलदे के प्रति आभार व्यक्त किया है जिनके कारण वह ग्रन्थ रचना में सफल हो सका।

नगर जहानांबाद मैं, साहिब औरंगशाहि ।
विधिनां तिस छत्तर दियौ, रहे प्रजा सुख मांहि ।।९४।।
ताके राज सुचैन मैं, बन्यौ ग्रन्थ यह सार ।
ईति भीति व्यापै नहीं, यह उनकौ उपगार ।।९५।।
धन्य जु माता जेनुलदे, जिन बनवायो ग्रन्थ ।
जाके सुभ सहाइ तैं, सुगम भयो सिव पंथ ।।९६।।
अरुन रतन गुरु धन्य है, जिनकैं वचन प्रभाव ।
कठिन अर्थ भाषा लख्यौ, लह्यौ सब्द अरथाव ।।९७।।

× .... × .... × .... × .... × .... × ....

गोयल गोत सिरोमनी, नन्दलाल अमलांन ।
जस प्रताप प्रगटौ सदा, जब लग ससि अरु भान ।।१०३।।

पाण्डव पुराण

बुलाकीदास की यह सबसे बडी विशालकाय कृति है। पाण्डवपुराण की मूल कृति भट्टारक शुभचन्द्र द्वारा संस्कृत में संवत् १६०८ में निबद्ध की गयी थी उसी के आधार पर पाण्डव पुराण की हिन्दी पद्य कृति बुलाकीदास द्वारा निबद्ध की गयी पाण्डवपुराण को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है इसलिये राजस्थान के कितने ही शास्त्र भण्डारों में इसकी पाण्डुलिपियां संग्रहीत है।

पाण्डवपुराण का प्रारम्भ सर्वज्ञ नमस्कार से किया है। अंतिम श्रुत केवली भद्रबाहु का स्मरण करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द का निम्न शब्दों में गुणगान किया गया है—

---

१. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार भाषा – पद्य संख्या ११० – आकार १०+ ५ इन्च। ग्रन्थाग्रन्थश्लोक संख्या २५७२ - लेखन काल - स० १८०७ वर्ष श्रावण बदि ६ लिखतं सुखाराय ब्राह्मण। लिखायतं खुशालचन्द्र छाबड़ा पठनार्थं हेतवे। शास्त्र भण्डार दि० जैन बड़ा तेरापंथी मन्दिर जयपुर।

ब्राह्मी जिम पाषान की, उर्ज्जयन्त गिरसीस।
या कलि में वादित करी, कुन्दकुन्द मुनि ईस ॥१६॥

इसके पश्चात् आचार्य समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक स्वामी, आचार्य जिनसेन गुणभद्र एवं अपने गुरु अरुणरत्न का गुणानुवाद एवं उनके सुकृत्यों का स्मरण किया गया है। वर्णन अच्छा एवं ऐतिहासिक प्रतीत होता है इसलिए उसे अविकल रूप से यहां दिया जा रहा है—

वेधागम जिन स्तवन सौं प्रगट सुरागम कीन।
समंतभद्र भद्रार्थमय, गुन ग्याक गुन लीन ॥१७॥
जिन वारधि व्याकरन कौ, लह्यौ पार मुनिराय।
पूज्यपाद निति पूज्य पद, पूजौ मन वचकाय ॥१८॥
निःकलंक अकलंक जस, सकल शास्त्र विद जेन।
मायादेवी साडिता, कुम्भयिता पादेन ॥१६॥
चिरजीव जिनसेन जति, जाकौ जस जग मांहि।
जिन पुरान पुरदेव कौ, वरन्यौ बन्दौ ताहि ॥२०॥
पुरणाद्रि परकासकौ, सूर्यपित है ओइ।
प्रभवंत गुणभद्र गुरु भूतल भूषन सोइ ॥२१॥
अरुण रतन गुरु चरन जुग, सरन गहौं कर जोर।
परन ज्ञान के करन कौं, तरुण किरणि जिम भोर ॥२२॥

इसके पश्चात् कवि ने अपने वंश का परिचय दिया है जिसको पूर्व में उद्धृत किया जा चुका है। कवि की माता द्वारा पाण्डवपुराण भाषा लिखने, कवि द्वारा अपनी लघुता प्रदर्शित करके। वक्ता एवं श्रोता एवं कथा के लक्षण का वर्णन किया गया है। कथा का लक्षण निम्न प्रकार कहा गया है—

कथन रूप कहिए कथा, सो है दोइ प्रकार।
सुकथा जो जिन कही, विकथा और असार ॥८४॥
चरम सरीरी जे महा, तिनके चरित्त विचित्र।
पुण्यहेत जहा वर्णीये, सो है कथा पवित्र ॥८५॥

पुन्यपाप फल वर्णिये, वरने व्रत तप दान ।
द्रव्य क्षेत्र फुनि तीर्थ सुभ, अरु संवेग बखान ।
जो स्वतत्व को आपि कें, दूरि करें परतत्व ।
ग्यानकथा सो जानिये, जहां वरनैं एकत्व ।।८७।।

जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र और उसमें आर्य खण्ड, वहां के राजा सिद्धार्थ एवं रानी त्रिशला के यहां वर्धमान तीर्थंकर का जन्म हुआ । वर्धमान ने साधु दीक्षा लेने पश्चात् केवल प्राप्त किया और गौतम गणधर के साथ जब उनका समवसरण मगध की राजधानी में आया । तब राजा श्रेणिक प्रभु की शरण में गया और उनकी अमृतवर्षी युक्त दिव्य ध्वनि को सुना । फिर प्रभु, वहां से समवसरण देश के विभिन्न भागों में गया कवि ने उनके नाम निम्न प्रकार गिनाए हैं—

अंग बंग कुरुजंगल ठए, कोमल और कलिंगे गए ।
महाराठ सोरठ कसमीर, पराभीर कोंकण गंम्भीर ।।१८।।
मेदपाट भोटक करनाट, करा कोस मालवै वैराठ ।
इन आदिक जे आरज देश, तहां जिननाथ कीयो परवेश ।।२१।।

भगवान महावीर का जब समसरण राजगृही नगरी के वैभारगिर पर आया महाराजा श्रेणिक ने महारानी चेलना सहित उनकी वन्दना की और अपने स्थान पर बैठने के पश्चात् भगवान से निम्न प्रकार निवेदन किया—

एकज विनती तुम सा कहुं, पाण्डव चरित सुन्यो मैं चहुं ।
पांडव पांच जगत विख्यात, कौन वंश उपजे किह भांति ।।१३।।
कुरु अन्वय किस जुग मैं भया, के के नर तिस वंसहि ठए ।।
कौन कौन तीर्थंकर भए, कौन कौन सुभचक्री ठए ।
कुरवंसहि वरनौ इहि भाय, ज्यौं मेरो संसय सब जाय ।।१४।।

उक्त कथा जानने के अतिरिक्त श्रेणिक ने और भी अनेक प्रश्न पूछे जिनका सम्बन्ध पाण्डव कथा से ही था । कवि ने उन सबका विस्तृत वर्णन किया है ।

कवि ने भोग भूमि के पश्चात् अन्तिम कुलकर नाभि से वर्णन प्रारम्भ किया है । चतुर्थकाल के पूर्व का जीवन, नाभिराजा के प्रथम पुत्र तीर्थंकर ऋषभदेव के गृहत्याग एवं जयकुमार द्वारा सम्राट भरत के सेनापति का पद ग्रहण तक वर्णन किया गया है । इस प्रभाव में १४६ पद्य हैं ।

तृतिय प्रभाव में सुलोचना उत्पत्ति, स्वयंबर रचना, जयकुमार के गले में माला डालना, सम्राट भरत के पुत्र अर्ककीर्ति द्वारा विरोध एवं जयकुमार के साथ युद्ध का अच्छा वर्णन किया गया है।

धनुष कान लगि खेंचि सुधारे तीरहीं,
तिनके आनन तीक्षन अरि तन चीरहीं।
वार पार सर निकसैं उर कौं भेदि कैं,
केइक मारहिं दंड सुदंडहि छेदि कैं ॥११॥
केइक खरगहिं खरग झराझर वीतहीं,
परहिं मुंड कर धरनि इहर नरीतिहीं।
कवच टूटि जब जांहि कचाकच ह्वैं परैं,
सूरन के कर शस्त्र सु लरि लरियौं मरैं ॥१२॥

युद्ध में किसी की भी विजय नहीं होने, अर्ककीर्त्ति के समझाने पर युद्ध की समाप्ति, जयकुमार सुलोचना विवाह एवं भगवान ऋषभदेव के कैलाश से निर्वाण होने का वर्णन मिलता है।

चतुर्थ प्रभाव में कुरुवंश की उत्पत्ति एवं उस वंश में होने वाले राजाओं का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। अनन्तवीर्य राजा के कुरु पुत्र से कुरुवंश की उत्पत्ति मानी गयी है—

अब अनंत वीरज नृपति, राज करयो बहु काल।
तिनहीं के सुत कुरु भए, सोभित उर गुनमाल ॥३॥
भए चंद कुरु वंस नभ, फुनि उपजे कुरुचंद।
तिनके तनय सुभकरो, नृप गन मैं अरविंद ॥४॥

इस ही वंश में १६ वें तीर्थंकर शांतिनाथ हुए। जो चक्रवर्त्ति भी थे। उन्हीं का ६ पूर्व भवों का वर्णन इस प्रभाव में किया गया है।

तिन पीछें तहां नृप भए, विश्वसेन विख्यात।
ताकै सुत जिन सांति को, बरनी चरित सुभांति ॥१२॥

इसी वर्णन में कन्या का विवाह कैसे वर के साथ करना चाहिये इसका निम्न प्रकार कथन किया है—

१ २ ३ ४ ५ ६
जाति अरोगी वय समान, सील श्रुती वपु जान ।
७ ८ ९
लच्छि पक्ष परवारए, नव गुण वरहि बखान ।।२६।।

पञ्चम प्रभाव

एक बार ईसान स्वर्ग की इन्द्र सभा में वज्रायुध राजा की प्रशंसा होने लगी। वहां कहा जाने लगा कि उसके समान इस समय कोई सम्यक्त्वी नहीं है। इसी बात को चित्रचूल देवता ने सुन लिया। वह वज्रायुध की प्रशंसा को सहन नहीं कर सका और उससे वाद करने लिए वहां आ गया।

चित्रचूल एकांत नय, अनेकांत नर राइ।
इनकौ वाद बखानिये, वार्तै रूप बनाइ ।।२१।।

इसके पश्चात् कवि ने अनेकांत एवं एकांत चर्चा को गद्य में लिखा है। इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

प्रथम ही सुर बोल्यौ — हे राजन् जीवादिक सप्त तत्व नव पदार्थ के विचार विर्षे तुम पंडित हो। तातैं तुम कहौ। पर्याय पर्याइ विर्षे भेद है कि नाहीं। जो तुम कहौगे की पर्यायी तैं पर्याय भिन्न है तौ वस्तु को अभाव होइगौ।

राजा वज्रायुध ने एकान्तवाद कि विरोध में अपना पक्ष बहुत ही सुन्दर शब्दों में रखा। कवि ने पञ्चास्तिकाय में से कुछ गाथाओ को उद्धृत किया है राजा वज्रायुध की बातों से अन्त में वह देव अत्यधिक प्रभावित हुआ और निम्न प्रकार अपनी बात कहकर स्वर्ग चला गया —

जैसा स्वर्ग लोक विर्षे इन्द्र महाराज्य ने कह्या था तैं सही है। यामैं संदेह नांही। ऐसैं निसंदेह सुर भया। कह्या की वज्रायुध तुम धन्य हौ शुद्ध सम्यगदृष्टी हौ। (पृष्ठ ६६)

क्षेमंकर अपने पुत्र वज्रायुध को राज्य सौंपकर स्वयं दीक्षित हो गया। वज्रायुध चक्रवर्ति राजा था। वज्रायुध के पश्चात् सहस्रायुध राजा बना। इसके पश्चात् एक के पीछे दूसरे राजा बनते गये। अन्त में हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन हुए उनकी रानी ऐरावती थी। उसी के गर्भ से १६ वें तीर्थंकर शांतिनाथ का जन्म हुआ। जब वे युवा हुए तो विश्वसेन ने उनको राज्यभार सौंप कर स्वयं वैराग्य धारण कर लिया। वे चक्रवर्त्ति सम्राट् थे। दीर्घकाल तक राज्य सम्पदा भोगने के

पश्चात् अपने ही दो रूप दिखने के कारण वैराग्य हो गया और अन्त में सम्मेद-शिखर से निर्वाण प्राप्त किया।

षष्ट प्रभाव में १७ वें तीर्थंकर कुंथुनाथ एवं सप्तम प्रभाव में अरनाथ तीर्थंकर का जीवन चरित्र वर्णित है। दोनों ही प्रभाव छोटे छोटे हैं।

अष्टम प्रभाव में तीर्थंकर 'अरनाथ' के चार पुत्रों से कथा प्रारम्भ होती है।[1]

इसी बीच उज्जयिनी के राजा श्री वर्मा, उसके चार मन्त्रियों एवं अकंपनाचार्य संघ की कहानी प्रारम्भ होती है। मुनिसंघ के एक मुनि श्रुत सागर द्वारा वादविवाद में जीतकर आने के साथ कथा में मोड़ आता है।

सातसौ मुनियों पर उपसर्ग, उपसर्ग निवारण हेतु विष्णुकुमार मुनि द्वारा बलि राजा से तीन कदम भूमि मांगना, और अकंपनाचार्य आदि ७०० मुनियों पर से उपसर्ग दूर होने की कथा चलती है। जैनधर्म में रक्षाबंधन पर्व का इसीलिए महत्व है कि इस दिन ७०० मुनियों की विष्णुकुमार मुनि द्वारा जीवन रक्षा हुई थी।

इसी प्रभाव में गंगासुत गंगेय द्वारा अपने पिता की इच्छा पूर्ति के लिए धीवर कन्या गुणवति को लाया जाता है। राजपुर के राजा व्यास के तीन पुत्र धृतराष्ट्र, पांडु, एवं विदुर होते हैं। इसके पश्चात् हरिवंश की कथा प्रारम्भ होती है। धृतराष्ट्र के भाई पांडु द्वारा कुन्ती से समागम के प्रस्ताव का कवि ने अच्छा वर्णन किया है। कुन्ती कुंवारी थी पांडु द्वारा प्रेमपाश में फंसने के कारण वह गर्भवती हो गयी। जब माता पिता को मालूम पड़ा तो वे बहुत कुपित हुए। कुन्ती के पुत्र हुआ। इसका नाम कर्ण रखा गया लेकिन लोक लज्जा से भयभीत होकर वे उस बालक को मन्जूषा में रखकर नदी में बहा दिया। वह बहता हुआ चम्पापुर के तट पर पहुंच गया जहाँ के राजा द्वारा पुत्र के रूप में पाला गया।

---

१. अर सुत श्री अरविंद नृप, ताके पुत्र सुचार।
उपजे सूर सुचातें, ताकें भूप सुसार ॥२॥

नवम प्रभाव

प्रारम्भ में कवि ने कर्ण की उत्पत्ति पर एक व्यंग कहा है—

सुनि [illegible] संसार मैं, महामूढ हैं लोग ।
ऐसे कर्णकुमार कौ, कर्णांश कहत प्रजोग ।।२।।
कर्ण कर्ण बातैं चली, जनम समैं पुर ग्राम ।
तातैं अन्धक वृष्टि नृप, कर्ण धरयौ तिस नाम ।।३।।
खाज उठी राधा श्रवन, बालक लेती बार ।
तातैं राजा भानु नैं, भाष्यौ कर्णकुमार ।।४।।
कर्ण भयो जो कर्ण तैं, तौ यह सारि सिद्धि ।
क्यौ नहि उपजै कर्ण तैं, तातैं झूठ प्रसिद्ध ।।५।।
कर्ण नासिका नर भए, देखे सुने न कोइ ।
तातैं उतपति कर्ण की, कर्ण विषै किम होइ ।।६।।

इसके पश्चात् पाण्डु एवं कुन्ती के साथ विवाह का कवि ने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। बरात का चढ़ना, बरतियों द्वारा नाचगान, नगर की सुन्दरियों द्वारा पान्डु को देखने की इच्छा, आदि का अच्छा वर्णन किया है। पाण्डु का कुन्ती के साथ विवाह संपन्न हो गया। पाण्डु की दूसरी पत्नि का नाम मद्री था। कुन्ती से युधिष्ठर, भीम एवं अर्जुन तथा मद्री से नकुल एवं सहदेव पुत्र हुए। धृतराष्ट्र की पत्नि का नाम गंधारी था। जब वह सर्वप्रथम गर्भवती हुई तो उसे सौ पुत्रों की माता होने का आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

पूरन मास बितीते जबै, सुख सौ तनुज जन्यो तिन तबै ।
तब बढ़वारनि नाइन धाइ, ताहि असीस दई इहि भाइ ।।२०।।
सत सुत जनियौ सुख खांनि, चिरंजीयौ गंधारि रांनि ।
जिहि संग जुद्ध सु दुखसैं होइ, तातैं भनि दूर जेधन सोइ ।।२१।।

पांचों पांडवों एवं १०० कौरवों को द्रोणाचार्य ने धनुविद्या सिखलायी।

दशम प्रभाव

एक समय पांडु एवं मद्री वन भ्रमण को गये। वन की सुन्दरता, एकाकीपन एवं प्राकृतिक छटा को देखकर वह कामातुर हो गया और मद्री को लेकर झुरमुट की ओर चला। वहां उसने एक मृग एवं मृगी को काम वासना युक्त देख

कर अकारण उसे अपने ही बाण से मार गिराया । अकारण ही मारने से आकाश से आकाश वाणी हुई जिसमें उसे भला बुरा कहा और इस कार्य को निन्दनीय ठहराया । वहीं पर विहार करते हुए एक निर्ग्रन्थ मुनि आये उन्होंने भी पाण्डु एवं मद्री को संसार की असारता एवं भोगों की निस्सारता पर प्रवचन दिया ।

> इहि विधि मुनि के वचन सुनि, पांडु भयौ भयवंत ।
> जीवन संयम लखित सम, जानि छिनक छय संत ।।७।।
> तब चित मैं थिरता धरी, वन्दे मुनिवर पाइ ।
> अधिक भगति करि थुति करत, चल्यौ नगर की राह ।।८।।

पांडु राजा नगर में गये । अपने पूरे परिवार को एकत्रित किया और सबको काम विषयों की एवं जगत की असारता तथा मृत्यु की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला । अपने भाई धृतराष्ट्र को बुलाकर अपने पांचों पुत्रों को सौंप दिया और अपने पुत्रों के समान उनसे व्यवहार करने की । प्रार्थना की कुन्ती से पुत्रों को सम्हालने के लिए कहा । राज्य पाट त्याग कर गंगा नदी के किनारे जाकर जिन दीक्षा धारण करली और यावत् जीवन आहार न लेने की प्रतिज्ञा ले ली, मद्री रानी ने भी वैसा ही किया और दोनों ने मरकर प्रथम स्वर्ग में प्राप्त किया ।

एक दिन महाराज धृतराष्ट्र राज्य करते हुए वन भ्रमण को चले । वहाँ की एक शिला पर विपुलमती मुनि ध्यानस्थ थे । राजा को मुनि ने उपदेशामृत पान कराया । इसके पश्चात् धृतराष्ट्र ने मुनि से निम्न प्रकार प्रश्न किये—

> ऐसी सुनि के पूछी राइ, हे स्वामी कहीए समझाइ ।
> मेरे सुत अति पांडव साज, इनमैं कौन लहैगौ राज ।।५७।।
>
> × .... × .... × .... × .... ×
>
> पांडव पंच महाबल धनी, ह्वै है कैसी थिति उन तनी ।।६१।।
> ए मेरे सुत पृथिवी माहि, छत्रपति ह्वै है अकि नांहि ।
> मगध देस फुनि सोभित महा, राजग्रही पुरि तामैं ।
> जरासंध नृप तामैं महा, प्रति केशव सों अन्तिम कहा ।

उक्त प्रश्नों के अतिरिक्त धृतराष्ट्र ने और भी प्रश्न पूछे । मुनिराज ने धृतराष्ट्र के प्रश्नों का निम्न प्रकार उत्तर दिया—

अैसी सुनि मुनि बोले सही, हे राजा अब सुनीये यही ।
पांडव अरु दुरजोधन आदि, इनमैं ह्व है अति हि विवाद ।

दोहा

एक राज कैं कारनैं ह्वं है इनहि विरुद्ध ।
तेरे सुत कुरुखेत में, मरि हैं करि कैं जुद्ध ॥६८॥
दुहूं उरके सुभट जहां, मरहि परस्पर धाइ ।
अैसे रण मैं पांडवा, जीति लहैगे राइ ॥६९॥
हति कै तेरे सुतन कौ, गहि गजपुर राज ।
पूरब पुन्य प्रताप तैं, लहि है सब सुख साज ॥७०॥
जरासंध की बात तुम, जो पूछी यह और ।
सो नारहन हाथ तैं, मरि है ताही ठौर ॥७१॥

ग्यारहवां प्रभाव

मुनि की बात सुनकर राजा धृतराष्ट्र भी जगत से उदासीन हो गये । और युधिष्ठर को राजा बना कर स्वयं ने जिनदीक्षा धारण कर ली । द्रोणाचार्य से पांच पाण्डवों एवं कौरवों ने धनुर्विद्या सिखी । लेकिन इस विद्या में पाण्डव प्रवीण थे । पांडवों एवं कौरवों में धीरे धीरे विरोध बढ़ने लगा । इस विरोध को शान्त करने के लिए युधिष्ठर ने आधा आधा राज्य बांट दिया । लेकिन इसमें भी शान्ति नहीं मिली । जब भी कोई प्रसंग आता कौरव उपद्रव किये बिना नहीं मानते । फिर भी वे भीम एवं अर्जुन की बराबरी नहीं कर सकते थे । एक बार भीम को का जहर खिला दिया लेकिन भीम अपने पुण्योदय से बच गया । एक बार धनुर्विद्या की परिक्षा में अर्जुन ने पक्षी के आंखों पर तीर चलाकर अपनी विद्या की प्रशंसा प्राप्त की । शब्दभेधी बाण चलाने में भी अर्जुन सबसे आगे रहे ।

बारहवां प्रभाव

इसके पश्चात् राजा श्रेणिक द्वारा यादवों की कथा कहने की प्रार्थना करने के कारण कवि ने इस प्रभाव में यादव कथा कही है । यादव वंश में वसुदेव शिरोमणी थे । वसुदेव के बलभद्र पैदा हुए । एक बार जरासंध ने घोषणा की जो सिंहरथ को बांधकर ले आवेगा उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करेगा । वसुदेव सेना लेकर

आगे गया और सिंघरथ को बांधकर ले आया। इससे जरासंध बहुत प्रसन्न हुआ। तीर्थंकर नेमिनाथ के आगमन को जानकर कुबेर ने इन्द्र की आज्ञा से द्वारावती नगरी को बसाया। वहां का राजा समुद्रविजय था। उसकी रानी का नाम शिवादेवी था। वह अत्यधिक सुन्दर एवं रूपवती थी। उसने सोलह स्वप्न देखे जिनके फल पूछने वह शीघ्र ही तीर्थंकर की माता बनने वाली है ऐसा बतलाया। माता की श्री ह्री घृति आदि सोलह देवियां सेवा करने लगी तथा विभिन्न प्रकार से माता को प्रसन्न रखने लगी। सावन सुदी षष्टी के दिन नेमिनाथ का जन्म हुआ। स्वर्ग से इन्द्र ने आकर तीर्थंकर का जन्माभिषेक मनाया। सारे लोक में आनन्द छा गया।

तेरहवां प्रभाव

इस प्रभाव में श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मणि हरण एवं विवाह, शिशुपाल वध, प्रद्युम्न जन्म एवं हरण आदि की संक्षिप्त कथा के पश्चात् फिर कौरव पांडवों की कथा आगे चलती है। युधिष्ठिर द्वारा आधा आधा राज्य बांटने के पश्चात् कौरव सन्तुष्ट नहीं हुये और उन्होंने पूरे राज्य के १०५ टुकड़े करने पर जोर दिया। इस प्रस्ताव का पाण्डवों ने घोर विरोध किया। कौरवों ने पाण्डवों को मारने के लिए लाक्षागृह बनाया लेकिन उनको कुछ भी सफलता नहीं मिली। सभी पांडवपुत्र पूर्व निर्मित गुप्त मार्ग से निकल गये। पांचों पाण्डव नाव में बैठकर गंगा पार करने लगे। लेकिन बीच में नाव रुक गयी। धीवर ने कहा कि गंगा में रहने वाली तुंडी देवी नर बलि चाहती है। सब फिर विपत्ति में फंस गये। युधिष्ठर ने अपना बलिदान देना चाहा लेकिन भीम गंगा में कूद पड़ा और तुंडी को मार कर उसे अपने वश में कर लिया। और अन्त में सभी सकुशल गंगा पार उतर गये। कवि द्वारा पूरा प्रभाव ही रोमान्चक ढंग से निबद्ध किया गया है।

चौदहवां प्रभाव

सभी पाण्डव प्रच्छिन्न वेश में कौशिकपुर पहुंचे। वहां से त्रिशृंगपत्तन पहुंचे। वहां के राजा के १० कन्यायें थीं। तथा एक कन्या नगर सेठ के थी, एक निमित्त ज्ञानी के अनुसार सभी का विवाह पाण्डवपुत्रों के साथ होना था। इसलिए जब पांडव वहां पहुंचे तो चारों और प्रसन्नता छा गयी एवं सभी ग्यारह कन्याओं का विवाह युधिष्ठर के साथ हो गया।

पन्द्रहवां प्रभाव

सभी पांचों पांडव अपनी माता कुन्ती के साथ आगे बढ़ते गये। मार्ग में जब भीम जल लेने गया तो उसे वहां खगपति मिला। इसके साथ एक कन्या थी जो हिडम्बी की पुत्री थी। एक भयानक वन में भीम ने एक राक्षस पर विजय प्राप्त की। वहीं पर एक वणिक था। संध्या होने पर वह रोने लगा। पूछने पर मालूम हुआ की बक राजा के भक्षण के लिए आज उसके बालक का नम्बर है। यह सुन कर भीम को दया आयी और उसने बालक के स्थान पर अपने आप का बलिदान देने की तैयारी की भीम ने बक राजा को लड़ाई में हराकर उसे भविष्य में किसी जीव की हिंसा न करने की प्रतिज्ञा करवायी। पांचों पाण्डव आगे गये मार्ग में आने वाले सभी जिन चैत्यालयों की वन्दना करते गये। फिर वे चलकर चम्पापुरी पहुँचे। कर्ण वहां का राजा था। पांडव गण वहीं काफी समय तक रहे। वहीं पर भीम ने एक मतवाले हाथी को वश में किया। फिर वे ब्राह्मण के वेश में आगे बढ़ते गये। एक दिन जब भीम ब्राह्मण वेश में भिक्षा मांगने राजा के यहां गया तो राजा ने भिक्षा में उसे अपनी कन्या दे दी।

सोलहवां प्रभाव

पांचों पांडवों ने दक्षिण में भी खूब भ्रमण किया। इसके पश्चात् वे पुनः गजपुर को आगये। वे सभी विप्र वेश में घूमते थे। वहां के राजा द्रुपद थे तथा उसकी पुत्री का नाम द्रौपदी था। जिसकी सुन्दरता का वर्णन करना सहज नहीं था। उसके विवाह के लिए स्वयंवर रचा गया जिसमें राजा महाराजा सभी एकत्रित हुए। गांडीव धनुष को चढ़ाने में सफल होने वाले राजकुमार को द्रौपदी को देने की घोषणा की गयी। चारों ओर के अनेक राजा एकत्रित हुए।

तौ लौं नृप सब आए तहीं, दुर्योधन कर्ण आदिक सही।
जालंधर अस जादव ईस, खलपति फुनि मगधी धीस ॥५०॥
कांतिवान बहु सोभित रूप, बैठे मंडप मांहि अनूप।
पांडव पांचौ द्विज कै भेष, आप पहुँचे सोभा देखि ॥५२॥

सभी राजाओं ने धनुष को जाकर देखा। राजाओं का परिचय करवाया गया। किसी राजा ने भी धनुष चढ़ाने में अपना बल नहीं दिखा सके। अन्त में अर्जुन ने विप्र के वेश में ही धनुष चढ़ा दिया। द्रौपदी ने उसके गले में माल डाल

दी। दुर्योधन आदि राजाओं ने अपना दूत भेजकर इसका विरोध किया। लेकिन राजा द्रुपद ने स्वयंवर के निर्णय को न्याय संगत बतलाया। दुर्योधन आदि राजाओं ने युद्ध की घोषणा कर दी। चारों ओर युद्ध की तैयारी होने लगी। द्रोपदी यह देखकर डर गयी। परस्पर में खूब युद्ध हुआ। अर्जुन एवं भीम ने अपने पराक्रम से सबको चकित कर दिया। जब द्रोण ने अर्जुन को ललकारा तो अर्जुन अपने गुरु के विरुद्ध बाण चलाने के बजाय बाण द्वारा अपना परिचय दिया। पांडवों को जीवित जानकर सभी प्रसन्न हो गये लेकिन कौरव मन ही मन जलने लगे। इसके पश्चात् पाण्डव हस्तिनापुर चले गये।

सत्रहवां प्रभाव

पाण्डवों एवं कौरवों ने अपना राज्य आधा बांट लिया। तथा सुख पूर्वक रहने लगे। युधिष्ठर ने इन्द्रप्रस्थपुर, भीम ने तिलपथ, अर्जुन ने स्वर्णप्रस्थ, नकुल ने जलपथ एवं सहदेव ने वणिकपथ नामक नगर बसाकर राज्य करने लगे। कुछ समय पश्चाद् अर्जुन ने सुभद्रा का हरण कर लिया। दोनों का धूम धाम से विवाह हो गया। अर्जुन को कितने ही दैविक विद्याएं प्राप्त हुई। एक दिन दुर्योधन ने पाण्डवों को पास बुलाया तथा प्रेम से द्यूत खेलने को राजी कर लिया। द्यूत में पांडव सभी कुछ हार बैठे।

छल करि जीते कौरव कंस, धरम तनुज हारे सरवंस।
हारे हार रतन केयूर, कटक सुसीस प्रकट द्युति पूर ॥७०॥
दरवि देश हारे बहुमंत, हारे हय गय रथ संजूत।
अन्न कनक भाजन भंडार, हारी जो छेत्र भ्रातासार ॥७१॥

द्यूत क्रीडा में हार के कारण पांडव सम्पूर्ण राज्य हार गये तथा बारह वर्ष तक वनवास में रहने का निर्णय लिया। वे नगर को छोड़ कर कालिंजर वन में रहने लगे।

अठारहवां प्रभाव

वन में जाने पर पांडवों को मुनि के दर्शन हुए। मुनि श्री ने अशुभ कर्मों का फल बतला कर सब को शुभ भविष्य के लिए आशान्वित किया। उसी वन में एक खेचर मिला। उसने पारथ नृप को रथनुपुर में रहने का आग्रह किया। अपने भाइयों के साथ वे पांच वर्ष तक वहां रहे। कौरव राज दुर्योधन ने पांडवों को मारने के

अनेक उपाय किये। पहले चित्रांगद को भेजा लेकिन वह भी बुरी तरह हार गया। फिर कनकध्वज राजा ने पांडवों को सात दिन में मारने की प्रतिज्ञा की। भिल्ल के भेष में वह वन में आया और उनसे झगड़ा करने लगा। उसने द्रोपदी का हरण कर लिया। आपस में खूब विग्रह हुआ। लेकिन भील राजा द्वारा उसे मार दिया गया। इसके पश्चात् वे गुप्त भेष में विराट राजा के यहां पहुंचे और विभिन्न नामों से काम करने लगे। कीचक जैसे राक्षस को यहां भीम ने मारा। इसके पश्चात् और भी उपाय किये लेकिन पांडवों की जिनभक्ति, साहस एवं शौर्य के कारण कुछ भी नहीं हो सका।

उनीसवां प्रभाव

दुर्योधन पांडवों को मारने के अनेक उपाय ढूंढने लगा। उसने विराट राजा की गायों को चुरा लिया। गायों को छुड़ाने लिए अच्छा युद्ध हुआ। उसमें कौरवों के कितने ही वीर मारे गये। पांडव गायों को छुड़ाने में सफल हुए। पांडवों ने कौरवों के साथ युद्ध भी अज्ञात भेष में ही किया। अब विराट राजा को वास्तविकता का मालूम हुआ। तब वह कहने लगे--

मैं नहीं जाने अबलौ देव, धरमपुत्र तुम छमियो एव।
अब तैं तुम ही स्वामी इष्ट, हम किंकर तुम पालक शिष्ट ।।५।।
यांही पुर मैं बंधव संग, कीजे राज सदा निरभंग ।
बहुत विनय सौं असे भाषि, गोष्टी मैं सब गोधन राखि ।।६।।

विराट राजा ने अपनी पुत्री का विवाह अभिमन्यु से कर दिया। विवाह में श्रीकृष्ण, बलराम, दुर्योधन आदि सभी राजा महाराजा एकत्रित हुए। विराट राजा ने सब की खूब आवभगत की।

राजा श्रेणिक ने जब एक अक्षौहिणी सेना का संख्या बल जानना चाहा। इसका समाधान निम्न प्रकार किया गया—

सहसइकीस सतक वसु लहै,
सत्तर फुनि गज संख्या लहै ।।
ते तेहीं रथ गनीये तहीं,
हय संख्या अब सुनीयेसही ।। १७ ।।

पैंसठि सहस सतक षट जानि,
दस ऊपरि हय संख्या ठानि। (६५६१०)
एक लख्य नौ सहसै मित्त,
तिनि सतक पंचासहि पत्ति ॥१०९३५०॥१८॥
इतनी सैना इकठी होइ,
एक अक्षोहिनी गनीये सोइ ॥

कुन्ती ने द्वारका में जाकर श्रीकृष्ण जी से दुर्योधन के सभी कुकृत्यों को बतलाया और पाण्डवों पर किये जाने वाले व्यवहार के बारे में बतलाया। इस पर श्रीकृष्ण जी ने दुर्योधन के पास अपना एक दूत भेजा और पाण्डवों को आधा राज्य देने की सलाह दी। लेकिन दुर्योधन कब मानने वाला था वह तो उल्टा क्रोधित हो गया।

बीसवां प्रभाव

पांडव कौरव युद्ध के बादल मंडराने लगे। दुर्योधन को बहुत समझाया गया कि वह आधा राज्य पांडवों को दे दे। ऐसा नहीं करने पर जिनेन्द्र भगवान ने जो बात कही थी वही होगी। जब श्रीकृष्ण जी के दूत ने आकर उनसे सारी बात बतलाई। श्रीकृष्ण जी युद्ध के लिए अपनी तैयारी करली। पांचजन्य शंख को पूर दिया। शंख की आवाज सुनते ही कुरुक्षेत्र मैदान में सेनायें एकत्रित होने लगी। कवि ने इस में चतुरंगिनी सेना का विस्तृत वर्णन किया है। इसके पश्चात् कुरुक्षेत्र में खड़ी सेना कहां कहां खड़ी है, कितना संख्या बल है आदि सभी का वर्णन किया है। कौरव पांडवों में घनघोर लड़ाई होने लगी। एक दूसरे को ललकार कर युद्ध के लिए आह्वान किया जाने लगा तथा एक दूसरे के पौरुष की हंसी उड़ायी जाने लगी। भीष्मपितामह युद्ध में जर्जरित हो गये और जब उनके कंठगत प्राण आ गये तब उन्होंने युद्ध भूमि में सन्यास ले लिया तथा सल्लेना व्रत धारण कर लिया। उनका अन्तिम सन्देश निम्न प्रकार था—

करौ परस्पर मित्रता, तजौ शत्रुता चित्त।
अब लौं क्या ऐसे भये, तुम निहचै नहि कित्ति ॥६५॥
जे केई रन में मरे, गए निंद गति सोइ।
तातैं कीजै धर्म्म अब, दस लक्षण मबलोई ॥६६॥

शुभ भाव से मरने के कारण भीष्म पितामह पांचवे स्वर्ग में जाकर देव हुए।

एक बीसवां प्रभाव

दूसरे दिन फिर युद्ध प्रारम्भ हुआ। अभिमन्यु ने भीषण युद्ध किया। इसी समय दुर्योधन का पुत्र प्रचंड गति से बाण छोड़ने लगा। लेकिन वह अभिमन्यु के द्वारा मारा गया। इससे दुर्योधन ने योद्धाओं को अभिमन्यु को मारने के प्रोत्साहित किया। द्रोण, कर्ण कलिंगराजा सभी अभिमन्यु को मारने दौड़े। लेकिन कोई उपाय नहीं चला। आखिर सबने मिलकर उसे घेर लिया। दुर्भाग्य से जयद्रथ आ गया और उसके हाथ से अभिमन्यु को प्राणघातक बाण लगा। अभिमन्यु ने उसी समय सभी कषायों से विरक्ति लेकर शान्त चित्त से भगवान को स्मरण करते हुये मृत्यु को वरण किया। अभिमन्यु के मरने से कौरवों में प्रसन्नता छा गयी जब कि पांडवों में शोक संतप्त छा गया। जयद्रथ की रक्षा के लिये द्रोण ने पूरे उपाय किये। लेकिन अर्जुन ने जयद्रथ का उसी दिन वध करने की प्रतिज्ञा की। भयानक युद्ध के मध्य अर्जुन ने जयद्रथ को मार भी डाला और उसके सिर को पिता की गोद में डाल दिया। इसके पश्चात् अश्वत्थामा मारा गया। जब कौरवों की हार पर हार होने लगी तो उन्होंने युद्ध के सारे नियमों का उल्लंघन कर रात्रि को सोते हुये पांडवों पर धावा बोल दिया। हजारों निहत्थे पांडव सेना मारी गयी फिर द्रोणाचार्य भी मारे गये। कर्ण व अर्जुन में परस्पर में घोर युद्ध हुआ और कर्ण भी अर्जुन के तीर से मारा गया। उधर भीम ने दुर्योधन के सभी भाइयों को एक एक करके मार डाला। इस पर भी दुर्योधन के हृदय की आग ठंडी नहीं हुई।

> मंत्री सौं कहि कौरव पति, चले जुद्ध को धाई।
>
> पांडव सैना सनमुखें, क्रोध प्रचंड बढ़ाइ ॥८४॥

दुर्योधन और पांडवों के बीच भीषण युद्ध हुआ। लेकिन दुर्योधन बच नहीं सका और वह भी मारा गया। इसके पश्चात् शेष कौरव सेनापति भी मारे गये। अन्त में जरासन्ध भी कौरवों की ओर से लड़ने के लिए आया। जरासन्ध के साथ भीषण युद्ध हुआ। अन्त में जब जरासन्ध ने चक्र चलाया तो वह भी श्रीकृष्ण जी के हाथ में आ गया। और कृष्णजी ने चक्र चलाया तो उसने तत्काल जरासन्ध का शिर काट दिया। इस प्रकार १८ दिन तक भीषण लड़ाई होने के पश्चात् कौरव पांडव युद्ध की समाप्ति हुई और पर्याप्त समय तक पांडवों ने देश पर शासन किया।

बाबीसवां प्रभाव—

बहुत समय व्यतीत होने पर एक बार युधिष्ठर की राजसभा में नारद ऋषि का आना हुआ। महलों में द्रोपदी द्वारा नारद का उचित सम्मान नहीं मिलने के कारण वह कुपित होकर वह उसके हरण का उपाय सोचने लगे। अन्त में धातकीखंड के सुरपुरि के पद्मनाभ राजा के पास गये और उन्हें द्रोपदी का पट चित्राम दिखलाया। पद्मनाभ चित्र देखकर उस सुन्दरी को पाने की अभिलाषा करने लगा और नारद से उसका पूरा वृत्तान्त पूछ लिया। नारद द्वारा पूरा परिचय प्राप्त करने के पश्चात् वह वहाँ आया और सोती हुई द्रोपदी का हरण करके अपने यहाँ ले आया। प्रातः होने पर जब द्रोपदी की नींद खुली तब उसने चारों ओर देखा। पद्मनाभ राजा ने अपना सारा वृत्तान्त कहा और उसके सामने रानी बनने का प्रस्ताव रखा। द्रोपदी ने राजा पद्मनाभ को पांडवों का परिचय दिया। द्रोपदी के हरण से हस्तिनापुर में भी हाहाकार मच गया। सेना सुसज्जित कर दी गयी। चारों ओर तलाश होने लगी, इतने में वहाँ नारदमुनि आये और कहने लगे कि धातकीखंड की सुनकापुरी के राजा पद्मनाभ के यहाँ उसे अश्रुवदना द्रोपदी देखी है। इस पर पाण्डव वहाँ अपनी सेना सहित पहुँचे। पद्मनाभ सेना देखकर घबरा गया और द्रोपदी से क्षमा माँगने लगा। आखिर उन्हें द्रोपदी मिल गई। सबने इस उपलक्ष में जिन पूजा कीनी।

तेबीसवां प्रभाव—

सभी पांडव श्रीकृष्ण के साथ वापिस आ गये। पाण्डव अपने राज्य का समस्त भार अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को देकर मथुरा आ गये। इधर २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ ने गृह त्यागकर दीक्षा ग्रहण की और घोर तपस्या के पश्चात् कैवल्य हो गया। भगवान का समवसरण रचा गया। कुछ समय पश्चात् नेमिनाथ का समवसरण ऊर्जयंत गिरि पर आया। सभी पाण्डव उनके दर्शनार्थ गये। उन्होंने हरि राज्य एवं द्वारावती कब तक रहेगी यह प्रश्न किया। इस पर नेमिनाथ ने कहा कि द्वीपायन ऋषि के शाप से द्वारिका जलेगी तथा जरतकुमार के बाण से श्रीकृष्ण जी की मृत्यु होगी। जब जरत्कुमार ने श्रीकृष्ण की मृत्यु के समाचार पाण्डवों को जा कर कहे तो सभी पाण्डवगण रोने लगे। कुन्ती बहुत रोयी। जरत्कुमार को साथ लेकर वहीं गये जहाँ बलदेव हरि के मृतक शरीर को लिए हुए थे। पाण्डवों ने जब दाह क्रिया करने के लिए कहा तो बलराम बहुत क्रोधित हुए। कुछ समय पश्चात् सर्वार्थसिद्धि से देव ने आकर बलराम को सम्बोधित किया। अन्त में तुंगी गिरि पर पाण्डवों ने मिलकर उनका दाह संस्कार किया। पिहिताश्रव मुनि के पास स्वयं बलराम ने भी जिन दीक्षा ले ली।

चौबीसवां प्रभाव—

पाण्डव वहां से द्वारिका आये। लेकिन द्वारिका जल चुकी थी स्वर्गपुरी के समान वह नगरी अब राख का ढेर थी। कवि ने द्वारिका की दशा का अच्छा वर्णन किया है—

होते नित जिन तैं आनन्द, ते सब विनसै कुंवर वृन्द।
रुकमिनि आदिक रानी यह, तिनके सदन भए दह वह।
जे नित करतीं हास विलास, विनसि गई ज्यौं नीरद रासि।
यहीं सुजन की संगति रमयो, छिनक भई है सरिता समो ॥८॥

जगत की असारता जान कर पांचों पाण्डव नेमिनाथ के पास पहुंचे और उनकी स्तुति करने लगे। भगवान नेमिनाथ ने पाण्डवों को उपदेशामृत का पान कराया। इस रूप में कवि ने जिन धर्म के मूल तत्वों पर अच्छी तरह प्रकाश डाला है। पाण्डवों ने तीर्थंकर नेमिनाथ से अपने २ पूर्वभवों को सुना।

पच्चीसवां प्रभाव—

इस प्रभाव में भी पाण्डवों एवं द्रोपदी के पूर्वभवों का वर्णन किया हुआ है।

छब्बीसवां प्रभाव—

अपने पूर्व भवों को सुनने के पश्चात् पाण्डवों को भी जगत् से वैराग्य हो गया। और सभी पांचों भाइयो ने जिन दीक्षा ले ली। कुन्ती द्रोपदी, सुभद्रा आदि रानियों ने भी आर्यिका राजमती के पास जाकर संयम धारण कर लिया। तथा साध्वी दीक्षा अंगीकार कर ली। वे घोर तपस्या करने लगे। एक बार उनको तपस्या करते देख दुर्योधन के भानजा को अत्यधिक क्रोध आया और उसके हृदय में प्रतिशोध की अग्नि जलने लगी। उसने सोलह भूषण अग्नि में लाल करके उनको पहिना दिये। लेकिन वे सभी बाहर भावना भाने लगे। अन्त में अपने आप पर पूर्ण विजय प्राप्त कर युधिष्ठर, भीम एवं अर्जुन ने निर्वाण प्राप्त किया तथा नकुल एवं सहदेव ने सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की। वे दोनों पुनः नर भव धारण करके मोक्ष प्राप्त करेंगे। महा आर्यिका राजमती, द्रोपदी, कुन्ती एवं सुभद्रा ने सोलहवां स्वर्ग प्राप्त किया। भगवान नेमिनाथ को भी गिरिनार पर्वत से निर्वाण प्राप्त हुआ। अन्त में कवि ने बहुत ही विनय के साथ ग्रंथ समाप्त किया है।

कवि बुलाकीदास ने तत्कालीन बादशाह का निम्न सवैया छन्द में उल्लेख किया है—

बंस मुगलाने मांहि दिल्लीपति पातसाहि
तिमिरलिंग सुत बाबर सु भयो है।
ताको है हिमाऊ सुत ताहि तैं अकब्बर है
जहांगीर ताकै बीर साहिजहां हयो है।
साजमहल मंगता अगज उतंग महाबली
अवरंग साहि साहिन में जयो है।
ताकी छत्र छांह पाइ सुमति के उदै आइ
भारत रचाइ भाषा जैनों भव लयो है ।।६।।

पाण्डवपुराण में कौन-२ से छन्दों का किस प्रकार प्रयोग हुआ है उसका कवि ने निम्न प्रकार वर्णन किया है—

छप्पै एक करखें अठाईं चाली ते बीस छत्तीस
सएक सोरठेई परमानिये।
छयालीस तेईसो पाछली पचीसीगनिलैहीं
भुजंग नंव छंद जैनीं जग जानिये।
तीनसै तिरासी डिल्ल नौ सौ तीस दोहा भनि
ढाईसै सतानवै सुचौपई बखानिए।
सारे इक ठौर करि ठानीयें बुलाकीदास
एकादश पंचसै हजार चार मानिये।

कवि ने श्लोक संख्या निम्न प्रकार बतलायी है—

संख्या श्लोक अनुष्टपी, गनीये ग्रंथ लखाइ।
सप्त सहस्र षट सतक पुनि पंचपन अधिक मिलाइ ।।१०।।

इस प्रकार पूरा पाण्डवपुराण ७६५५ श्लोक प्रमाण है।

पाण्डवपुराण की विशेषताएं

पाण्डवपुराण यद्यपि भट्टारक शुभचन्द्र के संस्कृत पाण्डवपुराण का पद्यानुवाद है लेकिन कविवर बुलाकीदास की काव्य प्रतिभा के कारण वह एक स्वतन्त्र काव्य ग्रन्थ के समान बन गया है। पुराण २६ प्रभावों में विभक्त है जो सर्ग अथवा अध्याय के रूप में हैं। पुराण कथा प्रधान है। पाण्डवों के जीवन वृत्त को कहने

का काव्य का प्रमुख उद्देश्य है लेकिन कवि ने पुराण के प्रारम्भ एवं अन्त में जो प्रभाव जोड़े हैं उससे काव्य का रूप और भी निखर गया है। पुराण के प्रथम प्रभाव में मंगल पाठ एवं श्रेणिक द्वारा जिन वंदना का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से ही पुराण प्रारम्भ होता है और संक्षिप्त रूप से काव्य रूप में कथा प्रस्तुत की जाती है। इसके पश्चात् शांतिनाथ कुंथुनाथ एवं अरनाथ तीर्थंकरों का जीवन वृत्त दिया गया है ये तीनों ही तीर्थंकर थे साथ में चक्रवर्ती भी थे। ये सब वर्णन पाण्डवों के पूर्व भवों का सम्बन्ध जोड़ने के लिए ही किया गया है। इसी तरह कौरव पाण्डव महायुद्ध समाप्त होने के पश्चात् भी भगवान नेमिनाथ के जीवन एवं उनके उपदेशों का संक्षिप्त वर्णन, भगवान श्रीकृष्ण जी की मृत्यु, द्वारिका दहन, पाण्डवों द्वारा गृह त्याग एवं उनका अन्तिम मरण का वर्णन करके पाठकों को पाण्डवों के जीवन का पूरा वृतान्त बतलाया गया है।

पाण्डवपुराण का नाम दूसरा नाम भारत भाषा भी दिया गया है। शुभचन्द्र के पान्डवपुराण के अर्थ को समझकर उसके वर्णन को भारत भाषा कहा है।

मुनि शुभचन्द्र प्रनीत है कठिन अर्थ गम्भीर।
जो पुरान पांडव महा, प्रगटै पंडित धीर ॥४९॥
ताको अर्थ विचारि कैं, भारथ भाषा नाम।
कथा पांडु सुत पंचमी, कीज्यो बहु अभिराम ॥५०॥

इसलिए पाण्डवपुराण को जैन महाभारत भी कहा जाता है। वास्तव में यह पूरा महाभारत है जिसमें न केवल महाभारत का ही वर्णन है किन्तु युग के प्रारम्भ से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक वर्णन किया गया है।

पाण्डव पुराण वीर रस प्रधान है जिसमें युद्धों का एक से अधिक बार वर्णन हुआ है। यद्यपि पुराण शान्त रस पर्यवसायी है, तीर्थंकरों के उपदेशों का वर्णन हुआ है लेकिन उसमें प्रमुख पात्रों की वीरता सहज ही देखने योग्य है। वे अकारण किसी से घबराते नहीं है, लेकिन अन्याय के सामने सिर भी नहीं झुकाते। पाण्डवों का जीवन प्रारम्भ से ही अच्छा रहता है। उनका कौरवों के प्रति अच्छा व्यवहार रहता है। कौरवों की सुख शान्ति के लिए वे अपने राज्य को आधा आधा बांट कर भी सुख से रहना चाहते हैं। द्यूत क्रीड़ा में हारने के पश्चात् १२ वर्ष तक अज्ञातवास रहते हैं तथा अनेक कष्टों को भोगते हैं लेकिन अपने वचनों पर दृढ़ रहते हैं। युद्ध तब होता है जब दुर्योधन १२ वर्ष पश्चात् भी उन्हें कुछ भी देने को तैयार नहीं होता। यही नहीं युद्ध में भी वे प्राय युद्ध के नियमों का पालन करते हैं

जबकि दुर्योधन रात्रि को सोते हुए पाण्डवों पर एवं उनकी सेना पर धोखे से आक्रमण कर देता है। पाण्डवों का पूरा जीवन जैन धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार रहता है।

भाषा

पाण्डव पुराण के कवि आगरा निवासी थे इसलिये पुराण की भाषा पर ब्रज भाषा का सामान्य प्रभाव दिखलायी देता है। पुराण की भाषा सरल किन्तु ललित एवं मधुर है। कवि ने पुराण अपनी माता जैनुलदे के पठनार्थ लिखा था तथा उसे सामने बैठाकर इसकी रचना की थी इसलिये क्लिष्ट भाषा के प्रयोग का तो कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता फिर भी कवि ने अपनी पूरी कृति के कथा भाग को अत्यधिक सरस एवं मधुर बनाने का प्रयास किया है। प्रस्तुत पाण्डव पुराण हिन्दी की प्रथम कृति है इसके पूर्व सभी रचनायें अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा में निबद्ध थी। इसलिये कविवर बुलाखीदास ने अपनी माता के आग्रह पर पाण्डव पुराण की हिन्दी में रचना करके साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ा था।

बुलाखीदास मुगल बादशाह औरंगजेब के शासन काल में हुए थे। उस समय फारसी एवं अरबी का पूरा प्रभाव था लेकिन कवि इन भाषाओं के प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त है। कवि ने सुर नृप संवाद में गद्य का भी प्रयोग किया है। यद्यपि संवाद पूरा सैद्धान्तिक है लेकिन कवि ने इसे अत्यधिक सरस बनाने का प्रयास किया है। गद्य का एक उदाहरण देखिये—

भो मित्र तुम सुनौं यह बात ऐसी नांही जैसे तुम कहो हो। तातैं तुम सुनौ याको उत्तर। जिनमत के अनुस्वार तैं कहौं हौं। सो तुम सावधान होइ कै सुनौं। जो तुम क्षणिक अथवा सून्यभान कुहो। एकांत नय करि कै तौ द्रव्य सधनै का नांही ॥
(पृष्ठ संख्या ६३)

गद्य की भाषा पर ब्रज का स्पष्ट प्रभाव दिखलायी देता है।

छन्द

कवि का दोहा एवं चौपई छन्द अत्यधिक प्रिय छन्द हैं। उस समय येही छन्द सर्वाधिक लोकप्रिय छन्द थे। पाण्डव पुराण इन्हीं दो छन्दों में निबद्ध है। लेकिन सवैया तेईसा, इकतीसा, छप्पय, सोरठा, अडिल्ल, पाद्धडी, छन्दों में भी पुराण निबद्ध किया गया है। प्रत्येक प्रभाव का प्रथम पद्य सवैया छन्द में लिखा गया है जो क्रमशः एक-एक तीर्थंकर के स्तवन के रूप में है।

इसके अतिरिक्त पाण्डव पुराण में तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन के लिये भी अच्छी सामग्री उपलब्ध होती है। पाण्डव पुराण हिन्दी भाषा में निबद्ध किया जाने वाला प्रथम पाण्डव पुराण है। इसकी लोकप्रियता इसीसे जानी जा सकती है कि राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थागारों में अब तक इसकी ३० से अधिक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हो है चुकी। सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि संवत् १७८३ आसोज बदी ६ को लिपिबद्ध दि० जैन पंचायती मन्दिर भरतपुर में संग्रहीत है।

卐

पाण्डव पुराण

(बुलाकीदास)

रचना संवत् १७५४ (1697 A. D.)

अथ पाण्डव पुराण भाषा लिख्यते

प्रथम सर्वज्ञ नमस्कार

छप्पय छंद

सैवत संत सुर राय स्वयं सिद्ध सिव सिद्धि मय।
सिद्धारथ सरवंस नय प्रमाण संसिद्धि जय॥
करम कंदन करतार करन भूरन कारन धरन।
असरन सरन अधार मदन दहन साधन सवन॥
इंह विधि अनेक गुन गन सहित अंग भूषन दूषन रहित।
तिहिं नंदलाल नंदन नमत सिद्धि हेत सरवज्ञ नित॥ १॥

दोहा

वृष नाइक वृष धाइ है वृष अंक वृष भेस।
सृष्टि विधाता वृषमय वंदी आदि जिनेस॥ २॥
चंद्रालंकृत चंद्र दुति, चन्द्रप्रभू भगवान।
ताके चरन चरचौं सदा, मिले चकोर सम ठान॥ ३॥
शांति रूप शिव मय सही, सकल सत्व सुखदाय।
शांति सरन सुमिरौं सदा, सरब सिद्धि सहाय॥ ४॥
नगन अंग अनंगहा, निश्चल सम नग ईस।
नेमि धर्मरथ हैंमि जिन, नमौ न्याय निजसीस॥ ५॥
वर्द्धमान विभु वीर्य बल, बर विधान बयवंत।
विविध विधाता बोध मय, विरधौ बुधि विकसंत॥ ६॥

गणनायक गणधर गनी, गणपति गौतम नाम।
अगति गहन को अगति गति, गाऊं तसु गुन ग्राम ॥ ७ ॥

जोम सुगति जस जनककौं, जननी जगत विख्यात।
जैनी वांनी जिन तनी, जपौं यथावत जात ॥ ८ ॥
जोगी जती-कुमारयौ, जनम जरा जुधि जीति।
थिर थानक थिर है थप्यौ, सुथिर जुथि स्थिरमीत ॥ ९ ॥
भीम भयानक भव विषै, भ्रमत भयौ भयवंत।
भरम भाव भारत रच्यो, भीम नाम इहि संत ॥ १० ॥
अलख अगोचर आतमा, मनभौ लखु जु अचूकि।
अरजुन भाये आप मैं, आराधी मद मूकि ॥ ११ ॥
निकुल करे कुल करम के, कलावान कविलब्धु।
तातै कवि कुल कहत हैं, नकुल नाम निरबिधू ॥ १२ ॥
सुगुन सहित सारम्भ संस, देव करैं जिस सेव।
सूर सुभट सुभ साहसी, सत्य एव सहदेव ॥ १३ ॥
पाई जिन या कालमैं, श्रुत सागर की थाह।
या पुराण मैं कीजिये, भद्रबाहु निरबाह ॥ १४ ॥
जाकी साख सुमिश्र मैं, विश्रुत सूरि विसाख।
ताकौं सुमिरत उर विषै, पुरवै मन अभिलाख ॥ १५ ॥

श्राह्मी जिन पाषान की, उर्जयंत गिरि सीस।
या कल मैं वादिन करी, कुंदकुंद मुनि ईस ॥ १६ ॥

देवागम जिन स्तवन सौं, प्रगट सुरागम कीन।
समंतभद्र भद्रार्थ मय गुन, न्यायक गुन लीन ॥ १७ ॥

जिन वारिधि व्याकरन की, लह्यौ पार मुनिराय।
पूज्यपाद नित पूज्य पद, पूज्ये मनवच काय ॥ १८ ॥
निःकलंक अकलंक जस, सकल शास्त्रविद जेन।
माया दैवी ताडिवा, कुंभथिता पदेन ॥ १९ ॥

चिरंजीव जिन सेन जति, जाकी जस जग माहि।
जिन पुरान गुरुदेव कौं, बरन्यौं चाहै ताहि ॥ २० ॥

पुराणादि परकाश कौं, सुर्यावित है जोइ।
प्रभवंत गुणभद्र गुरु, भूतल भूषन सोइ ॥ २१ ॥

मदन रहन गुरु चरन जुग, सरन गह्यौ कर जोर।
मदन आग के नास कौं, तरणि किरण जिम भोर ॥ २२ ॥

सोरठा

अपनौ वंस बखान, नमस्कार करि अब कहौं।
सकल सुनो दै कान, वतन गोत कुल वर्णवं ॥ २३ ॥

अथ कवि वंस वर्णन

दोहा

नगर बयानौ बहु बसै मध्यदेस विख्यात।
चारु बरन जहं बसैं, धारि सबैं बहु भांति ॥ २४ ॥

जहाँ न कोउ दालिद्री, सब दीसैं धनवान।
जप तप पूजा दान विधि, मानहि जिनवर आन ॥ २५ ॥

वैश्य वंस गुरुदेव नैं, जो थाप्यो अभिराम।
तिसी ही वंस तहां अवतर्यौ, साहु अमरसी नाम ॥ २६ ॥

अगरवाल सुभ जाति है, श्रावक कुल परवान।
गोयल गोत सिरोमनी, ब्यौंक कसावर जान ॥ २७ ॥

धर्मरसी सो अमरसी, लछिमी को आवास।
नृपगन जाकौ आदरैं, श्री जिनंद को दास ॥ २८ ॥

प्रेमचन्द ताको तनुज, सकल धर्म को धाम।
ताको पुत्र सपुत्र है, अचलदास अभिराम ॥ २९ ॥

वतन बयानौं छोडि सो, नगर आगरैं आय।
अन्न पान संजोगतैं, निवस्यौ सदन रचाय ॥ ३० ॥

बुधि निवास सो जानियें, अचल चरन को दास।
सत्य वचन के जोग सौं वरतैं नौं निधि तास ॥ ३१ ॥

गनियैं सरिता सील की, वनिता ताके गेह।
नाम अनंदी तास को, मानौं रति की देह ॥ ३२ ॥

उपज्यो ताके उदर तैं, नंदलाल गुन वृंद।
दिन दिन तन चातुर्यता, बढ़ै दोज ज्यों चंद ॥ ३३ ॥
मात पिता सौ पढ़न कौं, भेज दियौ चटसाल।
सब विद्या तिन सीखि कै, धारी उर गुन माल ॥ ३४ ॥
हेमराज पंडित बसै, तिसी आगरै ठाइ।
गरग गोत गुन आगलो, सब पूजै जिस पाय ॥ ३५ ॥
जिन आगम अनुसार तैं, भाषा प्रवचनसार।
पंच-अस्ति काया अपर, कीनें सुगम विचार ॥ ३६ ॥
उपजी ताकै देहजा, जैनी नाम विख्यात।
सील रूप गुन आगरी, प्रीति नीति की पाति ॥ ३७ ॥
दीनी विद्या जनक नैं कीनी अति वितपन्न।
पंडित जापै सीखलैं, धरनी तल मैं धन्न ॥ ३८ ॥

सवैय्या

सुगुन की खानि किधौं सुकृत की वानि।
सुभ कीरति की दानि अप कीरति कृपान है ॥
स्वारथ विधानि परमारथ की राजधानि।
रमाहू की रानी किधो जैनी जिनवान है ॥
धरम धरिनि भव भरम हरनि।
किधो असरन सरनि कि जन निज ज्ञान है।
हेम सौं उपनि सील सागर रसनि।
भनि दुरित दरनि सुर सरिता समान है ॥ ३९ ॥

दोहा

हेमराज तहां आनि कैं, नंदलाल गुन खानि।
सम समान वर देखि दी, पानिग्रहन विधि ठानि ॥ ४० ॥
तब सासू नैं प्रीति सौं मोती चौक पुराय।
लीनी गृह सुत नाम धरि, जैनुलदे इहि भाय ॥ ४१ ॥
नारि पुरुष सौं सौं रमैं, धारैं अन्तर पेम।
पूरब पुन्य फल भोग कैं, जैय सुलोचना जेम ॥ ४२ ॥

अल्प बुद्धि तिनकैं भयो, चूलचंद सुख खानि।
तहि जैनुसबे यौं चहै, ज्यौं प्रानी निज प्रान ॥ ४३ ॥
अन्नोदक संबंध तैं, आइ इन्द्रपथ थान।
मात पुत्र तिष्ठे सही, भनै सुनैं जिन वानि ॥ ४४ ॥
प्रथम रतन पंडित तहां, शास्त्र कला परवीन।
मूलचंद तिस हेत सौं, ज्ञान अंस कछु लीन ॥ ४५ ॥

कल्पलता माता सही, सुख करता सरवंग।
दुख हरता सौं यौं महा ज्यौं तम सविता अंसु ॥ ४६ ॥
सब सुख दै तिन यौं कही, सुनो पुत्र मो बात।
सुभ कारज तैं जग विषै, सुजस होइ विख्यात ॥ ४७ ॥
महापुरिष गुन गाइये, ताही तैं यह जानि।
दोइ लोक सुखदाय है, सुमति सुकीरति थान ॥ ४८ ॥
मुनि शुभचन्द्र प्रनीत है, कठिन अर्थ गंभीर।
जो पुरान पांडव महा, प्रगटैं पंडित धीर ॥ ४९ ॥
ता कौ ग्रन्थ विचारि कैं, भारत भाषा नाम।
कथा पाण्डु सुत पंच की, कीज्यौ बहु अभिराम ॥ ५० ॥
सुगम अर्थ श्रावक सबैं, भनै भनावैं जाहि।
ऐसो रचिकैं प्रथम ही, मोहि सुनावौ ताहि ॥ ५१ ॥
जननी के ए वचन सुनि, लीनैं सीस चढाइ।
रचिवे कौ उद्दिम कीयौ, धरि कैं मन वच काइ ॥ ५२ ॥
यह पुरान सागर कहा, मैं बालक मति आय।
तरिवे कौं साहस धरौ, सो सब हासमहाय ॥ ५३ ॥

चौपई

जे कवीस महा जिनसैनादि, वंदे पद तिनके हम आदि।
लह्यो पुन्य तहां तासो कथा, रचि हौं जिनवर भाषित यथा ॥ ५४ ॥
ज्यौं नर मूकौं बोल्यो चहै, सब जन ताकी हासी कहै।
त्यौं यह ग्रंथ करत परवान, भाजन मोहि हसन कौं जान ॥ ५५ ॥
चढ्यौ मेरु पै पंगुल चहै सब जग मैं यह हासी लहै।
यह पुरान आरंभत अबै, तैसैं मोहि हसैंगे सबै ॥ ५६ ॥

सकति हीन मैं ऐसी महा, तौ भी आरम्भ करन कौं गहा ।
छीन धेनु ज्यौं वच्छा हेत, दुग्ध दैन ज्यौं हित सौं देत ॥ ५७ ॥
रवि समान जे पूरब सूरि, तिन ह्वौ द्रव्य प्रकासे भूरि ।
तिन कौं दीपक सकति समान, क्यो न प्रकासै ज्योति प्रमान ॥ ५८ ॥
वक्र वाक कौं जे कवि भनै, तरु पलास वत जग मैं घनै ।
आम्र वृक्ष थोरे वन माँहि, त्यौं कवि उत्तिम जग बहुनांहि ॥ ५९ ॥
दोष कवित्त कौ नासैं जेइ, बिरले साधु जगत मैं तेइ ।
उज्जल कनक अगनि तैं यथा, निरमल कवित करे ते तथा ॥ ६० ॥
जे असंत हैं सहज सुभाइ, ते पर अर्थहि दूखैं आइ ।
ज्यौं दिन अंध लगावत दोष, देखन रवि कौं धारत रोष ॥ ६१ ॥
ज्यौं मदमंत धरै बहुखेद, हेयाहेय न जानैं भेद ।
त्यौं जग मैं नर खल जो होइ, सब ही कौं खल भाखै सोइ ॥ ६२ ॥
जलधर महिमा जग मैं कही, अंबुदान दै पोषत मही ।
त्यौं सब जनकौं सज्जन लोग, देहि सदा सुभ सिक्ष्या जोग ॥ ६३ ॥
संतासंत सुखासुख करै, सोम सर्प सम उपमा धरै ।
कोविद जन सब जानत एम, ता बीचार सौं हम कौ केम ॥ ६४ ॥
षट् प्रकार कहिये व्याख्यान, तिन मैं मंगल आदिहि जान ।
और निमित्त जु करैं कारन ठान, कर्त्ता फुनि अभिधान जु मान ॥ ६५ ॥
प्रथम ही मंगल या मैं कहा, जो जिनेन्द्र गुन गाए महा ।
जाकैं हेत जु करी ए ग्रंथ, सो निमित्त अघ हरन सुभ पंथ ॥ ६६ ॥
भव्य वृन्द कारन जग लीन, ज्यौं या मैं श्रेनिक परवीन ।
कर्त्ता मूल जिनेसुर मुनी, उत्तर कर्त्ता गौतम गुनी ॥ ६७ ॥
तातैं उत्तर और जु भये, विष्णुनंदि अपराजित ठये ।
भद्रबाहु गोवर्द्धन और, इन आदिक कर्त्ता सिर मौर ॥ ६८ ॥
अरथ विचार धरैं जो नाम, सोई नाम कह्यौ अभिराम ।
ज्यौं पुरान यह पांडव सही, पुरु पुरुषन की महिमा कही ॥ ६९ ॥
नाम भेद अब सुनीये सही, अर्थ गनत की संख्या नहीं ।
पद अक्षर की संख्या कही, मान भेद तुम जानौं यही ॥ ७० ॥
षट प्रकार यह भेद विचार, सुभ वखान करिए बुधि धार ।
पंच भेद बरनैं फुनि और, द्रव्य खेत्र आदिक तिहि ठौर ॥ ७१ ॥

दोहा

इहि विधि सर्वं विचारि कै, बरनै गुनी पुरान ।
वक्ता श्रोता मरु कथा, सुभ लक्षण पहिचानि ॥ ७२ ॥

प्रथम वक्ता वरणन

दोहा

भव्य क्षमी सुंदर गुनी, सुचि रुचिवंत प्रवीन ।
न्यायवान नैयायिकी सीलवान सुकुलीन ॥ ७३ ॥
व्रतधारक वत्सल महा, अरु पंडित बहु होइ ।
लछिमीवंत सुसंत चित, उत्तिम वक्ता सोइ ॥ ७४ ॥

उक्तं च श्रावकाचार भाषायां

सवैय्या ३१

विद्वत सुव्रत्तवान सुन्दर सुबैनवान
धारत प्रगल्भता जु इंगितग्य जानीये ।
प्रश्न मैं न क्षोभ करै लोक को विज्ञान धरै
ख्याति पूजा मांहि निर इच्छक बखानिये ।
भाषै मित अभिधान दया ही की होइ खानि
अल्पश्रुत उद्धतानसु पृथता ठानीये ।
बर्णंत अकन सिष्य चाहिये सुबरणं सुक्ष
एते गुन आगम तैं वक्तहि प्रमानीये ॥ ७५ ॥

अथ श्रोता वर्णनं

दोहा

सीलवंत सुभ दर्शनी सुभ लक्षण श्रीमान ।
सदाचार वर भक महा, चतुर चतुर गुनवान ॥ ७६ ॥
व्रती सुदाता भोगता दक्ष सुपूरन अक्ष ।
हेयाहेय विचार कर थिर थापै जिन पक्ष ॥ ७७ ॥
प्रतिपालक गुरु बचन को, सावधान प्रधान ।
क्रियावंत धरमातमा, मानिनीक विद्वान ॥ ७८ ॥
सुनि अवधारे यह रहै विमल चित्त विनयज्ञ ।
त्यागी हास कषाय की सो श्रोता सुभ तज्ञ ॥ ७९ ॥
कहे सुभासुभ भेद करि, श्रोता बहुत प्रकार ।
हंस धेनु ए श्रेष्ठ है, मध्यम माटी सार ॥ ८० ॥

उक्तं च श्रावकाचार भाषायां

सवैय्या ३१

मृतिका महिष हंस स चालिनी मसक कंक
मारजार सुवा भज सर्प सिला पसु है।
जलूका सछिद्र कुंभ इम के सुभाव ही तैं
सुधा सुभ श्रोता जानि कहे धारिदसु है।
सम्यक विचारि इहै सुरस्वाभाव धारै उदद
भादर विशेष करि छिमा सौं सरसु है।
भक्त गुरु भीरु भव जैन बैन धारन को
पारायन श्रोता गुन मृति पसू हंसु है ॥ ८१ ॥

दोहा

दीर्घ जो उपदेस सुभ, स इन श्रोता मुग्ध।
ज्यों कच्च फूटे घडे, रहै न राख्यौ दुग्ध ॥८२॥
सब श्रोता हिरदै धरै, गुरु उपदेसी जोइ।
बोयौ बीज सुभूमि ज्यौं, भूरि गुनौं फल होइ ॥८३॥

अथ कथा लक्षणं

दोहा

कथन रूप कहीए कथा, सो है दोइ प्रकार।
सुकथा जो जिन कही, विकथा और असार ॥८४॥
चरम सरीरी जे महा, तिनके चरित विचित्त।
पुन्य हेत जहाँ वर्णीयै, सो है कथा पवित्र ॥८५॥
पुन्य पाप फल वर्णीयै, वरनै व्रत तप दान।
द्रव्य क्षेत्र पुनि तीर्थ सुभ, अरु संवेग बखान ॥८६॥
जो स्व तत्व कौं थापि कैं, दूरि करै पर तत्व।
ज्ञान कथा सो जानिये, जहां बरनैं एकत्व ॥८७॥
गुन पूरन सम्यक्त, सुभ बोध वृत्त संयुक्त।
नाना विधि सी वर्णीयै, यह जिन भाषित उक्त ॥८८॥

उक्तं च श्रावकाचार भाषायां

सवैया ३१

जीवा जीव आदि तत्व सम्यक निरूपै अर्थ
देह भव भोगन मांहि वर्णे निरवेद कौं।
दान पूजा सील तप देसै विसतार करि
बंध मोख हेतु फल भिन्न भनै भेद कौं।
स्यात अस्ति आदि नय सात जे विख्यात
अरु भाखै प्रान दया हित हिंसा के उछेद कौं।
अंगी सरवंग संग त्यागैं होइ सिद्ध अंग
सत्य कथा कथा एई नासैं भव खेद कौं ॥८६॥

दोहा

रिषि वशिष्ट सुक व्यास अरु, द्वीपायन इन आदि।
तिन करि भाषित कथन जो, सो विकथा बकवादि ॥९०॥
द्रव्य क्षेत्र अरु तीर्थ शुभ, काल भाव फल और।
प्रकृत सप्त ए अंग हैं, मुख्य कथा की ठौर ॥९१॥
ऐसी विधि यह बरन कै, कहियत है अब सोइ।
जो पुरान पावन पुरुष, भारत नामा जोइ ॥९२॥

महावीर भगवान का जीवन

चौपाई

जंबूद्वीप अनूपम लसै, पंडित जन बहु जामैं बसैं।
भरत खेत अति सोभित मही, आरज खंड सुमंडित यही ॥९३॥
देस विदेह विराजै जहाँ, सुर सम नर बहु उपजै तहाँ।
सिद्धारथ नामा तहाँ भूप, नाथ वंस अवतार अनूप ॥९४॥
सरव अर्थ की जाकै सिद्धि, बरतैं नौ निधि आठौ रिधि।
त्रिसला रानी ताके गेह, रूपसील बहु सुन्दर देह ॥९५॥
चेटक भूधर गिरि सम जान, तहाँ उपजी सुर सरित समान।
सो सिद्धारथ सागर मिली, प्रीति कारिनी गुन सौं रली ॥९६॥
प्रथमहिं जाके तट छह मास, सेव करी सुर कन्या तास।
रतन वृष्टि जाकै घर भई, धनद देव नै आपुन ठई ॥९७॥

रैन पाछिली सोवत सही, सोलह सुपनै देखे तहीं ।
गज गो हरि श्री माला दोइ, चंद सूर झष जुग घट लोइ ।।९८।।
कुंभ जुगम सरवर सुभ जानि, सागर अरु सिंघासन मानि ।
व्योम जान अहि पृथिवी तना, मणि राशागनि धूमें बिना ।।९९।।
ए सुपने सुभ देखत भई, जागि उठी तब प्रभु पै गई ।
हाथ जोरि फल पूछयो जबै, उत्तर सब नृप भाख्यो तबै ।।१००।।
पुष्पोत्तर तैं चइ कै देव, ताकै गर्भजु तिष्ठयो एव ।
सुदि असाढ छठि गज नछत्र, कीनो गर्भ कल्यानक तत्र ।।१०१।।
चैत त्रयोदसिसुदि के दिना, जनम कल्यानक सुरपति ठना ।
वर्द्धमान यह प्रगटयो नाम, व्याप्त जाकै जग मैं धाम ।।१०२।।
तीस बरष के भये कुमार, सुभ तरुनापो धार्‌यो सार ।
किंचित कारन तब ही पाय, चित वैराग धर्‌यो अधिकाय ।।१०३।।
सब कुटंब कौं पूछे नहीं, ... जिनेश्वर सही ।
लोकांतिक सुर तौ लौं नये, थुति करि कैं सुर्लोकहिं गये ।।१०४।।
तब सुरपति सुरगन सह आइ, जिन पद बंदे मस्तक नाइ ।
पुनि न्हवाय भूषन पहिराय, सुरगन भगति करी अधिकाय ।।१०५।।
चंदप्रभा सिबिका सु अनूप, चित्र विचित्रित नाना रूप ।
तापै चढि पुर बाहिर गये, परिगह त्यागि दिगंबर भये ।।१०६।।
हस्तरिख मृगसिर बदि दसैं, साझ समैं जिन दीक्षा लसैं ।
षष्टम धार्‌यो मन कौं सोध, मनपर्यय तब उपज्यो बोध ।।१०७।।
पारन पाइ फिरे भू मांहि, मौंन रहे जिन बोले नांहि ।
बारह बरष बितीते सबै, जृंभक ग्राम पहुंचे तबै ।।१०८।।
तहां रजूकूला सरिता तीर, साल वृछ तल बैठे धीर ।
श्रेणी क्षपक चढ़े जिनराय, घाति करम घाते अधिकाय ।।१०९।।
तब ही केवल उपज्यों तास, सकल लोक प्रति भासत जास ।
सोभित समोवसरन जिनराय, गिरि वैभार पहूचे आय ।।११०।।
तरु असोक धुनि दिव्य बखांन, छत्र सिंघासन चामर जान ।
पुहप वृष्टि भामंडल सजै, घन सम घोर सुदुंदुभि बजैं ।।१११।।
सुरपति आगुन ल्याये जिसैं, गौतमादि ले गनधर लसैं ।
मगध देस तहां सोभावंत, निवसैं सुरसम नर जहां संत ।।११२।।

राज भवन पुर अतिसम तहीं, सर्व नगर मैं राजा वहीं।
भूतल भूषन मानौं भहै, बहु मंदिर करि सोभा लहै ॥११३॥

राजा श्रेणिक वर्णन

श्रेनिक भूपति है ता ठौर, नृप गन मैं गनिये सिरमौर।
सम्यक दृष्टि चित्त गम्भीर, परम प्रतापी धीर सुवीर ॥११४॥
प्रिय चेलिनी जाकै गेह, आये जिन तिन जान्यौ एह।
आदिनाथ अयोध्यापुरि ठये, भरत आदि ज्यौं बंदन गये ॥११५॥
त्यौंहि श्रेनिक भूपति चल्यौ, दल चतुरंग सुसाथै रल्यौ।
हिन हिनात हय करते चले, गय मयमत्त सुगरजत भले ॥११६॥
नाना भांति अरथ सौं भरे, ऐसे रथ सारथि अनुसरे।
भटगन निरतत अति ही चलैं, बाजे बजहि मधुर धुनि रलैं ॥११७॥
गावैं जश बहु चारन भाट, ता श्रेनिक कौं चलतैं बाट।
चलत राय सो पहुँचे तहां, समवसरन सुर राजै जहां ॥११८॥
गज ऊपर तैं उतरे तबैं, चमर छत्र तजि दीने सबैं।
सिंघपीठ परि जिनि थिति करैं, छत्र तीनि सिर सोभा धरैं ॥११६॥
चाह चतुर मुख च्यारौं दिसा, रवि सम ते जिनवर है तिसा।
सुर नर खग पति जाकौं नमैं, तीनौं भुवन पसंसा धमैं ॥१२०॥
आठौं अंग मही सौं लाइ, नमन कीयौ धरि मन वच काइ।
पूजा करि थुति करै अनूप, सब विधि पूरन श्रेनिक भूप ॥१२१॥

श्रेणिक द्वारा महावीर की स्तुति

दोहा

स्तुति जानिस्तोतारस्तुति, स्तुति फल फुनि अवलोइ।
थुति आरंभी वीर की, मन वच काय संजोइ ॥१२२॥

चौपाई

तुम भगवंत भुवन पति सही, तुम थुति कौ क्षम कोउ नहीं।
सुरपति सम भी अक्षम भये, तुम गुन अंत न काहू लये ॥१२३॥

गित रहित चिनमय चिद्रूप, इन्द्रिय वर्जित निर्मल रूप ।
गंध विवर्जित ग्यायक गंध, वेता रूप अनूप अबंध ॥१२४॥
ह्वं नीरस अद्भुत रस ठर्यो, तुम तरुनायें रति पति हर्यो ।
बालक क्रीड़ा कीनी जहां, देव नाग ह्वं आये तहां ॥१२५॥
तिनकों जीति असि अभिराम, वीरनाथ यह पायो नाम ।
बाल खेल तुम करतें तहीं, मुनि जुग नभतें आये सही ॥१२६॥
तुम देखत तिन संसै हर्यो, सनमति नाम तुम्हारो धर्यो ।
ग्यानादिक गुण बढ़ते रहे, वर्द्धमान तुम तातैं कहे ॥१२७॥

महावीर की दिव्य ध्वनि

ऐसे श्रुति करि बैठो राय, सभा मांहि नर कोठै ठाय ।
तौलौं बानी जिनवर तनी, होन लगी बहुगुन सौं सनी ॥१२८॥
तालु अधर गल हालै नांहि, और अनछर गुन जिस मांहि ।
धर्म विषैं मति धारी भूप, इं विधि सो करता रस कूप ॥१२९॥
तजि गोचर अघ श्रावक तना, आदि धर्म निरग्रंथै ठना ।
ध्यान गुन जप तप को थान, ऐसो पद निरग्रंथ जानि ॥१३०॥
ग्रह गोचर सुनि दूजो धर्म, दान सील तप साधै कर्म ।
नाक तनैं सुख सोई लहै, सील सहित श्रावक व्रत गहै ॥१३१॥
आहारादि चतुर्विध दान, त्रिविधि सुपत्तहि देहि सुजान ।
भोगभूमि फल यासौं लहै, फुनि जिन भावन भावत रहै ॥१३२॥
निज स्वरूप चिद्रूप विचार, हृदय शुद्ध करि भावैं धार ।
यही भावना जानों सही, जति श्रावक दोनों को कही ॥१३३॥

दोहा

ऐसी विधि सौं धर्म सब सुनिकैं श्रेनिक राय ।
गमन कीयो निज सदन को, वंदे जिनवर पाय ॥१३४॥

चौपई

नृप गन करि सो सेवित महा, पहुंच्यो पुर नृप मंदिर जहां ।
रमहि सुरानी चेलिन संग, ज्यों रति साथ रमत अनंग ॥१३५॥

चार्द थिस करि थिरत रहै, जिन वच मावन हिरदै लहै ।
निरधन जन कौं दान सुदेत, सिद्धि अरथ सुभ माता हेत ॥१३६॥
वीर नाथ मुनि दिव्य सथान, देत चले भविजन कौं दान ।
करयौ सुरस्वामी देस बिहार, जानौ सुरपति [illegible] ॥१३७॥

विभिन्न प्रदेशों में महावीर का विहार

अंग बंग कुर जंगल ठए, कौसल और कलिंगे गये ।
महाराठ सोरठ कसमीर, पगा और कोकण गंभीर ॥१३८॥
मेदपाट भोटक करनाट, करहाँ कोस मालवं वैराट ।
इन आदिक से आरज देस, तहां जिन नाथ कीयौ परवेस ॥१३९॥
भव्य रासि संबोधत वीर, देस मगध फुनि आये धीर ।
गिरि वैभार विभूषित भयौ, मानो रवि उदयाचल ठयौ ॥१४०॥

मगध नरेश द्वारा महावीर वन्दना

जिन विभूत लखि अकथ अपार, विसमयवंत भयौ वन पार ।
नृप मंदिर सोवत ही जाइ, जहाँ सिंघासन बैठे राइ ॥१४१॥
स्वेत छत्र छवि रवि आताप, दूरि करैं सब टारैं पाप ।
मुकट मयूख मभस्थल गई, इन्द्र धनुष रचि सोभा ठई ॥१४२॥
सूर चंद सम कुंडल धर्यां, रतन जडित अति सोभित धर्यां ।
हार मनोहर गल मैं लसैं, किरनौं करि उडगन कौं हसैं ॥१४३॥
दीरघ दिढ भुज बाजूबंध, अरु करकट कहरै तम संध ।
भेट अनेक जु आवैं लेइ, तिन पै हित सौं लोचन देइ ॥१४४॥
दंत मरीचि अधिक ही धरैं, तिन कर भूतल उजल करैं ।
मागध गुन गावैं संगीत, तिन कौं सुनि करि धारैं प्रीति ॥१४५॥
नृप कुलीन बहु थुति कौं करैं, वर कृपान कर सोभा धरैं ।
जान दीयौ दरवानौं जवैं, ऐसो भूपति देख्यौ तवैं ॥१४६॥
नमस्कार करि तहां वन पाल, कीनीं विनती सुनि भूपाल ।
नाथ वंस मैं उपजे जोइ, वीर नाथ जिन आये सोइ ॥१४७॥
गिरि वैभार विभूषित कीयौ, फुनि भूमंडल अचिरज कीयौ ।
महावाधनी करुना ठानि, कौ मृग छीवैं निज सुत जानि ॥१४८॥

मारजार अरु मूषक रमैं, नागन कुल इक जागे पमैं।
गज अरि शावक अरु मृगराइ, खेलें आपस मैं अधिकाइ ॥१४९॥

सूके सर बहु जल सौं भरे, कोक मराल सबद तहां करे।
झुक डाल फल फूलैं झूमि, जैसी जिन पद मानौं चूमि ॥१५०॥

तिस प्रभाव वन अचिरज भर्यौ, सब रितु के फल फूलौं भर्यौ।
यह अचिरज मैं देख्यो राय, तिनकी भेंट करी मैं आय ॥१५१॥

दोहा

वचन सुनें वनपाल के, हरख्यौ चित अति भूप।
तृषावंत ज्यौं नर लहै, लखि कैं अमृत कूप ॥१५२॥

अडिल्ल

सार विस वन पालहिं राजा धाइ कैं।
सात पैंड उठि प्रणाम्यौं जिन दिस जाइ कैं।
जा प्रसाद चित परमानन्द अनंदिए।
ऐसे चरन कमल जुग जिन के वंदिए ॥१५३॥

वर्द्धमान गुन खान गुनी गुनपाल है।
धर्मवंत व्रत वंत सुसंत दयाल है।
सुजस सदा जग राइ जाई जिन वंदए।
नमस्कार कर जोरि जिनुलदे वंदए ॥१५४॥

इति श्रीमन्महाशीलाभरणभूषित जैनी नामांकितायां लाला बुलाकीदास विरचितायां भारत भाषायां श्रेणिक जिन वंदनोत्साह वर्णनो नाम प्रथमः प्रभवः।

卐

अथ अनंत जिन स्तुति

दोहा

भव अनंत यह जलनिधी, ताको है वर सेतु ।
जिन अनंत गुण अंत नहिं, बंदौ शिव सुख हेतु ।।१।।
एक समय बिरकत बिदूर, भये विषय सुख माहि ।
छिन भंगुर संसार मैं, जाण्यौ थिर कछु नाहि ।।२।।
विदुर चतुर चिंतवत, (चित) धिग संपय धिग राज ।
धिग प्रभुता धिग भोगए, सब अनर्थ के काज ।।३।।
जाके कारन जनक कौं, हतै पुत्र धरि क्रोध ।
कहूंक सुत कौं मारई, पिता पाइ दुरबोध ।।४।।
हनत मित्र कौं मित्र ही, बंधु बंधु को मारि ।
भव सुख कारन जीवए, करत काज अविचार ।।५।।
ए कौरव अति दुरमती, महा करम चंडाल ।
इन कौं मरतैं रण विषै, लख्यौ न चाहूं हाल ।।६।।
यौं बिचारि कौरवन सौं, कहि करि वन मैं जाइ ।
विश्वकीर्ति कौं नमन करि, सुनत धर्म धरि भाइ ।।७।।
भए दिगम्बर संजमी, अंबर तन तैं त्यागि ।
बाह्याभ्यंतर तप चरन, परम तत्व चित लागि ।।८।।
एक समैं कौइक महा, सार्थवाह परवीन ।
राजग्रही पुरि ईसकी, भेंटि रतन बहु कीन ।।९।।

पूछौ ताहि नरिंद नैं, कहा तैं आयौ भाइ।
कह्यौ कि द्वारा नगर, तैं तुम देखन कौ राइ ॥१०॥

फुनि पूछयौ उन नगर कौ, कौन नाम है भूप।
तिन भाख्यौ बैंकुठ बल, नेमि नृपति जिन भूप ॥११॥

जादव निवसे सुनत हीं, जरासंध ह्वै क्रुद्ध।
जलधि हल्यौ मनु प्रलय कौ, चल्यौ करन कौ जुद्ध ॥१२॥

जुद्ध चहत बिन हेतु ही, ऐसे नारद आइ।
जरासंध कौ छोम सब, हरि सौं कह्यौ बनाइ ॥१३॥

नेमि निकट फिरि जाइ कैं, आगै ठाढ़ौ होइ।
पूछौ अरि सौं जीति हौं, सत्य कहौ तुम सोइ ॥१४॥

नेमनाथ मुसकाइ कैं, निरख्यौ हरि की ओर।
तब अपनी जय जांनि कैं, विष्णु चढ्यौ दल जोर ॥१५॥

बल हरि कैं संग नृप चढे, समुदविजै वसुदेव।
अनावृष्टि अरु धर्मसुत, भीम सु अर्जुन एव ॥१६॥

धृष्टद्युम्न प्रद्यम्न जय, सत्यकिसारण संबु।
भूरिश्रवा सहदेव अरु, भोज स्वर्ण गर्भंबु ॥१७॥

द्रुपद वज्र अक्षोभ विदु, सिखीपती पौंडरीक।
नागद नकुल सुकपिल कुरु, छेम धूर्त्त वाल्हीक ॥१८॥

महानेमि दुर्मुख निषध, विजय पद्मरथ भानु।
चारु कृष्णा उन्मुख जवन, फुनि कृतवर्मा जान ॥१९॥

नृप शिखंडि बैराट नृपति, सोमदत्त इन आदि।
जादव पक्षी नृप महा, चढे जुद्ध कौं सादि ॥२०॥

जरासंध कौ दूत तब, दुरजोधन तट जाइ।
नमसकार करि बीनयौ, सुनौ चक्रि अधराइ ॥२१॥

दुर्द्धर मार्‌यौ कंस जिन, चक्रिसुता पति सूर।
मुष्टि घात तैं चूरियौ, मल्ल बलीचानूर ॥२२॥

करिहि धर्‌यौ गोबर्द्ध गिरि, महि मर्दक गोपाल।
प्रगट भयौ सौ भूविषै, चारत मद सविसाल ॥२३॥

जे जादव रण तैं टरें, जरे अगिन मैं जाइ ।
ते अब सुनीयें जीव तैं, बसे जलधि मद्धि जाइ ॥२४॥

रतन भेट करि वैश्य नै, कह्यौ चक्रि प्रति एम ।
राजा महा जादव करत, द्वारिकपुर मम हेम ॥२५॥

जादव पांडव द्वारिका, बसत सुनें चक्रीस ।
महाक्रुद्ध ह्वै नृपनपै, पठए दूत अधीस ॥२६॥

नृप [illegible] जे पुरुष [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।
एक बरस मैं भूप सब, मिले तहां गुन रास ॥२७॥

तातैं हे कौरवपती, सो तट पठयौ मोहि ।
चक्रवत्ति प्रति प्रति तैं, अबहि बुलावत तोहि ॥२८॥

विविधि वाहिनी आपनी, सारी साजि सुकच्छ ।
तुम प्रति चक्री यौं कह्यौ, आवहु मो तट बच्छ ॥२९॥

सोरठा

सुनत भयो रोमांच, मागध कौं आदेस यह ।
पूज्यौ दूत सु संच, वसना भूषण दर्वतैं ॥३०॥

जो मो मन थी इष्ट, सोई चक्री अब ठनी ।
ह्वै सबहि विसिष्ट, निज चित यौ चिरचिंतयौ ॥३१॥

सवैया २३

सुरन मैं वर सूर दुर्जोधन, ताहि समैं रण भेरि दिवाई ।
जाकी महा धुनि व्याप्त भू, नभ छोभ भयो चहुं सागर ताई ।
वीरन के तन रोम जगाइ, सुजुंभन कौं चित चौंप लगाई ।
कादर कंपत काइ महा, भय खाइ सुभौंन के कौन धसाई ॥३२॥

सज्जि चली चतुरंग चमू वय, मत्त मतंग महा निकसेई ।
सागर सैं नहि मद्धि धसे रथ, सारथि सौं महमी नक सेई ॥
चंचल चाल चलैं चल चामर, चारु तुरी सुन जीत कसेई ।
सत्रुन के प्रसबे की सुदोरहि, सुरपयादल की नक सेई ॥३३॥

दोहरा

कौरव दल दलमलि धरनि, छाई रेनु अकास ।
दुख कहिये कौं भूमि मनु, चली इन्द्र के पास ।।३४।
क्रम तैं कौरव वाहिनी, मिली चक्रि दल संग ।
सब तैं अधिक समुद्र कौं, आइ रली मनु गंग ।।३५।।
दुरजोधन कौं मान बहु, राख्यौ मागध राइ ।
कर्ण मिल्यौ यौं कौरवहि, ज्यौं रवि किरण रलाइ ।।३६।।
तब पठयौ चक्रीस नैं, दूत यादवनि पासि ।
तुरित जाइ सौं बीनयौ, सब सौं बचन प्रकासि ।।३७।।
भो जादव तुम पै करत, आज्ञा यह चक्रेश ।
जाइ बसे किम जलधि तुम, तजि कै अपनौ देश ।।३८।।
समुदविजै बसुदेव ए, हम प्रीतम हैं आदि ।
वांचि आपको किहि लयैं, गए सुछिपि कै बादि ।।३९।।
चरन जुगल चक्रीस के, सोमोह अब तजि गर्व ।
जा प्रसाद तैं तुम लहौ, राज पाट सुख सर्व ।।४०।।
ऐसौ सुनि कँवल बली, बोल्यौ क्रोधित होइ ।
हरि कौ तजि या भू विषै, चक्री और न कोइ ।।४१।।
ऐसी सुनि फरकत अधर, दूत भनैं इंहि भाइ ।
जातैं तुम सागर विषैं, जाय छिपे भय लाइ ।।४२।।
तिस पद पंकज सेव तैं, कहीयत कौन सुदोष ।
आवत हैं तुम पै चढ्यौ, मगध राइ धरि रोष ।।४३।।
ग्यारह छोहिनि दल सहित, मुकट-बद्ध नृप संग ।
आवत ही तुम गर्व कौ, करै छिनक मैं भंग ।।४४।।
बच कठोर सुनि दूत के, बोले पांडव ताहि ।
मन इंछत मुख बकत है, मारि निकासौ याहि ।।४५।।
यौं सुनि निकस्यौ दूत तब, आयौ चक्री तीर ।
बलवतता जादवनि की, बरनी अधिकहि धीर ।।४६।।

सोरठा

अहो देवते जादवा, महा गर्व ग्रह ग्रस्त ।
तुम कौं रंचन मांनई, ज्यौं मदिरा मद मस्त ॥४७॥

असे वचन सुनि खचर, रण दुंदुभि अजाय ।
चलिवे कौं उदित भये, संग लए सब राइ ॥४८॥

दीपशिखंत विमान बहु, बैठि चले खग भूप ।
रवि पंकति मनु गगन में, धाई उमडि अनूप ॥४९॥

बहु नरिंद भूधर महा, भूमि चले मनु चंद ।
उडगन सम दुति वंत अति, संग सजैं भट वृंद ॥५०॥

द्रोण भीष्म जयद्रथ रुकम, अश्वथाम पुनि कर्ण ।
सल्य चित्र वृषसेन नृप, कृष्णवर्म सुन वर्ण ॥५१॥

इन्द्रसैन अरु रुधिर भी, दुर्जोधन दुःसास ।
दुर्मष दुर्द्धर्ष इन प्रभृत, चली नृपन की रासि ॥५२॥

पगतैं भूकंपन करत, आए सब कुरु खेत ।
तजिकै ममता जीव की, कर्यौ मरनसौं हेत ॥५३॥

केईक नृप सुनि बात यह, जजत भये जिनदेव ।
केईक गुरु तट जाइ कैं, लए अनुव्रत एव ॥५४॥

केइक नरपति यौं कहत, तजीए गृह सुत दार ।
कर मैं लीजे तीछन असि, कीजे अरि संघार ॥५५॥

केइक निज निज भृत्य प्रति, कहत भये नर राइ ।
चापहुं पनिच चढाईये, गज गन सजौह बनाइ ॥५६॥

जीन सजौ बाजीनि पैं, भुंजौ भोजन मिष्ट ।
अश्व रथन सौं जूजीये, दीजो वित्त विशिष्ट ॥५७॥

इह विधि भाषत सैन मैं, गजि गजि के राइ ।
निज निज आयुद्ध कर लीये, चमकावत अधिकाइ ॥५८॥

केई फिरावत कुंत कर, गदा उछारत खंचि ।
कोई तीर चलाव ही, रंचि निशाना संधि ॥५९॥

केईक सुरसभा विषै, सरल मरन की बात।
अपने ही मुख मान सौं, भाषण हैं बहु भांति ॥६०॥
तौ लौ हरि कौ दूत तहाँ, गयौ करन के तीर।
नति करि भगतिहि बीनयौ, मो बच सुनिये धीर ॥६१॥
जुगति होई सौ कीजिए, सुनौं सक्ति अवनीस।
जिन भाषति नहिं अन्यथा, कौं है हरि चक्रीस ॥६२॥
कुरु जांगल सुभ देश कौ, सकल राजा तुम लेहु।
पांडु पुत्र कुन्ता जनित, मानहु मो वच एहु ॥६३॥
भ्रात पञ्च पांडव जहाँ, तहाँ आयौ तुम वीर।
वचन दूत के सुनत इम, बोल्यौ करण सुधीर ॥६४॥
अब हम आवन जुगत नहिं, न्याय उलंघहि केम।
राजा रन के सनमुखैं, नीति न त्यागत एव ॥६५॥
सेवित नृप कौ रन विषैं, मरयन मुञ्चै कोइ।
जो मुञ्चै तो अध लहै, अपजस जग मैं होइ ॥६६॥
निहचै सेतै गर पछै, पाण्डव राज छिनाइ।
दै हौ नृप पद कौरवहिं, यही कहौ तुम जाइ ॥६७॥
यौ सुनि निकस्यौ दूत तब, गयौ तहाँ सुविचार।
जहाँ चक्री कौरव सहित, बैठे सभा मझार ॥६८॥
नति करिकैं यौ बीनयौ, सुनौं चक्रि तुम बात।
सन्धि करौ जादवन सौं, और भांति नहि सांति ॥६९॥
सांधि सहित सुनि जिन उकति, केशव तैं तुम मति।
गंगा सुत कौ नाश है, नृप सिखंडितैं सति ॥७०॥
धृष्टार्जुन के हाथ तैं, मरण द्रोण कौ जान।
धरम पुत्र तैं मृत्यु है, सल्य तनी परवान ॥७१॥
दुरजोधन की पञ्चता, भीमसेन तैं गन्य।
जयद्रथ पारथ हाथ तैं, कारन सुत अभिमन्यु ॥७२॥
कुरु पुत्रन कौ मृत कही, जानहु मागध राइ।
निहचै तैं यह जिन कथित, हम जानत है भाइ ॥७३॥

यौं कहि निकस्यौ दूत सो, द्वारापुर मैं आइ।
नमस्कार करि हरि प्रतैं, कह्यौ कि सुनिये राइ ॥७४॥
भाई तिनकी वाहनी, कुरु खेतहि है देव।
जुद्ध विषै संकट भये, क्यों न आवत एव ॥७५॥
तुम कुं प्रभु गंतव्य है, तुरितहि अब कुरु खेत।
सत्रुन सौं जोधव्य है, जुद्ध विषै जय हेत ॥७६॥

सोरठा

ऐसी सुनि हरि सूर रण कौ उद्दित चित्त भये।
पांच जन्य को पूरि सु अम्बर धुनितैं सुन्यौ ॥७७॥
सुनत सज्ज को साजि सैना केसव की चली।
कुरुखेतहि गन काज, राजन हर्ष तनु भयौ ॥७८॥

सवैया २३

माधव की चतुरंग चमु चल तैं चल चाल लई अचलाई।
मानहुं मेटि दई पगतैं दरि रैनु भई सु अकासहि धाई।
कै अकुलाई के भार परें भय भीरू भयें सुर लोकहिं धाई।
कैं उमही अरि जारन कौ परताप दवानल धूम महाई ॥७९॥

अथ चतुरंग चमुं वर्णनं

— प्रथम गज वर्णनं —

मत्त मयंद झरैं मद नीरहिं स्याम मनौं घन काल घटाई।
सेतु सुकेतु लसैं तिनपैं बग पंकति की परसी उपमाई ॥
कंचन की चमकैं चहुं ओर बनी चउरासि किधौं चपलाई।
घेरि चले हरि रूप धरैं मनु मेटन कौं अरि ग्रीषमताई ॥८०॥

— अथ रथ वर्णनं —

सागर छार अपार चमुं भरि तारन कौं रथ पोत सहाई।
बज्जमई अर चक्र धरैं अथ अश्व चलैं मनु पौन बहाई ॥

उन्नत केतु [illegible] पटु डोलहिं [illegible] जि ता रथ की गति पाई ।
[illegible] पंच [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥८१॥

— अथ अश्व वर्णनं —

चञ्चल चाल चलैं चल चामर, चारु तुरंगम अंग सुहाए ।
किंकिनि हार गरैं अप पाखर तापर कंचन जीन कसाए ॥
मारू बजैं तजि नीद नचैं परचैं नही जमके नटवाए ।
पौन के पूत किधौं बड़वा सुत सत्रु समुद्रहि सोखन धाए ॥८२॥

— अथ पदाति वर्णन —

स्यांग सु कौच कसी दिढलाइ, किधौं तन पैं घन की छवि छाया ।
सूर पयादल ढाल विसाल महा करवाल लयें कर धाए ॥
कांधं कमान कटारि छुरी सर कोस सु खैंचि कटिकाए ।
दुरजन के दल वारन कौं मनु दौरि चले जम पुत्र महाए ॥८३॥

दोहा

ऐसी विधि चतुरंग दल, लीनें जादव राई ।
आइ ठये कुरखेत तट, महा उदय कौं पाइ ॥८४॥
दुनिमित्त तब बहु भये, जरासंधि की सैन ।
दुख के सूचक प्रगट हीं महा अजस के दैन ॥८५॥
भयो राहुतें रवि गहन, गगन मांहि भयदाई ।
वरस्यौ बारिद बिन समैं, दीनी सैन बहाई ॥८६॥
प्रात हीं काग भुजान पैं, रवि सनमुख एडन्सि ।
गृद्ध फूद्ध छत्रादि पैं, बैठे नखनि खनन्ति ॥ ८७ ॥
भू कम्पन अनहद रुदन, मार मार धुनि वाइ ।
बार–बार उलका पतन, रुधिर विष्टि दिगदाह ॥८८॥
कुसुगन लखि कौरव पति, मन्त्रि प्रतैं यौ भाखि ।
दुनिमित्त है मन्त्रिपति, लखीयत है बहु आंखि ॥८९॥
मंत्रि कहै भो प्रभु कहौं, नाहि सुनी तुम बात ।
गिलि है सबहि तिमिंगि ज्यौं, यह कुरखेत विख्यात ॥९०॥

सरिता रुधिर प्रवाह की, बहि है या भू माहि।
तामैं स्नान करे बिनां, रहि है कोऊ नांहि ॥९१॥

राछस भूत पिचास गन, चाहत बलि नर मांस।
तिनके तिरपत कारनैं, मरि है बहु भट रासि ॥९२॥

मुंडि फिकारत राछसी, फिरत करत आकास।
राजनि की बनिता घनी, ह्वै है बिधवा भास ॥९३॥

गिद्ध स्याल मंडरात अति, आत पात्र कै भाल।
होइ धरनि लोथनि भई, प्रगट बरुन बिकराल ॥९४॥

जरि है आयुध अगनि तैं, कौरव वंश विसाल।
यौं भाषत दिग दाह यह, राज पाल भूचाल ॥९५॥

कुत्सित रन कौ खेत है, यह कुरु खेत कुखेत।
रुदन करत अनहद असह. कौरव नासन हेत ॥९६॥

फुनि दुरजोधन यौं कह्यौ, कहो मंत्रि मो इष्ट।
कितनी है अरि बाहिनी, कितने भट हम सिष्ट ॥९७॥

सो बोल्यौ सुनिये नृपति, जे भूपति बल जोर।
दक्षिनबासी ते सबै, भये विष्णु की ओर ॥९८॥

सवैया २३

है बहुतौ करि सिद्धि कहा, प्रभु काइर स्यारन सूरनि मारैं।
एक धनंजयतैं सब भूपति; ए रण मैं न बराबर सारैं॥
कोई समर्थ निबारन कौं नहि, जा हरि सौं असुरादिक हारैं।
और हली हल मूसल धारत, जास नसैं अरि ह्वै भय भारैं ॥९९॥
विद्य सुप्रग्य यती प्रमुखा, जिस सिद्धि भई अरिनासक सारी।
मार कुमारि सु ताहि निबारण, कौ रण मै नहि सैन हमारी॥
पावनि पावन सत्रु बिनासन, भूपरि भूप भुजाबल भारी।
मोहि न दीसत कोइ बली, तुम ता समहा बल को अपहारी ॥१००॥

दोहरा

सात अक्षोहिनि बल सहित, भूपति बली प्रसस्त ।
तिनकौ पाइ सहाइ हरि, सब अरि करे निरस्त ।।१०१।।
एकादसहि अक्षोहिनी, दल दुरबल हम साथ ।
कहा होत बहुते भये, जो न बली हूं नाथ ।।१०२।।
ऐसी सुनि दुरजोध नृप, कह्यौ चक्रि प्रति सर्व ।
सत्रुन कौं तिन सम गिनत, आरन चित अति गर्व ।।१०३।।

सवैय्या २३

मागध कौ दल अंध भयौ, महि जोर कहूं उगिता गुरु लागैं ।
कौलौं रहै तम भार धरा परि, भोर भये रवि की कर लागैं ।।
ज्यौं बिचरैं मृग होइ सुछंदन, केसरि सोभित केसरि जागैं ।
त्यौं मुक्त कौं रण मांहि अरी, सब देखत ही दश हूं दिसि भागैं ।।१०४।।
यौं कहिकैं त्रय खंड पती, गजराज चढ़ैं रण कौं चढ़ि आयौ ।
ताही समैं दिसि नायन कौं, दसहूं दिसि साथहि कंप दिवायौ ।।
संग लये गजराजनि के नर, छत्र निसैं नभ आंगन छायौ ।
रेणु उड़ाय चमु चपनैं घन, रूप भये तिन सूरहि पायौ ।।१०५।।

दोहरा

जरासंधि निज सैन मैं, चक्र व्यूह सु रचाय ।
गरुड़ व्यूह श्रीकृष्ण नैं, ठान्यौं बहु भय दाय ।।१०६।।

सवैया २३

दोऊं महा दल दारुन लैं इम, घोर भयौ तम भू रज छाये ।
जाय छिपे जुग कोकनि के निज, आलनि में रवि अस्तइराये ।।
काग पुकारि उठे भय पाय सुद्योसहि में निसि के भरमाये ।
जुद्ध पर्यौ अति कोप जग्यौ, जम के परले प्रगटी रन ठाये ।।१०७।।

दोहरा

माधव मागध यौं अरे, एक राज के हेति ।
जीवन ममता तजि सुभट, रुरन मंडे कुरुखेत ।।१०८।।

सोरठा

उमगि चले रन खेत, दुहूं ओर के सूर यौं।
रानि काम कै देह, निज निज आयुध हाथ लैं ॥१०९॥

करत घोर संग्राम, तजि सनेह निज देह को।
बिसरि धाम सुख धाम, सुमरि सूरपन सूरही ॥११०॥

अडिल्ल

असि निकासि ललकारि, चले निज कोस तैं।
देत सत्रु सिर मांहि, झटाभट रोस तैं॥
घन कुदाल तैं जैसै, वली भेदिये।
कुंत मसालैं त्यौं, अरि काया छेदिये ॥१११॥

घन समान भट केइक, असि ही गजि कै।
गुर्ज घात तैं मारत, अरि कौं तजि कै॥
रकत धार निकसी, गज कुंभ विदारि तैं।
भई लाल दस दिसि, मनु कुंकुम विदारि तैं ॥११२॥

हनत अश्व असवार, सुहय असवार हीं।
धाइ धाइ रथ सारथ रथहि हुकार हीं॥
मत्त मत्त गजराज कैं, सनमुख आवहीं।
कुंभ कुंभ तैं, दंतहि दंत भिरावहीं ॥११३॥

बान बान तैं छेदि, धनुद्धर सूरहीं।
खैंचि खैंचि आकर्णहि, अंबर पूरहीं॥
परस परस तैं, दण्ड हि दण्ड सुखंड ही।
करत जुद्ध परचण्ड, महाबल बंड ही ॥११४॥

चक्रि सैन तैं हरिदल, भाज्यौ ता समैं।
जल प्रवाहू ज्यौं, दावानल ज्वाला दमैं॥
कूंवर संबू तब निज जन धीरज धार तौ।
मुड्यौ जुद्ध कौ, उद्धत अरियन मारतौ ॥११५॥

छेम बिद्धि खग तबं ही सन्मुख आइकैं।
लह्यौ सबसौं अति ही बल प्रगटाय कै॥
करयौं संबु नै रथबिन भूमि गिराइयौ।
जुद्ध छोडि सो खेचर, तब ही पालाईयौ॥११६॥
उठयौ और खग तोलौं, रण कौं मद धरैं।
बिद्या मांहि सुविसारद, आयुध अनुसरैं॥
करयौं संभुत सो भी, निरबल क्रुद्ध तैं।
कह्यौ भाजि मत खग रे, अब तूं जुद्ध तैं॥११७॥
बार बार ललकारयौं, ऐसैं भाखि कैं।
गयौ भाजि खग सो भी, जीवहि राखि कैं॥
कालसंबर सुत वहीं, आयौ खगपती।
हनत सत्रु कौं पहिरैं, कंकट दिढ़ अती॥११८॥
कुंवर संबू के सनमुख, धायौ जुद्ध कौं।
धनु चढाइ सरलाइ, बढाइ विरद्ध कौं॥
तबहि संबु कौं, बज्रिसु आयौ मार हीं।
मेघ ओघ ज्यौं बरषत, शर की धार हीं॥११९॥
भनैं मार खग प्रति, तूं जनक समान है।
जुद्ध जुक्त नहि तो, संग न्याइ प्रमान है॥
फिरि सु जाउ तुम तातैं, हम सौं मत लरै।
तब हि मार सौं, खगपति ऐसे उच्चरैं॥१२०॥
स्वामि काज के कारी हम सेवग सही,
जुद्ध मांहि वच ऐसे कहि ने हैं कहीं।
कर निसंक तुं तातैं धनु संधान ही,
जुद्ध मांहि नहि दोष मरे अरि हान ही॥१२१॥
तबहि मार अरु काल सु संबर गाजि कै,
करत जुद्ध जुग जोधा आयुध साजि कै॥
लगी बार बहु रति पति कौं लरतैं जबै।
तज्यौ बांन प्रज्ञपती विद्यामय तबं॥१२२॥
सकल शस्त्र करि व्यर्थ भयौ तब खग पती।
पुन्यवंत स्यौं चलै न बल अरि को रती।

कालसंबरहि बोधिकर्‌यौ निज रथ विषैं,
सल्यखेट तब आयौ रण कै सनमुखै ।।१२३।।
तबहि मारनै छोडै सर बहु तीछना,
छेदि सल्य कौ संदन कीनौ जीरना ।
सल्य और रथ चढि कै रण अति ही कर्‌यौ,
सिसुपाल कौ अनुज सुनसौं अनुसर्‌यौ ।।१२४।।
हन्यौ मार कौं सरतैं मूर्छित कर दीयौ,
बहुरि बांन गन तजि कै रथ चूरित कीयौ ।
गिर्‌यौ स्वामि अरु देख्यौ रथ टूट्यौ जबै,
भयौ सारथी अति ही भय पीड़ित तबै ।।१२५।।
ह्वै सचेत उठि बैठ्यो तौलौं काम ही,
सुथिर चित्त ह्वै बोल्यौ गुण गण धाम ही ।
अहो सारथी हिरदै भय नहि धारिये,
भये भीत रण मांहि अरिसौं हारिये ।।१२६।।

दोहरा

रण सनमुख काइर भये, सुर नर सभा मझार ।
खेटन मैं पाडव नमैं, लजीए पावत हार ।।१२७।।
फुनि दशार्ह बल कृष्ण मैं, आवैं हम कौं लाज ।
तातैं या तन असुचि तैं, ह्वै है कौन सुकाज ।।१२८।।
कीजै पुष्ट शरीर यौं, करकैं सरस अहार ।
को गुण तासौं जुद्ध मैं, जो भाजै भय धार ।।१२९।।
यौं कहि मनमथ अन्य रथ, चढि सारथि थिर कीन ।
सिरसुपाल के अनुज सौं, बहुरि भयौ रण लीन ।।१३०।।

अडिल्ल

लगे जुद्ध कौं दोऊ रण कौबिद महा ।
दुहुं मद्धि तिन के आयौ हरि तहां ।।

तबहिं सल्य जग भायौ भट प्रति विष्णु कौं।
कहत एम सिर छेदौं अब मैं कृष्ण कौं ॥१३१॥
नभ खगेश नैं छायौ बामन सौं तबै।
परत दृष्टि नहिं केशव रथ सारथि सबै॥
मनौं मढ़ि सर पंजर घेरे आनि कैं।
लखें सूर सब जीवित संसय जानि कैं ॥१३२॥
कंपमान रुधिरारुण नर इक और हूं।
आइ कृष्ण प्रति बोल्यौ तिस रण ठौर हीं॥
भो मुरारि किम करत वृथा तुम जुद्ध ही।
हते पांडवा पांचौ रण मै क्रुद्ध ही ॥१३३॥
फुनि दशार्ह से बलधर जोधा और जे।
जरासंध नैं मारे रण मैं ठौर तें॥
नगर द्वारिका सिंधु विजय नृप जोर है:
जुद्ध मांहि सो अरि नै भेज्यौ जम गहै ॥१३४॥
लई सत्रु नैं निहचै द्वारावति पुरी।
अबहि नाथ क्यों मरत वृथा तुम हे हरी॥
भाजि जाहु तुम रण तैं जो वांछौ सुखैं।
मायामय वच सुनि इम हरि बोल्यौ रुखै ॥१३५॥
अरे दुष्ट मो जीवत जादव नृपन कौं।
को समर्थ नर जग मैं इन के हनन कौं॥
वचन कृष्ण के सुनि सो भाज्यौं दुष्ट ही।
चल्यौ विष्णु अरि ऊपरि धनु गहि रुष्ट ही ॥१३६॥
कै पिशाच खग सौसौं कोइक आइ कैं।
कह्यौ कृष्ण प्रति ऐसे झूंठ बनाइ कैं॥
भो गुपाल तुम देखहु नभ की ओर ही।
हत्यौ भूप वसुदेवहि अरि नैं ठौर हीं ॥१३७॥
चल्यौ त्यागि रन खगगनता बिन भय रल्यौ।
यही बात कहि वृद्ध विशेष हरि पैं हल्यौ ॥

सिखी बान तैं हरि नैं छेद्यौ छिन विषैं।
तबहिं कृष्ण परिहार्यौ परवत ह्वै रुषैं ॥१३८॥
असनि बांन तैं गिरि भी हरि तैं नासीयौ।
गयौ भाजि तब खेचर हरि तैं त्रासीयौ ॥
तबहि विष्णु कौं नर सुर पर संसौं घनौ।
बहुरि आइ तिन खग नैं नुत कर्यौ भन्यौ ॥१३९॥
भो नरेन्द्र अब लौं लग दूजौ आइ कैं।
केतु छत्र रथ तेरे लुहत न धाइ कैं ॥
काहु युद्ध तैं सोलौं सौ वध धारिए।
और भांति रण मांहि अरी कौं हारीए ॥१४०॥
अहौ कृष्ण बिन कारन रन क्यौं करतु है।
सिद्धि नांहि कछु या मैं अघ अनुसरतु है ॥
सुनहु चक्र तैं मस्तक मागध कौ महा।
जनकराक्ष किरया ही मारै नृं कहा ॥१४१॥
सुनत बात यह कोपित माधव यौं भनैं।
हन्यौं नाथ किम जाइ बरा कौ किन हनैं ॥
यही बात कहि हरि नैं असि नंदन करैं।
कर्यौ खेट द्वै टूक पर्यौ सो भू परैं ॥१४२॥
जीवितवंत हरि कौं लखि सुरगन गगन तैं।
पुष्प वृष्टि बहु कीनी बिधन सुरन तैं ॥
कर्यौ कृष्ण तब बल प्रति कौ विधि ठानीये।
चक्र व्यूह अति दुर्द्धर ज्ञासौं हानीये ॥१४३॥

दोहा

जाइ विष्णु रण मैं तबै, तीनि सूर लै संग।
चक्र व्यूह गिरि असन ज्यौं कर्यौ छिनक मैं भंग ॥१४४॥
जरासंध तब क्रुद्ध ह्वै, अरिमन मारन काज।
दुरजोधादिक तीनि भट पठए आयुध साजि ॥१४५॥

दुरजोधन के सनमुखें, जयो पार्थ परवीन ।
कृष्ण सामही नेमिरथ, धर्मज सेना तीन ।।१४६।।

अडिल्ल

तब परस्पर सूर लगे हुंकारि कैं ।
करत चूर्ण गज हय रथ आयुध मारि कै ।।
सूरवीर सन्नद्ध भये रन सांमही ।
चले भाजि मुख मोरि सुकायर धाम ही ।।१४७।।
सूरन के तन आयुध ज्यों ज्यों वर्ष ही ।
नारदादि सुरगन कर नाचत हर्ष ही ।।
भनत पार्थ प्रति यौं दुरजोध हकारि कैं ।
कर्यौ भस्म मं तोहि हुतासन जारि कै ।।१४८।।
रे निलज्ज नर गर्व वृथा ही क्या करै ।
तोहि लाज नहि आवत सनमुख खरै ।।
यही बात सुनि अर्जुन धनु टंकोरीयो ।
प्रलय काल कौ मनौं घनाघन घोरीयो ।।१४९।।
छोडि बांन संघात सुकौरव छाइयौ ।
कुद्ध भयि जालंधर तोलौं आइयौ ।।
धनुष पार्थ को छेद्यौ रण में आवतैं ।
कर्यौ जुद्ध फुनि दुर्द्धर सरगन छावतैं ।।१५०।।
तबहि पार्थ सौं बोल्यौं कृष्णकुमार यौं ।
वृथा पक्ष अन्याय करत अविचार क्यौं ।।
वासुदेव पर कन्याहार कहै सही ।
अरु परस्व अभिलाषी तस्कर भी वही ।।१५१।।
यह बात सुनि अर्जुन बोल्यौ रे वृथा ।
गर्जि गर्जि किम भाषत तूं दादुर जथा ।।

न्याइ और अन्याइ सबै दिखलाइ हौं।
सीस छेदि तुझ जम के गेह पठाइ हौं ॥१५२॥

यही बात कहि सरगन छोडे अर्जुनां।
कर्‌यौ रुप्य कौ छिन मैं हति के चूरनां ॥
हनत विघ्न कौं जैसे श्रेयस छिनक मैं।
रूप्य खेत यौं मार्‌यौ नर नैं तनक मैं ॥१५३॥

जुद्ध मांहि थिर राइ जुधिस्थिर रण प्रतैं।
स्वेत अश्व करि जो जित रथ राजित अतैं ॥
रथारूढ रथनेमि विराजत जय करैं।
चक्र व्यूह कौं छेदि सु तीनौं जस धरैं ॥१५४॥

सकल सूर नृप सज्जन जादव बल तनैं।
भये चित आनंदित पुलकित तनठनैं ॥
थिरि नेमि नृप कौ सुत सुभट सुजस हौ।
हिरन्यनाभ सेनानी मागध को यही ॥१५५॥

लयौ मारि सो रण मैं धमंजनैं जदा।
भयौ खिन्न तिस बध लखि रवि आंथ्यौ तदा ॥
मनौं पछिमहि सागर स्नान सुकरन कौ।
गयौ सांतता कारन मगश्रम हरन कौं ॥१५६॥

दोहा

मनु सुभटन कौं मरन लखि, आई करुनां सूर।
भेज्यौ तुम यह जाइ कैं, जुद्ध कर्‌यौ तिन दूर ॥१५७॥
सकल भूप निसि कैं भये, आये निज निज थान।
सेनापति बिन चक्रपति, बोल्यौं मंत्रिहि आनि ॥१५८॥
सेनापति के पद विषैं, थपीये और अनूप।
यौं सुनि कैं तब मंत्री यौं, भाष्यौ मेचक भूप ॥१५९॥
तौलौं कौरव राइ नैं, पठयौ दूत प्रवीन।
पांडव तट सौं जाइ कैं, नत कर बिनती कीन ॥१६०॥

तुम सौं कौरव यौं कहत, सुनीये नाथ विचार ।
सब मैं जितने नृप तुमहि, दयं महा भयकार ॥१६१॥

तिन कौं रन मैं सुमरि कै, क्यौं नहि आवत दौरि ।
जीवत मूर्यौ तुमहि गहि, छिन मै [illegible] ओर ॥१६२॥

यह सुन बोले पांडु सुत, उत्तर दैं न समर्थ ।
तेरौ प्रभु उदित भयौ, जमपुर जानैं अर्थ ॥१६३॥

जरासंध के साथ ही, पठवैंगे जम गेह ।
सुनि कै दूत सुकौरवहि, जाइ कही सब एह ॥१६४॥

तौलौं रवि मन उदयगिरि, आयौ देखन हेत ।
भोर भये तहां सुभट उठ, न्हान लगे कुरु खेत ॥१६५॥

मार मार करि ते उठे, धनु सर कर असि लेत ।
सोवत जागि परे मनौं, सृष्टि हतन कौ प्रेत ॥१६६॥

सोरठा

सूरनि मैं सिरमौर, रथ बैठे पारथ नृपति ।
महासरन कौ ठौर, प्रश्न करत सारथि प्रतैं ॥१६७॥

कहौ सुत तुम दक्ष, केतु अश्व लछिन सहित ।
जे नृप नांम विपक्ष, तिन कौ वर्णन कीजिये ॥१६८॥

दोहरा

ऐसी सुनि कै सारथी, निरखत अरि की सैन ।
भिन्न भिन्न लछन सहित, भाषत उत्तर बैन ॥१६९॥

रथ सोभित जिस स्यांम हय, धुजा बिराजत भाल ।
सुर सरिता सुत अरिन कौं, हय आयौ मनु काल ॥१७०॥

सोण सप्त साजित सुरथ, कलस केतु यह द्रोण ।
रण मैं सुभटन की धुजा, धनुर्वेद कौ भौन ॥१७१॥

सो धन्वी दुरजोध यह, नील अश्व अहि केतु ।
अरि के शोणित पान कौं, अति उद्धित मनु प्रेत ॥१७२॥
पीत अंग तुरंग रथ, यह दुःसासन राय ।
लछिन जाकी केतु मैं, राजत है अन्याय ॥१७३॥
अश्वथाम यह द्रोण सुत, हरि धुजि धवकी याह ।
मनु दुर्जन बन दहन कौ, महा दवानल दाह ॥१७४॥
सल्य सत्रु कौसल्य यह, सीता केतु विराज ।
अश्व वर्ण बंधूक के, यह आयो रण काज ॥१७५॥
जाको रथ दुरवार अति, महाजय इक वीर ।
जाके लोहित वर्ण ध्वज, लोल केतु यह वीर ॥१७६॥
अल्प नृपन कौं जानियौं, अर्जुन नृप कपि केतु ।
अरि केसन मुख धनुष गाई, उठ्यौ जुद्ध के हेत ॥१७७॥

अडिल

तबहिं जुद्ध की लागी गज सौं गज घटा ।
सूरन के कर चमकत असि चपला छटा ॥
घोर गर्जना होत धनुष टंकोर की ।
बान वृष्टि जलधारा बरसत जोर की ॥१७८॥
खेट खेट सौं जुद्ध करत आकास हीं ।
भूमि भूमिचर आपसमैं तन नास हीं ॥
खड्गपानि के सनमुख खड्ग सुपानि हीं ।
धनुर्धरि कौं धनुधर मारत बान हीं ॥१७९॥
कुंत कुंत तैं छेदहिं गुर्ज सुगुर्ज हीं ।
चक्र चक्रतैं मारि गदागद तर्ज हीं ॥
गजारूढ कौ गज आरूढ सुमार हीं ।
रथारूढ कैं सनमुख रथ असवार हीं ॥१८०॥
हयारूढ कौ हय आरूढ बुलावहीं ।
पत्ति पत्ति के सनमुख सस्त्र चलावहीं ॥

निशित बांन के छल तैं धसि भट गातहीं।
मनौ दंत जम के नर मांसहिं खातहीं ॥१८१॥
छेदि सीस भू डारत हृति करवाल की।
गिलत सृष्टि कौं मानौं रसना काल की ॥
परत गुर्ज की मार मनौ जम मुष्टि ही।
हूलहिं कुंत करि सांत मनौ मनु जष्टि ही ॥१८२॥
मनु कि नाक की लात गदा के रूप ही।
मारि मारि घमसान करे बहु भूप ही।
खड्ग खड्ग तैं लागि झरा झरी ह्वै परैं।
मघन अग्नि के जोर फुलिंगे अनुसरैं ॥१८३॥
कुंत अग्रतैं गज के कुंभ विदारहीं।
झरन वर्ण तहां निकसत सोणित धार ही ॥
अंतरंग मनु की पानल ज्वाला जगी।
सत्रु दारु अति दारुन जारन कौं लगी ॥१८४॥
ताल पत्र सम गज के कर्ण सुहातहीं।
शस्त्र अग्नि कौं मांनो धौंकि प्रजालहीं ॥
हस्ति हस्ति के सनमुख धावत अति भिरैं।
प्रलय पौनतैं पर्वत मनु लुढतें फिरैं ॥१८५॥
जुद्ध मांहि बहु वीर तुरंग अनूप हीं।
मनौ चित्त असवारन के हय रूप हीं ॥
अनिल लाग तैं हालत रथ पंकति धुजा।
किधौं सत्रु के रथहिं बुलावन की भुजा ॥१८६॥
ऊर्द्ध केस को पारुण चक्षु कंपतिहीं।
मनौ काल के किंकर गरजत मत्तहीं ॥
धीर वीर संग्राम करत यौं पूरहीं।
स्वांमि कार्य पारयन परितन चूरहीं ॥१८७॥

दोहरा

गंगासुत तारण विषै, पनिच चाप सौं तांन ।
सनमुखहीं अभिमन्यु कैं, धायौ धरि अभिमान ॥१८८॥

अडिल्ल

तब कुमार नैं प्रथमहि बान चलाइ कैं ।
धुजा भीष्म की छेदी क्रोध बढाइ कैं ॥
मनु महलता [illegible] कौरव [illegible] की ।
करी नास रण मांहि सु सोभा मरण की ॥१८९॥

धुजा और आरोपि सुनिज रथ कैं सिर्षै ।
गंगपुत्र नैं दस सर मारे ह्वै रुषैं ॥
धुजा कुमार की छेदी जब गांगेय ही ।
तब कुमार नै मारे सर बहु भये ही ॥१९०॥

रथीबाहु धुज छेदे गंगा तनूज के ।
नसत वज्रतैं जेम कंगुरे बुरज के ॥
सकल सूर सुरवानी तब ऐसैं भनी ।
भली धन्य अभिमन्यु धनुर्धर है गुनी ॥१९१॥

मनौं पार्थ यह दूजौ है साक्षात ही ।
भयौ भूमि मैं सुस्थिर वर विख्यात ही ॥
बानिन तैं इन नासैं सत्रु अनेक ही ।
हनत नाग निर अंकुसि जिम ह्य भेक ही ॥१९२॥

पार्थ सारथी उत्तर नामा रण विषै ।
तिन बुलाइ कैं लीन्यौं भीषम सनमुखैं ॥
परयौ आइ भरि तौलौं सल्य सुनाम ही ।
महाघोर रण मांड्यौ उत्तर सांम ही ॥१९३॥

कुंत खड्ग धनु धारैं सल्य सुक्रुद्ध तैं ।
हत्यौ सारथी उत्तर जुद्ध विरुद्ध तैं ॥

मनु प्रचंड भुजदंड सुपारथ को गिर्‌यौ ।
सुत विराट को उत्तर पृथु पृथ्वी पर्‌यौ ॥१६४॥

स्वेत नाम तसु भ्राता आयौ ता समैं ।
लर्‌यौ सल्य ललकारि मनुज के नांसमैं ॥
तिष्ठ तिष्ठ रे सल्य यहै रण ठाइ है ।
मनुज बाल मो मारि कहां अब आइ है ॥१६५॥

केतु छत्र सब शस्त्र सुता के तोडि कैं ।
कर्‌यौ सल्य कौं बिह्वल कवचहिं फोरि कैं ॥
घोर मार बहु दीनी स्वेतकुमार ही ।
मर्‌यौ सल्य नहिं तो भी करत सिधार ही ॥१६६॥

भयौ क्रुद्ध गंगासुत याही अंतरैं ।
परयौ आइ दुहु मधि सरासन कौ घरैं ॥
करत जुद्ध तिन रोक्यौ रण मैं स्वेत ही ।
लर्‌यौ भीष्म भी आइ सरन तैं खेत ही ॥१६७॥

ह्वै अदृश्य रवि नभ मैं आये मेह ज्यौं ।
बांन स्वेत के छाये भीषम देह त्यौं ॥
देखि भीष्म कौ विह्वल कौरव धाइयौ ।
मारि मारीयें याहि कहत यौं आइयौ ॥१६८॥

स्वेत सांमनैं आवत लखि दुरजोध कौं ।
पार्थ ताहि ललकारि लर्‌यौ धरि क्रोध कौं ॥
कहत पार्थ रे कौरव तु कहां जातु है ।
मो भुजान तैं तो मद अबहिं बिलातु है ॥१६६॥
बच प्रचंड यौं भाखि दुर्जोधन रोकीयौ ।
धनुष खैंचि गांडीव सु नर टंकोरीयौ ॥
हत्यौ आदि दस सरतैं कौरव ईसही ।
बहुरि बीस फुनि मारें इषु चालीसही ॥२००॥
मारि मारि करि तीरौ अैसे छाइयौ ।
तबहीं क्रोध बहु कौरवपति तैं खाइयौ ॥

लगे पार्थ दुरजोधन दोउ जुद्ध कौं।
घरत क्रुद्ध मद उद्ध बढाइ विरुद्ध कौं ।।२०१।।

खड्ग खड्ग तैं भारत कुंत सुकुंत ही।
बान बान तैं छेदत धनुष धुनंत ही ।।
दंड दंड सौं खंडत असि बल बंड ही।
घोर वीर संग्राम मंड्यौ परचंड ही ।।२०२।।

नृप विराट कैं नंदन तौलौं रण विषै।
करत जुद्ध धरि क्रुद्ध पितामह सनमुखैं ।।
चाप छत्र ध्वज छेदी भीषम के तहां।
हन्यौ बात फुनि तास उरस्थल मैं महा ।।२०३।।

सिथल होइ कैं गिरत लग्यौ तन भार हीं।
कौरव सैन भयौ तब हा हा कार हीं ।।
भयी दिव्य धुनि तबहिं सुरन की गगन तैं।
अहो भीष्म मत होउ सु काइर लरन तैं ।।२०४।।

अहो वीर रन माहिं सजि कैं धीरता।
तोहि मारनैं वैरी तजि कैं भीरुता ।।
यही बात सुनि फुनि थिर आयुध होइ कै।
सावधान ह्वै रथ पैं मनु संजोइ कै ।।२०५।।

सांधि लख्यि सर छाडि सुमार्‍यौ स्वेत ही।
खाइ घाव दृढ सो जु पर्‍यौ रन खेत ही ।।
सुमरि पंच पद इष्ट गयौ सुरलोक सौ।
लहत सर्व सुख सुमिरत जिन तजि सोक सौ ।।२०६।।

दोहरा

तौलौं भई निसीथिनी, मरत लखे जोधार।
मानौं रण कौं वर्जती, आई करुणा सार ।।२०७।।
सूर छिपैं हरि आदि सब, आये निज निज थान।
सुत कौ बध वैराट सुनि, रुदन भयो दुख खानि ।।२०८।।

हा सुत संगर कै विषै, किन हु न राख्यो तोहि ।
हा धरमातम धर्मसुत, क्यौं न रख्यौ तुम सोहि ।।२०६।।
भीम मूर्ति हा भीम भट, हा हा अर्जुन राइ ।
तुम कैसस करौं छमु हैं, [illegible] सुत ठाव ।।२१०।।
तब जुधिस्थिर राइ न, करी प्रतिग्या घोर ।
सत्रहमें दिन आज तैं, हति हौं सल्यहि ठौर ।।२११।।
जो नहि मारै तौ तबै, झंपा पातहि मंझि ।
सब के निरखत मांन तजि, जरौं अगनि के कुंड ।।२१२।।
खंडक सत्रु सिखंडियौं, बोल्यौ बचन प्रचंड ।
नवमें बासर आज तैं, करौ भीष्म के खंड ।।२१३।।
यही प्रतिज्ञा हम करी, पूरन ह्वैं जो नांहि ।
अपने तन को होम तौ, करौं हुतासन मांहि ।।२१४।।
धृष्टद्युम्न फुनि यौं कही, मो निहचै यह ठीक ।
सेनांनी को मारि हौं, यामैं नांहि अलीक ।।२१५।।

सोरठा

उदय भयौ दिन साज, तौलौं दिनकर हरत तम ।
मनु देखन के काज, कारज भारत भटन कौं ।।२१६।।
लखे महत हथियार, मार मार करतें सुनें ।
भयौ सूर भय भार, तातैं कंपत ऊदयौ ।।२१७।।

अडिल

भये भोर तब जोधा दोऊ ओर के ।
महा जुद्ध आरंभत धाये घोरि कै ।।
तीछन शस्त्र सौं देह परस्पर खंड ही ।
हस्ति हस्ति सौं रथ रथ हय हय प्रचंड ही ।।२१८।।
पत्ति पत्ति कै सनमुख धावत जुद्ध कौं ।
मारि मारि मुख भाखि बढावत क्रुद्ध कौं ।।

लखिन तैं पहिचानि भटन के सनमुखैं।
चले धाइ रण मांहि धनंजय ह्वै रथैं ॥२१९॥
मनौं केसरी मत्त गयंदन कौं हतैं।
भूपन कौं त्यौं अर्जुन हनि कैं जय रतैं ॥
घोर वीर रण मांहि पितामह धाइयौ।
असंख्यात सर तैं नर कौं तिन छाइयौ ॥१२०॥
इन्द्र पुत्र सरि धारा भीषम कू लहीं।
श्रौर राह ठहराइन ज्यौं तृन पूल हीं ॥
दानन तैं सुर सरिता सुत नैं नभ छयौ।
मनौ मेघ जल बरषन कौं उदित भयौ ॥२२१॥
अंधकार भू मांहि करयौ सर छाइ कैं।
करत राति मनु दिन तैं सूर छिपाइ कै ॥
करे पार्थनैं ते सब निरफल छिन विषै।
करत जुद्ध बहु धीरज धरि कैं सनमुखैं ॥२२२॥
छूटत पार्थ के बान महा परचंड ही।
करत खंड बल चंड गजन की सुंड ही ॥
चरन हीन हय कीने उछत छेदि कैं।
करत चूर रथ चक्र सर्न तैं भेदि कै ॥२२३॥
कवच चूर करि सूरन के सर फोरि कैं।
मर्मथान अति नर्म सुघसहितु जोरि कैं ॥
सकल पार्थ नैं छेदे धनू गांडीव तैं।
मरे भूरि भट रण मैं छुटि कै जीव तैं ॥२२४॥

सवैया २३

असि की निषंग बास बैसि कैं सरासन पैं।
सर ही के रूप ह्वै अकास मैं उडतु है ॥
तीछन है भाल चुंच सर को कठोर कंठ।
पीछै पर लाइ कैं पनिच सो छुटतु है ॥

परत है छुत होइ सुरन के सननिपै।
अमिष के खान हार हिंसा ही करतु है॥
ऐसे बान अर्जुन के जम के सिचान किधौ।
जिन्हैं जाइ धावै ते सासन भरतु है॥२२५॥

दोहा

इहि विधि सर अर्जुन तनैं, छुटत लखे दुरजोध।
भीषम कौ निरखत तबै, बोल्यौ धारत क्रोध॥२२६॥
तात तात तुम रण विषै, यह आरंभ्यो केम।
हार होत निज सैन की, जीतत दुर्जन जेम॥२२७॥
रहि न शकैं रण मैं जथा, यह पारथ दुखदाइ।
अहो पितामह सो करौ, जिहिं विधि शत्रु नसाइ॥२२८॥
अरि आगे रण सनमुखे, को भट ह्वै निहचंत।
तातैं बांन प्रचंड तजि, हतै शत्रु कौ संत॥२२९॥

अडिल्ल

यही बात सुनि गंगासुत पारथ प्रतैं।
भयो जुद्ध कौ उदित ह्वै छोभित अतै॥
तबहि इन्द्र सुत बोल्यौ सुनि भीष्मपिता।
होइ दैस यह सुन्य सबै तुमो सौं रिता॥२३०॥
जमागार कौं तोहि तथापि पठाइ हौ।
अबहि मारि जम की पहुनैर कराइ हौ॥
बच कठोर कहि ऐसे लागे जुद्ध कौं।
होत निर्दई भिरत बढाइ विरुद्ध कौ॥२३१॥
तब हि द्रोण रण मांहि धनुष चढाइ कैं।
धृष्टद्युम्न के सनमुख आयौ धाइ कै॥
द्रुरक बान तै गुरु मैं रथ धुज छेदए।
बहुरि धृष्टि नैं छत्र धुजा तिस भेदए॥२३२॥

शक्ति बान सब छोड्यौ गुरु नैं तुरित ही ।
धृष्टद्युम्न नैं छिन मैं छेद्यौ परत ही ।।
तीछन बुधि धृष्टार्जुन गुरु पैं धाइ कैं ।
लोह दंड सी भांति ओर बगाइ कैं ।।२३३।।

तीछन बान तें गुरु नैं तब ही छेदि कैं ।
खंड खंड करि डार्‌यौ छिन मैं भेदि कैं ।।
तबहि द्रोण गुरु ढाल लई कर बाहु नैं ।
पकरि खडग कौ धायौ हाथ सु दाहु नैं ।।२३४।।

धृष्टद्युम्न कौं मारन सनमुख ही चल्यौ ।
मनौ क्रुद्ध ह्वै काल बिदारन कौं चल्यौ ।।
इसी अंतरैं भीम गदा लें हस्त हीं ।
सुत कलिंग कौ मार्‌यौ करि कैं पस्त हीं ।।२३५।।

नीतवंत बहु उन्नत पुत्र कलिंग कौं ।
पर्‌यौ शीश मनु कौरव दल चतुरंग कौं ।।
करे भीम संत्रासित कौरव नृपत हीं ।
धरत रोस रण मांहि सु अरिगन दलत हीं ।।२३६।।

गदा घात तैं सात सतक रथ चूरए ।
सत्रु सैनि संघारि मही में पूरए ।।
इक हजार हति हाथी कीनैं छय सही ।
घोर वीर रण उद्धत पावनि जय लही ।।२३७।।
इसी अंतरैं गुरु नैं तबहि कुठार ज्यौं ।
खडग धृष्टि कौ छेद्यौ तीछन धार स्यौं ।।
जुद्ध माझ अभिमनु सु तोलौ आइ कैं ।
टूकि टूकि रथ कीन्यौं गुरु कौं धाइ कैं ।।२३८।।
तबहि आइ कैं पौहुच्यौ सुत दुरजोध कौं ।
नाम सुलखमण सु मानौं पुंजक रोध कौं ।।
आवत हीं तिन धनुष सुभद्रा सूनु कौं ।
खंड खंड करि डार्‌यौं मानौं ऊन कौं ।।२३९।।

और चाप अभिमन्यु सूलै तब धाइयौ ।
छिनक माँहि अरि कौं दल सकल भगाइयौ ।।
तबहि सत्रु तब इकठें ह्वैं मति ही रवैं ।
पार्थ पुत्र कौं वेढि लयौ रण कै विषैं ।।२४०।।

पार्थपुत्र पंचानन समयौं हेरियौं ।
मनो सिंघ कौ मत्त गजौ मिलि घेरियौ ।।
तबहि आइ कै अर्जुन धनु गांडीव तैं ।
सकल पुत्र के सत्रु विनासे जीव तैं ।।२४१।।

नसत मेघ के संचय जैसे पवन तैं ।
लसत सत्रु गन जैसे रत्र कै किरन तैं ।।
जुद्ध माँहि जिहि ठौर धसत पारथ बली ।
तिसी ठौर परि जाहि अग्नि कौ हूल चली ।।२४२।।

दोहरा

इहि विधि जोधा जुद्ध मैं, नित प्रति करतैं जुद्ध ।
जब आयौ दिन नवम तब, भयौ सिखंडी क्रूद्ध ।।२४३।।
लीनो गुरु गांगेय कौं, निज सनमुख ललकार ।
तब सिखंडि प्रति पार्थ यौं, बोले वचन विचारि ।।२४४।।
हे शिखंडि अरि हतन कौं, सर प्रचंड यह लेहु ।
जा सरसूं हम पूरवैं, जाख्यौ खंड वने हु ।।२४५।।
तब सिखंडी बल चंड नैं, लीन्यौ तब वह बान ।
अरि मृग खंडन कौ महा, धायौ सिंघ समान ।।२४६।।

अडिल

करत खंड अरि सैन सिखंडी भूप ही ।
उद्यौ जुद्ध कौ क्रुधित जम के रूप ही ।।
द्रुपद पुत्र गंगासुत लरहिं परस्परैं ।
दुहु मधि नहिं एकहिं जय कौ अनुसरैं ।।२४७।।

जुगम सिंघ मनु जुद्ध करत बन कैं विषै।
धन्य धन्य धुनि गगन सुरा सुरगन अखैं॥
धृष्टद्युम्न नैं आइ सिखंडी औरीयौ।
औ सिखंडि हम देख्यौ जोर न तुम कीयौ॥२४८॥

जुद्ध माहिं गंगा सुत अबलौं ह्वै रुषैं।
घन समान अति गरजति है तो सनमुखैं॥
फुनि सुतास कौ रथ भी दिढ लहरात है।
अरु उतंग अति ताल धुजा फहरात है॥२४९॥

और पार्थ भी पूरत है तो पृष्टि कौ।
फुनि सहाइ बैराट करत तुम इष्ट कौं॥
यही बात सुनि राइ सिखंडि औरीयौ।
पनिच खैंचि आकरनहिं धनु टंकोरीयौ॥२५०॥

द्रुपद पुत्र नैं गंगासुत के तन विषैं।
सहस एक सर साधि हुते मानें ह्वै रुषैं॥
मेघ ऊर्ध ज्यौं छावत मंडल गगन ही।
लयौ छाइ गंगासुत तैसे सरन ही॥२५१॥

कौरव कौ बल तोलौं करि संधान ही।
द्रुपद पुत्र पैं छोडन लाग्यौ बांन ही॥
सत्रुन के सर ताके तन नहिं लगत ही।
मनु सिखंडि तैं नासैं ह्वै भयवंत ही॥२५२॥

धृष्टद्युम्न के कर तैं छूटत बान जे।
लगत सत्रु के उर मैं बज्र समान तें॥
गंगपुत्र के सर जे छूटत तीछना।
ते प्रसून ह्वै जाहिं सिखंडी के तना॥२५३॥

होंहि दुख्य सुख रूप सु पूरब पुन्य तैं।
सुख्य दुख्य ह्वै परनै सकल अपुण्य तैं॥
गंगपुत्र धनु जो जो धारत कर विषैं।
धृष्टद्युम्न तिस छेदत सरतैं ह्वै रुषैं॥२५४॥

छीन पुन्य नर हारत सब की साखि हीं ।
पुत्र मित्र अरु भ्राता कोइन राख हीं ।।
गंगपुत्र को कवच सिखंडी नैं तहां ।
तीछन बांन करि हत्यौं भेद्यौ दिढ महा ।।२५५।।

मेघ घारतैं जैसें तरु बरषा समैं ।
परैं टूटि ह्वै छीन सुथिरता नहिं धमैं ।।
बांन वृष्टि तें तैसे कवच सु फूटि कैं ।
पर्यो भीष्म को रन मैं तन सौ छूटि कैं ।।२५६।।

फुनि सिखंडी नैं तीछन सरगन छोडए ।
हते अश्व जुग सारथि रथ धुज तोडए ।।
अति अकंप रथ रहित सु गंगासुत रह्यो ।
कर कृपांन करि अरि के हतिवे कौं चह्यौ ।।२५७।।

द्रुपद पुत्र नै तबहि तीछन सरन तैं ।
खडग छीन करि डार्यो अरि कै करन तैं ।।
छुरक बांन सौं हृदय बिदार्यो लीन है ।
पर्यो भूमि परि तबहि पितामह छीन है ।।२५८।।

दोहरा

कंठ प्रान तब जानि कै, लीन्यौं सुभ सन्यास ।
धर्म ध्यान हिरदैं गह्यौ, धर्यो धीर्य गुनरास ।।२५९।।
अनुप्रेक्षा चित राखि कैं, सुमरि पंच पद इष्ट ।
तन भोजन ममता तजी, गहि सल्लेखन सिष्ट ।।२६०।।
तबहीं रन तजि सकल नृप, आइ ठए तिहितीर ।
पांडव तिस पद नमन करि, रुदन करत इम बीर ।।२६१।।
ब्रह्मचरज आजन्म तुम, अति उन्नत व्रतपाल ।
अहो पितामह पूज्यमह, सकल गुनन की माल ।।२६२।।
धर्म तनुज तब यौं कहत, भो उत्तम व्रतधार ।
हम को क्यों नहिं मृत्य अब, आई दुख दातार ।।२६३।।

सर जर्जर भीषम कहत, कौरव पांडव सौजु ।
अभयदान तुम देहु तुम, सबही जीवन कौजु ॥२६४॥
करौ परस्पर मित्रता, तजौ सत्रुता चित्त ।
अब लौं क्या ऐसे भये, तुम निहचै नहि कित्त ॥२६५॥
जे केई रन मैं मरे, गये निद गति सोइ ।
तातैं कीजो धर्म अब, दस लक्षरण अब लोइ ॥२६६॥
यां अंतर चारन जुगल, आए नभ तैं संत ।
शुद्ध चित्त हसिम तथा, महा मुनीन्द्र गुनवंत ॥२६७॥
निकट जाइ कैं भीषम के, बोले वचन गंभीर ।
तो समान पृथिवी विषै, और नहीं महाधीर ॥२६८॥
काम मल्ल को जो सुभट, करत चित्त सौ चूर ।
ता सम जग मैं और नहि, सूरन मैं महसूर ॥२६९॥

सवैया २३

भृकुटी कमांन तांन तीछन मदन बांन
कामी नर उर आंन मारैं जांन छिन मैं
जोषित विरुद्ध जुद्ध नैनन सौं ठानैं इम
ता मैं ठहराइ सुर सोई सुरगन मैं
बांधि बांधि आयुध कौं धारैं उर धीरपन
सांधि सांधि साइक जे डारैं अरितन मैं
नदलाल सुनु भनैं एसौ सूर सूरनांहि
धाइ धाइ लरैं जोर जोपैं घोर रन मैं ॥२७०॥

दोहरा

ऐसी सुनि गांगेय भट, जुग मुनि के पग द्वंद ।
नति करि कैं बोल्यौ गिरा, गुन ध्यायक गुनवृंद ॥२७१॥
जो भगवन भव वन भ्रमत, मैं न लह्यौ वृष मर्म ।
कहा करौं या ठौर अब, किहि विधि ह्वै शिव सर्म ॥२७२॥

ज्ञानन सौ हौं छिन्न ह्वै, मरयौ सरन तुम आइ।
तुम प्रसाद या भव विषैं, लहि हौं फल सुखदाइ ।।२७३।।

यौं सुनि करि बोले मुनी, सुनौहु भव्य गांगेय।
सिद्धन कौ चित सुमिरि कैं, नमन करौ बहु भेय ।।२७४।।

पाद्धडी छंद

सुभ चारि आराधन चित आराधि।
मह धीरय वीर्य तन बचन साधि ।।
वर तत्त्व अरथ श्रद्धान रूप।
यहु दर्श आराधन लहि अनूप ।।२७५।।

नव पदार्थ जहां ज्ञान होइ।
नय प्रमान निज उक्ति जोइ ।।
तहां ज्ञान आराधन होई सत्त।
फुनि निहचै आतम ध्यान तत्त ।।२७६।।

चरीए सुचरण जहा विधि विचार।
तेरह प्रकार ग्रवहार टार सार ।।
खलु प्रवृत्त चिद्रूप मद्धि।
चारित्र आराधन एहु विधि ।।२७७।।

द्वादश सरूप विवहार बुद्ध, चिद्रूप रूप निहचय विशुद्ध ।
तप नाम अराधन एम राइ, चित धारि आराधौ सुगतिदाइ ।।२७८।।
तपीए जुदेहु तप जुगम भांति, सुभ संजम मग्ग गुन मूल पांति।
अनशन प्रमुख तप बाह्य जानि, रागादि त्याग अंतर सुमानि ।।२७९।।
विधि अराधन इम प्रकाशि, मुनि चारन कीनीं गति आकाशि।
गुणवंत संत गांगेय सार, चारी सु अराधन हृदय धारि ।।२८०।।
त्यागौ ममत्त आहार देह, छिमं भाव सबन सौं धारि एहु।
पद पंच इष्ट चित जपत धीर, सुभ ध्यान धरत तजि असु शरीर ।।२८१।।
उपज्यौ सुजाइ दिवि ब्रह्म मद्धि, वर ब्रह्मदेव लहि परम रिद्धि।
मनवांछित सुख भुगतै सुभोग, सुख होत सहज जिन धर्म जोग ।।२८२।।

तहां पाडव कौरव रुदन ठांमि, बहु सोच करत जग सुन्य मांनि ।
दुख मांहि एम बीती सुरात, रवि आइ बहुरि कीन्यौं प्रभात ।।२८३।।
इहि भांति जीव संसार मांहि, नित काल भ्रमत थिर होत नांहि ।
लच्छिमी सुचपल चपला समान, संध्या प्रभासम आयु जान ।।२८४।।
सुत बंधु सुखादिक छिनक संग, इम जानि रहौ निज धर्म संग ।
बर बुद्धि गंतसुत ब्रह्मचार, सुखरिद्धि धार सुर सदन सार ।।२८५।।
फुनि पछ छीन कौरव कुराइ, बल हीन दीन ह्वै रुदन भाइ ।
अरु धर्म तनुज जयवंत संत, जग मांहि प्रगट जस नीतिवंत ।।२८६।।
कृत पूर्व धर्म सुभ सर्म दाइ, बिन धर्म परम दुख भरम पाइ ।
जिन धर्म समान न और रत्न, जैनी सदीव सुनि धरत जत्न ।।२८७।।

इति श्रीमन्महाशीलाभरणभूषित जैनी नामांकितायां भारतभाषायां बुलाकीदास विरचितायां गांगेय संन्यास ग्रहण पंचत्व प्राप्ति पंचम स्वर्ग गमन बर्णनो नाम विंशतिम प्रभवः ।

× × × × × × ×

पुराण का अन्तिम भाग

अथ नेमिनाथ स्तुति

सवैया

धरम के धुरंधर सुनेमि नेमि नेमीसुर, दोष द्रुम दाहन कौं दावानल रूप है ।
काम बेलि मंडप कौं कंदन कुदाल दंड, मंडित अखंड सील पंडित अनूप है ।।
मोष मग मंडन हौ रोष के बिहंडन हौ, दैन अवलंबन दे तारक भौ कूप हौ ।
कीजे उपगार भवसागर को पार अब, दीजे सुविचार प्रभू चारित के भूप हौ ।।८०।।

पद्धडी छंद

ग्रन्थ प्रशस्ति

कहां पांडव चरित बिसाल चारु, श्री गौतमादिक भाषित सुसारु ।
कहां मो प्रबोध यह अलप छीन, बलहीन तदपि बरनन सुकीन ।।८१।।

जिम बाल ग्रहण उडगन करोति, जलसिंधु प्रमानत भेक पोति ।
तिम ग्रंथ कर्‌यौ निज बुद्धि जोग, नहि दोष ग्रहत वर दक्ष लोग ॥८२॥
जे नर असंत पर दोष संच, तिन संग न हमकौं काज रंच ।
विष मय पियूष ते नरक राहि, लहि पाप महा मरि नरक जाहि ॥८३॥
जे साधु महा पर कज्ज रक्ष, पर जद्यपि देषहि दोष सच्छ ।
नहि धारहि तदपि विकारि भाव, ते होउ महाजस हम सहाउ ॥८४॥
जिम चंद सरद उडवंस बीच, अति सोभ करत दै निज मरीच ।
पर गुन समूह तिम संत देषि, निरदोष करत उपमां विसेषि ॥८५॥
राचि कैं विचित्र पावन पुरान, नहि चंछौ नर सुर सुष निदान ।
इस भक्ति तनौं फल होहु एहु, पद मुक्ति परम सुख रास देहु ॥८६॥
पुनरुक्ति जुक्त लच्छन सुछंद, जहाँ भूल्यौ वरनत वर्ण बिंदु ।
तहाँ सोधि पढौ जे बुध अनिंद नहि निंद करत ते सुगुन वृंद ॥८७॥
अलंकार गनागम छंद भेद, नहि जानौं रंचक अलप वेद ।
कछु भूलि देषि इस ग्रंथ मद्धि, मति कोप करौ कवि विपुल बुद्धि ॥८८॥

अथ मूल आचार्य

सवैया

संगन ले मूलसंघी पद्मनंदि नाम भए ताके, पट्ट सकलादिकीरत बषानियें ।
कीरति भुवन तातैं ताकैं भए चंद्रसूरि, कीरति विजय सुतास पट्ट परवानीयें ॥
ताके पट्ट सुभचंद सुजस अनंद कंद, पांडव पुरांन परकास कर मानीये ।
मति कौ उदोत तासा पाइ कैं बुलाकीदास, भारतविलास रास भाषा करि जानिये ॥८९॥

अथ पातशाहि वंस वर्णन

सवैया

वंस मुगलानैं मांहि दिल्ली पति पातिसाहि, तिमिरलिंग मीर सुत बाबर सुभयो है ।
ताकौ है हिमाऊं सुत ताही तैं अकब्बर है, जहाँगीर ताकैं मीर साहिजहाँ ठयौ है ॥
ताजमहल अंगनां अगज उतंग महाबली, अवरंग साहि साहित ले जयौ है ।
ताकी छत्र छांह पाइ सुमति के उदै आइ भारत राइ भाषा जैनी जस लयौ है ॥९०॥

अथ ग्रंथकार आशीर्वाद

सवैया

जौलौं रहैं तारागन सदन सुरईस कौ सागर, सुभूमि रहै रहै दुति भान की।
भूमिवासी भौनवासी गिरि गिरि ईस वासी, बसैं सिर जोति जौलौं ससि के विमान की ।।
गंगा आदि नदीनद कर्म भूमि कलपतरु है, ग्यान जौलौं जग वीतराग ग्यांन की।
भारत सुखेत माहि तौलौं सुविकास लहौ, भारत विलास भाषा पांडव पुरान की ।।९१।।

अथ ग्रन्थ पाठक आशीर्वाद

जे नर भव्य भनाइ भनैं भनि भावन सौं यह भारत भाषा।
आदर धारि लिखाइ लिखैं लिखि देहिं सुनाइ सुनैं सुनि भाषा ।।
सोधि सुधारि सुधारिहिं सत्य सुधारस के बुध चाषा।
ते नरिंद महापद पावहु ह्वै है तिनकी सिव के अभिलाषा ।।९२।।

अथ सरस्वती स्तुति ।।दोहा।।

जिन वदनीं सदनी सुमति, अवसरनीं शिव सीउ।
जस जननीं जैनी भनीं, हरनीं कुमति सदीउ ।।९३।।

सवैया

वीरानन सरनीं हरनी दुख दोषन की भरनी रस अनुभौ दैनी शिव मानी है।
गोतम गुरु वरनीं रमनीं है चेतन की कुमति की करनी पैनी परवानी है ।।
दुरित तैं उधरनी धरनींधर धर्म की तरनी भौसागर की छैनी भै हानी है।
सुमति सूर किरनी रजनी रजनीकर वदनी हमारी जग जैनी सुखदानी है ।।९४।।

दोहा

इहि विधि भाषा भारती, सुनौं जिनुल दे माइ।
धन्य धन्य मुख सौं कही, धर्म सनेह बढाई ।।९५।।
जननि जिनुल दे धन्य है, जिन रचाइ सु पुरान।
सुगम कर्यो भाषा मई, समझैं सकल सुजान ।।९६।।

अब नर तन गुरु धन्य है, जाके वचन प्रभाव ।
संस्कृत तैं भाषा रच्यो, पाइ सबद परयाव ।।६७।।
वीरनाथ जिन धन्य हैं, जाके चरन प्रसाद ।
यह पुरान पूरन भयौ, सुखदाइक शिव आदि ।।६८।।

अथ ग्रंथ छंद प्रमाण कथन ।।सवैया ।

छप्पै एक करखे अठारै इकतीसे बीस चालीसह एक सोरठे पर मानिये ।
छयालीस तेईसो पाद्धडी पचीसी गनिव्वैही भुजंग छंद जैनी जग जानिये ।।
तीनसैं सिरासीडिल्ल नौसैतीस दोहा भनि ढाईसैं सतानवैं सु चौपाई बखानिये ।
सारे इक ठौर करि ठानिये बुलाकीदास एकादश पंचसै हजार चार मानिये ।।९९।।

अथ श्लोक संख्या कथन—दोहा

संख्या श्लोक अनुष्टपी, गनिये ग्रन्थ लखाइ ।
सप्त सहस्र षट सतक फुनि, पचपन अधिक मिलाइ ।।१००।।

अथ संवत मितो—दोहा

संवत सतरहसौ घउन, सुदि असाढ़ तिथि दोज ।
पुष्प रिक्ष गुरुवार कौं, कीन्यौं भारत चोज ।।१०१।।

इति श्रीमन्महाशीलाभरणभूषित जैनी नामांकितायां भारत भाषायां लाला बुलाकीदास विरचितायां पांडवोपसर्गसहन मयकेवलोत्पत्ति सिद्धिगमन द्वय सर्वार्थ सिद्धि प्राप्ति वर्णनोनामसप्ति षट्विंशतितमः प्रभावः ।।२६।।

इति श्री बुलाकीदास कृत भाषा पांडवपुराण महाभारत नाम सम्पूर्णम् ।।

मिती श्रावणमासे कृष्णपक्षे तिथौ १४ वार दीतवार सम्वत् १९०५ का दसकत नाथुलाल पांड्या का । लिखी गयो बड़े मंदिर वास्तै ।।

卐

हेमराज

कविवर हेमराज इस पुष्प के तीसरे कवि हैं जिनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है। समय की दृष्टि से हेमराज बुलाखीचन्द एवं बुलाकीदास दोनों ही कवियों से पूर्व कालिक हैं। मिश्रबन्धु विनोद ने इनका समय संवत् १६६० से प्रारम्भ किया है लेकिन उसका कोई आधार नहीं दिया। इन्होंने हेमराज एवं पाण्डे हेमराज के नाम से दो कवियों का अलग २ उल्लेख किया है। हेमराज की रचनाओं के नामों में नयचक्र, भक्तामर भाषा एवं पंचाशिका वचनिका के नाम दिये हैं तथा पाण्डे हेमराज के ग्रन्थों में प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकाय टीका, भक्तामर भाषा, गोम्मटसार भाषा, नयचक्र वचनिका एवं सितपट चौरासी बोल, ग्रन्थों के नाम दिये हैं। इन ग्रन्थों का विवरण देते हुये लिखा है कि ये रूपचन्द्र के शिष्य थे तथा गद्य हिन्दी के अच्छे लेखक थे। नयचन्द्र भाषा एवं भक्तामर भाषा के नाम दोनों में समान है।

डा० कामताप्रसाद जी ने अपने "हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" में हेमराज की प्रवचनसार टीका, पञ्चास्तिकाय टीका एवं भक्तामर भाषा इन तीन कृतियों का ही उल्लेख किया है।[3] इसी पुस्तक के आगे हेमराज के नाम से ही गोम्मटसार एवं नयचक्र वचनिका का नामोल्लेख किया है। डा० नेमीचन्द्र शास्त्री ने हेम कवि की केवल एक कृति छन्दमालिका (सं० १७०६) का ही उल्लेख किया है।[4] डा० प्रेमसागर जैन ने हेमराज[5] का रचना समय विक्रम संवत् १७०३ से १७३०

---

१. मिश्रबन्धु विनोद — पृष्ठ संख्या २५२ (४३५)
२. वही ,, २७६ (५१३/१)
३. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास — पृष्ठ सं. १३१
४. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन — पृष्ठ सं. २३८
५. हिन्दी भक्ति काव्य और जैन कवि — पृष्ठ सं. २१४-१६

तक का दिया है। इसके साथ ही प्रवचनसार भाषा टीका, परमात्मप्रकाश, गोम्मटसार कर्मकांड, पंचास्तिकाय भाषा, नयचक्र भाषा टीका, प्रवचनसार (पद्य) सितपट चौरासी बोल, भक्तामर भाषा, हितोपदेशबावनी, उपदेश दोहा शतक एवं गुरुपूजा का उल्लेख किया है।

राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों में, पाण्डे हेमराज, हेमराज साह, हेमराज एवं मुनि हेमराज के नाम से अब तक २० से भी अधिक कृतियों की पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हुई हैं। लेकिन नाम साम्य की दृष्टि से सभी कृतियों को आगरा निवासी पाण्डे हेमराज की कृतियाँ मान ली गयी। इस दृष्टि से पं. परमानन्द जी शास्त्री ने अनेकान्त देहली में प्रकाशित अपने एक लेख "हेमराज नाम के दो विद्वान्" में इस भूल की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया क्योंकि इसके पूर्व पं. नाथूरामजी प्रेमी, डा. कामताप्रसाद जी आदि सभी विद्वान् एक ही हेमराज कवि मानने लगे थे।

अभी जब मैंने अकादमी के छट्ठे भाग के लिये हेमराज की कृतियों का संकलन किया तथा पंडित परमानन्द जी एवं अन्य विद्वानों द्वारा लिखित सामग्री का अध्ययन किया तो मुझे भी अपनी भूल मालूम हुई क्योंकि राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूचियों में सभी रचनाओं को एक ही हेमराज के नाम से अंकित कर दिया गया। वास्तव में एक ही युग में हेमराज नाम के एक से अधिक विद्वान् हुये और उन सभी ने साहित्य निर्माण में अपना योग दिया। १७वीं एवं १८वीं शताब्दि में हिन्दी जैन कवियों के लिये आगरा एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा जहाँ पचासों जैन कवियों ने हिन्दी में सैकड़ों रचनाओं को निबद्ध करने का गौरव प्राप्त किया।

हेमराज नाम वाले चार कवि

हमारी खोज एवं शोध के अनुसार हेमराज नाम के चार कवि हो गये हैं जिन्होंने हेमराज नाम से ही काव्य रचना की थी। इन चारों हेमराजों के नाम निम्न प्रकार है—

१. मुनि हेमराज
२. पांडे हेमराज
३. साह हेमराज
४ हेमराज गोदीका

इन कवियों का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१. मुनि हेमराज

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में "हितोपदेश बावनी" की एक पाण्डुलिपि उपलब्ध होती है। जिसके रचयिता कवि हेमराज हैं और जिन्होंने अपने नाम के पूर्व मुनि शब्द लिखा है। ये हेमराज कौन से मुनि थे इसके सम्बन्ध में बावनी में कोई सामग्री नहीं मिलती। लेकिन ये मुनि हेमराज बनारसीदास के अग्रज थे क्योंकि इन्होंने बावनी की रचना संवत् १६६५ में समाप्त की थी। जिसका उल्लेख उन्होंने बावनी के अन्तिम पद्य में किया है—

हरष भयो मुज आज काज सार्या मन वांछित।
मुनि साहिब मिल श्याम नाम सहु जग में आंत।
तस सीस पभणी एह बावन्नी सुखदाई।
एह मुहबोय रस षट् पंच एह संवत मह गाइय।
अगह्यो गुन ए जां लगै ध्रु व मेर धरणी धरण।
मुनि हेमराज इम उच्चरै सुप्रणत सुनत मंगल करण ॥५५॥

बावनी में ५२ के स्थान पर ५५ छन्द हैं। जो अन्तिम दो पद्यों के अतिरिक्त सभी सवैया छन्दों में निबद्ध है बावनी का हितोपदेश बावनी के अतिरिक्त अक्षर बावनी नाम भी दिया हुआ है क्योंकि स्वर और व्यञ्जन के आधार इसके सवैये लिखे गये हैं। बावनी के प्रथम दो पद्यों में कवि ने मंगलाचरण एवं अपनी लघुता प्रगट की है—

ऊँकार रहित कार सार संसारह थाप्यो।
ऊँकार विस्तार सार मंत्रहि मान्यो।
ऊँकार वखान जान पणि गुरु पंइ सिख्यो।
सह गुरु तणें प्रसाव आदि ए अक्षर लिख्यो।
मन मतिबोधस आपणूं करि सवियिा बावन्न।
भविक जन तुमे सांभले, ध्यानि धरी एक मन्न ॥१॥

नवि जांणें व्याकर्ण तर्क संगीत रसाला।
भरहू पींगल गुण गीत नवि जाणूं नाममाला।

छंद भेद निरधंद अतिहिवें भेद न जाणूं ।
अल्प बुधि गुरु ज्ञान, जाण कहो केम बखाणूं ।
शिव सेवी पय लगीहुं, देख्यो बुद्धि प्रकास ।
रसिक पुरुष मन रंजना, करि ससिथिया उल्लास ।।२।।

इसके आगे तीन सवैय्या छन्द बिना अकारादिक क्रम के हैं तथा पांचवे पद्य से स्वर और व्यञ्जन के क्रम से हैं। पूरी बावनी उपदेश परक है तथा पौराणिक उदाहरणों के द्वारा अपनी बात प्रस्तुत की गयी है। एक पद्य दीजिये—

आदि को कारणहार प्रभु राखि आदि रे।
भूलो रे गमार तुंही नर भव खोयो युंही।
प्रभु बिणा बीयें कुण कहै धुं तोरि दादि रे।
काम कुं आतुर भयो पापसुं जमा सरो।
गयो पड्सी निगोद मांहि कुंवन फरादि रे।
सोचि कछु जीव माहें जीत कें हारि जाइं।
एक बिना भगवंत सर्व काम बादि रे।।

हेमराजि भणइं सुनि सुणौ सज्जन जन मेरो उमग्यौ है जिन गुण गायवो ।।७।।

हितोपदेश बावनी की एक पांडुलिपि जयपुर के दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथियों के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। कृति की लेखक प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

इति हितोपदेश बावन्नी हेमराजि कृत संपूर्णम्। सविया संपूर्णम्। संवत् १७५७ वर्षे मिती वैशाख सुदि ११ दिने गुरुवासरे लेखयोस्तु।

उक्त पांडुलिपि पं० विनोदकुमार द्वारा रूपनगर में बहुजी श्री यशखराई जी वाचनार्थ लिखी गयी थी। प्रति में १२ पत्र हैं तथा दशा सामान्य है।

पाण्डे हेमराज

पाण्डे हेमराज इस पुष्प के तीसरे कवि हैं जिनका यहां परिचय दिया जा रहा है। ये १७वीं शताब्दि के अपने समय के प्रसिद्ध कवि एवं पंडित थे। साहित्य सेवा ही इनके जीवन का प्रमुख धर्म था। ये दृढ़ श्रद्धानी श्रावक थे इसलिये अपनी

पुत्री जैनी को भी इन्होंने धर्म अच्छी शिक्षा दी थी। बुलाकीदास कवि इन्हीं जैनी/जैनुलदे के सुयोग्य पुत्र थे जिनके प्रश्नोत्तर श्रावकाचार एवं पाण्डवपुराण का परिचय दिया जा चुका है।

हेमराज आगरा के निवासी थे। ये दिगम्बर जैन अग्रवाल थे। गर्ग इनका गोत्र था। इनका परिवार ही पंडित एवं साहित्योपासक था। आगरा उस समय बनारसीदास, रूपचन्द, कौरपाल जैसे विद्वानों का नगर था। नगर में चारों ओर शास्त्र चर्चा, अध्यात्म ग्रंथों का वाचन, साहित्य निर्माण एवं संगोष्ठियां आदि होती रहती थी। हेमराज पर भी इन सबका प्रभाव पड़ा होगा और उन्हें साहित्य निर्माण की ओर आकृष्ट किया होगा।

जन्म एवं परिवार

हेमराज का जन्म कब हुआ, उनके माता पिता, शिक्षा दीक्षा, विवाह आदि के बारे में उनकी कृतियाँ सर्वथा मौन है। लेकिन यह अवश्य है कि हेमराज ने अच्छी शिक्षा प्राप्त की होगी। प्राकृत, संस्कृत एवं राजस्थानी तीनों ही भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। वे गद्य एवं पद्य दोनों में ही गतिशील थे। अच्छे कवि थे। शास्त्रज्ञ भी थे इसलिये समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय जैसे ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन भी किया होगा और इनकी विद्वत्ता को देखकर ही कौरपाल जैसे पंडित एवं तत्वज्ञ ने इनसे प्रवचनसार को हिन्दी गद्य पद्य दोनों में भाषा करने का अनुरोध किया था।

कवि का सं. १७०१ में प्रथम उल्लेख पं० हीरानन्द द्वारा किया गया मिलता है। इसलिये उस समय इनकी ४०-४५ वर्ष की आयु होनी चाहिये और इस प्रकार इनका जन्म भी संवत् १६५५ के आस पास होना चाहिये। संवत् १७०६ में इन्होंने अपनी प्रथम कृति प्रवचनसार भाषा की रचना की थी उस समय तक कवि की ख्याति विद्वत्ता एवं काव्य निर्माता के रूप में चारों ओर प्रशंसा फैल चुकी थी।

हेमराज और बनारसीदास

पाण्डे हेमराज का तत्कालीन विद्वान् महाकवि बनारसीदास से कभी सम्पर्क हुआ था या नहीं इसके बारे में न तो बनारसीदास ने अपनी किसी रचना में हेमराज का उल्लेख किया है और न स्वयं हेमराज ने अपनी कृतियों में बनारसीदास का स्मरण किया है। हाँ बनारसीदास के एक मित्र कौरपाल का अवश्य उल्लेख हुआ

है और उन्हें 'ज्ञाता' विशेषण से सम्बोधित किया है। अपने सितपट चौरासी बोल में कवि ने कौरपाल का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

> नगर आगरे मे बसै कौरपाल सग्यान।
> तिस निमित्त कवि हेम नैं, कीयो कवित्त बखान॥

हेमराज और कौरपाल

प्रवचनसार की भाषा तो हेमराज ने कौरपाल की प्रेरणा एवं आग्रह से ही लिखी थी।[1] लगता है कौरपाल परोपकारी व्यक्ति थे तथा जैन शास्त्रों के अधिकारी विद्वान् थे। वे आध्यात्मी व्यक्ति थे तथा आगरा की आध्यात्मिक सैली के प्रमुख सदस्य थे। लेकिन हेमराज द्वारा बनारसीदास की उपेक्षा करना आश्चर्य सा अवश्य लगता है क्योंकि स्वयं हेमराज भी आचार्य कुन्दकुन्द के भक्त थे इसलिये उनके ग्रंथों का भाषानुवाद उन्होंने किया था। लगता है हेमराज का बनारसीदास से मतैक्य नहीं था तथा विचारों में भिन्नता थी। हेमराज को पाण्डे हेमराज भी लिखा हुआ मिलता है। संभवत: वे मध्यस्थ विचारों के थे। कुछ भी हो दोनों कवियों में से किसी के द्वारा एक दूसरे का उल्लेख नहीं होना कुछ अटपटा सा लगता है।

हीरानन्द और हेमराज

संवत् १७०१ में रचित "समवसरण विधान" में हीरानन्द कवि ने हेमराज

---

१ हेमराज पंडित बसै, तिसी आगरे ठाइ।
गरग गोत गुन आगरो, सब पूजै तिस ठाइ।
उपजी ताके देहुजा, जैनी नाम विख्यात।
शील रूप गुण आगरी, प्रीति नीति पाँति।

२ बालबोध यह कीनी जैसे, सो तुम सुणहु कहूं मैं तैसे।
नगर आगरे में हितकारी, कौरपाल ज्ञाता अधिकारी।
तिनि विचारि जिय मैं यह कीनी, जो यह भाषा होइ नवीनी॥४॥
अलप बुद्धि भी अरथ बखानै, अगम अगोचर पद पहिचानै।
यह विचारि मन मैं तिनि राखी, पाण्डे हेमराज सौं भाखी॥५॥

को पंडित एवं प्रवीण इन दो विशेषणों के साथ वर्णन किया है। इससे प्रकट होता है कि हेमराज संवत् १७०१ में ही समाज में अच्छा सम्मान प्राप्त कर लिया था तथा उनकी गिनती पंडितों में की जाने लगी थी।

लेकिन हेमराज कब से पाण्डे कहलाने लगे इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। मुझे ऐसा लगता है कि ये पंडित कहलाते थे और धीरे धीरे पाण्डे कहलाने लगे। और पाण्डे राजमल के समान इन्हें भी प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय जैसे ग्रन्थों की भाषा टीका करने के कारण इन्हें भी पाण्डे कहा जाने लगा। पाण्डे हेमराज की अब तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं—

१ प्रवचनसार भाषा (गद्य)	रचनाकाल सं० १७०९
२ प्रवचनसार भाषा (पद्य)	"
३ भक्तामर स्तोत्र भाषा (गद्य)	"
४ भक्तामर स्तोत्र भाषा (पद्य)	....
५ चौरासी बोल (सितपट चौरासी बोल)	संवत् १७०९
६ परमात्मप्रकाश भाषा	—
७ पञ्चास्तिकाय भाषा	—
८ कर्मकाण्ड भाषा	—
९ सुगन्ध दशमी व्रत कथा	—
१० नयचक्र भाषा	संवत् १७२६
११ गुरुपूजा	—
१२ नेमिराजमती जखडी	—
१३ रोहिणी व्रत कथा	—
१४ नन्दीश्वर व्रत कथा	—
१५ राजमती चूनरी	—
१६ समयसार भाषा	—

उक्त कृतियों के अतिरिक्त कुछ पद भी राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत विभिन्न गुटकों में उपलब्ध होते हैं। उक्त कृतियों का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१ प्रवचनसार भाषा (गद्य)

कविवर बुलाकीदास ने अपने पांडवपुराण में हेमराज का परिचय देते समय जिन दो ग्रन्थों की भाषा लिखने का उल्लेख किया है उनमें प्रवचनसार भाषा का नाम सर्व प्रथम लिखा है।[1] जिससे ज्ञात होता है कि इस समय हेमराज का प्रवचनसार भाषा अत्यधिक लोकप्रिय कृति मानी जाने लगी थी। महाकवि बनारसीदास द्वारा समयसार नाटक लिखने के पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्द की प्राकृत रचनाओं पर जिस वेग से हिन्दी टीका लिखी जाने लगी थी प्रस्तुत प्रवचनसार भाषा भी उसी का एक सुपरिणाम है।

हेमराज ने प्रवचनसार भाषा आगरा के तत्कालीन विद्वान कौरपाल के आग्रहवश की थी। कौरपाल महाकवि बनारसीदास के मित्र थे तथा उनके साथ कौरपाल ने कुछ ग्रंथों की रचना भी की थी। बनारसीदास ने जिन पांच आध्यात्मिक विद्वानों का उल्लेख किया था उनमें कौरपाल भी थे।[2] उन्होंने हेमराज से कहा कि पांडे राजमल्ल ने जिस प्रकार समयसार की भाषा टीका की थी उसी प्रकार यदि प्रवचनसार की भाषा भी तैयार हो जावे तो जिनधर्म की और भी वृद्धि हो सकेगी तथा ऐसे शुभ कार्य में किञ्चित भी विलम्ब नहीं किया जाना चाहिये। हेमराज ने उक्त घटना का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

बालबोध यह कीनी जैसे, सो तुम सुनहु कहूं मैं तैसे।
नगर आगरे में हितकारी, कौरपाल ज्ञाता अविकारी ।।४।।
तिन विचार जिय में यह कीनी, जो भाषा यह होइ नवीनी।
अलपबुद्धि भी अर्थ बखानें, अगम अगोचर पद पहिचानें ।।५।।

---

१ जिन आगम अनुसार तें, भाषा प्रवचनसार।
पंच अस्ति काया अपर, कीनें सुगम विचार ।।३५।।
पांडवपुराण/प्रथम प्रभाव

२ रूपचन्द पंडित प्रथम, दुतीय चतुर्भुज जान।
तृतीय भगौतीदास नर, कौरपाल गुणधाम ।।
धरमदास ए पंचजन, मिलि बैठहि इक ठौर।
परमारथ चर्चा करें, इन्हीं के कथन न और। नाटक समयसार

यह विचार मन में तिन राखी, पांडे हेमराज सौं भाखी।
आगै राजमल्ल नै कीनी, समयसार भाषा रस लीनी ॥६॥

अब जो प्रवचन की हूं भाषा, तौ जिनधर्म वधं सो साखा।
तातै करहु विलंब न कीजै, परभावना अंग फल लीजै ॥७॥

कौरपाल ने अपनी भावना व्यक्त की और उसके फल प्राप्त करने का कवि को प्रलोभन दिया।

हेमराज संवेदनशील विद्वान थे। वे कवि एवं गद्य लेखक दोनों ही थे। गद्य पद्य दोनों में ही उनकी समान गति थी। इसलिये उन्होंने भी तत्काल प्रवचनसार की गद्य टीका लिखना प्रारम्भ कर दिया।

जिन सुबोध अनुसार ग्रंथ हित उपदेस सौं।
रची भाष अविकार, जयवंती प्रगटहु सदा ॥६॥

हेमराज हित आनि, भविक जीव के हित भणी।
जिनवर आनि प्रवानि, भाषा प्रवचन की कही ॥१०॥

कवि ने प्रवचनसार की जब रचना की थी उस समय शाहजहाँ बादशाह का शासन था। जिसका उल्लेख कवि ने निम्न प्रकार किया है—

अवनिपति वंदहि चरण, सुनय कमल विहसंत।
साहजिहां दिनकर उदै, अरिगन तिमिर न संत॥

प्रवचनसार की गद्य टीका कवि ने कब प्रारम्भ की इसका तो कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन वह संवत् १७०९ में समाप्त हुई ऐसा उल्लेख अवश्य मिलता है—

सत्रहसै नव उत्तरै, माघ मास सित पाख।
पंचमि आदितवार को, पूरन कीनी भाष ॥१६॥

प्रवचनसार मूल आचार्य कुन्दकुन्द की प्रमुख कृति है। इस पर आचार्य अमृतचन्द ने संस्कृत में तत्त्व प्रकाशिनी टीका लिखी थी। यह एक सैद्धान्तिक ग्रन्थ है जिसमें तीन अधिकार है। जिसमें ज्ञान, ज्ञेयरूप तत्वज्ञान के कथन के साथ जैन

साधु आचार का बड़ा ही रोचक एवं प्रभावक कथन किया गया है। ग्रन्थ की भाषा प्राचीन प्राकृत है जो परिमार्जित है। यही नहीं इसकी भाषा उनके अन्य सभी ग्रन्थों से प्रौढ है तथा गम्भीर अर्थ की द्योतक है। इसका दूसरा अधिकार ज्ञेयाधिकार नाम से है जिसमें ज्ञेय तत्वों का सुन्दर विवेचन किया गया है। प्रवचनसार का तीसरा अधिकार चारित्राधिकार है। प्रवचनसार पर जयसेन की संस्कृत टीका भी अच्छी टीका मानी जाती है। प्रवचनसार की गद्य टीका तत्कालीन हिन्दी गद्य का अच्छा उदाहरण है।

पांडे हेमराज ने प्राकृत गाथाओं का पहिले अन्वयार्थ लिखा है और फिर उसीका भावार्थ लिखा है। भावार्थ बहुत अच्छा गद्य भाग बन गया है। इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

"जो मोक्षाभिलाषी मुनि है ताकों यों चाहिए के तौ गुणनि करि आप समान होइ कै, अधिक होइ ऐसे दोइ की संगति करै और की न करै। जैसे सीतल घर के कोने मैं सीतल जल राखे तैं सीतल गुण की रक्षा ही है तैसैं अपने गुण समान की संगति स्यौं गुण की रक्षा हो है। और जैसे अति सीतल बरफ मिश्री कपूरादि की संगति स्यौं अति सीतल हो है तैसै गुणाधिक पुरुष की संगति स्यौं गुण वृद्धि ही है तातैं सत्संग जोग्य है। मुनि कौ यौं चाहिए प्रथम दशा विषैं यह कही जु पूर्व ही शुभोपयोग तै उत्पन्न प्रवृति ताकों अंगीकार करै पाछै क्रमस्यौं संयम की उत्कृष्टता करि परम दशा कों धरै पाछै समस्त वस्तु की प्रकाशन हारी केवलज्ञानानंद मयी शास्वती अवस्था को सर्वथा प्रकार पाइ अनंते अतींद्रिय सुख को अनुभव हु यह शुभोपयोगाधिकार पूर्ण हुवा। पृष्ठ संख्या २२८

प्रवचनसार की पचासों पाण्डुलिपियाँ राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थागारों में सुरक्षित है। संवत् १७२८ में लिपिबद्ध एक पाण्डुलिपि हमारे संग्रह में उपलब्ध है।

२ प्रवचनसार भाषा (पद्य)

प्रवचनसार की हिन्दी गद्य टीका का ही अभी तक विद्वानों ने अपने २ ग्रन्थों एवं शोध निबन्धों में उल्लेख किया है लेकिन इनकी प्रवचनसार पर पद्य टीका का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। पं० परमानन्द जी शास्त्री जैसे हिन्दी के विद्वान् ने भी हेमराज की गद्य वाली टीका का ही नामोल्लेख किया है। लेकिन सौभाग्य से मुझे

इसकी एक पद्य टीका वाली पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई है जिसका परिचय निम्न प्रकार है—

हेमराज ने प्रवचनसार का पद्यानुवाद भी इसी दिन समाप्त किया जिस दिन उसकी गद्य टीका पूर्ण की थी जिससे ज्ञात होता है कि उसने प्रवचनसार पर गद्य पद्य टीका एक ही साथ की थी। लेकिन जब उसकी गद्य टीका की पचासों पाण्डुलिपियां उपलब्ध होती हैं तब प्रवचनसार पद्य टीका की अभी तक पाण्डुलिपि उपलब्ध न होवे यह बात समझना कठिन लगता है। इसका उत्तर एक यह भी दिया जा सकता है कि खण्डेलवाल जातीय दूसरे हेमराज ने भी पद्यानुवाद लिखा है इसलिये आगरा निवासी हेमराज के पद्यानुवाद को कम लोकप्रियता प्राप्त हो सकी।

पद्य टीका में ४३८ पद्य हैं जिसमें अन्तिम ११ पद्य तो वे ही हैं जो कवि ने प्रवचनसार गद्य टीका के अन्त में लिखे हैं। प्रस्तुत कृति का प्रारम्भिक अंश निम्न प्रकार है—

छप्पय— स्वयं सिद्ध करतार करै निज करम सरम निधि,
आपं करण स्वरूप होय साधन साधै विधि।
संप्रदाना धरै आपको आप समप्पै।
अपादान आपतैं आपकौं कर थिर थप्पै।
अधिकरण होय आधार निज वरतैं पूरण ब्रह्म पर।
षट विधि कारिकामय विधि रहित विविध येक अजर अमर ॥१॥

दोहा— महातत्व महनीय यह, महाधाम गुणधाम।
चिदानंद परमातमा, बंदू रमता राम ॥२॥
कुनय दमन सुवरनि अवनि, रमिनि स्यात पद शुद्ध।
जिनवानी मानी मुनिय, घट में करोहु सुबुद्धि ॥३॥

चौपई— पंच इष्ट के पद बंदों, सत्यरूप गुरु गुण अभिनंदों।
प्रवचन ग्रंथ की टीका, बालबोध भाषा रमनीका ॥४॥

प्रवचनसार के तीन अधिकारों में से प्रथम अधिकार में २३२ पद्य, तथा शेष २०६ पद्यों में दूसरा एवं तीसरा अधिकार है।

भाषा अत्यधिक सरल, सुबोध एवं मधुर है। प्रवचनसार के गूढ विषय को कवि ने बहुत ही सरल शब्दों में समझाया है। कोई भी पाठक उसे हृदयंगम कर सकता है।

प्रवचनसार पद्य टीका की एक पाण्डुलिपि जयपुर के बधीचन्द जी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। इसमें ३४ पद्य हैं तथा अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

इति श्री प्रवचनसार भाषा पांडे हेमराज कृत संपूर्ण। लिखतं दलसुख लुहाड़िया लिखी भाई दयापुर अर्थे लिखा।

३ भक्तामर स्तोत्र भाषा (पद्य)

भक्तामर स्तोत्र सर्वाधिक लोकप्रिय जैन स्तोत्र है। मूल स्तोत्र आचार्य मानतुंग द्वारा विरचित है जिसमें ४८ पद्य है। समाज का अधिकांश भाग इसका प्रतिदिन पाठ करता हैं। हजारों महिलाएं जब तक इसको नहीं सुन लेती, भोजन तक नहीं करती। भक्तामर स्तोत्र पर अब तक ७० से भी अधिक विद्वानों ने पद्यानुवाद किया है।[1] लेकिन 'तीर्थंकर' में प्रकाशित इस लेख में भक्तामर पर उपलब्ध हिन्दी गद्य टीकाकारों का कोई उल्लेख नहीं किया।

भक्तामर स्तोत्र पर हिन्दी पद्यानुवाद पांडे हेमराज का मिलता है जो समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय है। दि० जैन मन्दिर कामा के शास्त्र भण्डार में स्वयं हेमराज पांड्या की पाण्डुलिपि संग्रहीत है जिसका लेखन-काल सं० १७२७ है। इस पाण्डुलिपि में २६ पत्र हैं। पांडे हेमराज ने पद्यानुवाद जितना सुन्दर एवं सरल किया है उतना अन्य कवियों के पद्यानुवाद नहीं है। एक पद्य का अनुवाद देखिये—

> सो मैं शक्तिहीन थुति करूं
>
> भक्ति भाववश कछु नहीं डरूं
>
> ज्यों मृगि निज-सुत पालन हेतु
>
> मृगपति सन्मुख जाय अचेत ॥५॥

अन्तिम पद्य में कवि ने अपने नाम का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

> भाषा भक्तामर कियो, हेमराज हित हेत।
>
> जो नर पढ़ै सुभावसों, ते पावै शिवखेत ॥४२॥

---

१ देखिये "तीर्थंकर" में प्रकाशित—पं. कमलकुमारजी शास्त्री का लेख-पृ. १६७-७०

२ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग—पंचम—पृ० ७४७.

कवि ने अपने इस छोटे से स्तोत्र में चौपई (१५ मात्रा) नाराच छन्द, दोहा एवं षट्पद छन्दों का प्रयोग किया है।

४ भक्तामर स्तोत्र भाषा (गद्य)

पं० हेमराज ने जहां भक्तामर स्तोत्र का पद्यानुवाद किया वहां गद्य में टीका लिखकर पाठकों के लिये स्तोत्र का अर्थ समझने के लिये उसे और भी सरल बना दिया है। गद्य टीका भाषा संस्कृत के एक एक शब्द के अन्वय के अनुसार की है। भाषा में ब्रज का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। एक संस्कृत पद्य का गद्यानुवाद अवलोकनार्थ नीचे दिया जाता है—

किल अहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रं स्तोष्ये किलाहि निश्चय करि अहमपि मै भी जु हौ मानतुंग आचार्य सो तं प्रथमं जिनेन्द्रं सो जु है प्रथम जिनेन्द्र श्री आदिनाथ ताहि स्तोष्ये स्तवूंगा। कहा करि स्तोत्र करोंगो जिनपाद युगे सम्यक् प्रणम्य जिन जु है भगवान तिनि कौ जु पद जुग दोई चरण कमल ताहि सम्यक् भली भांति मन वचन काय करि प्रणम्य नमस्कार करि कैं। कैसो है भगवान को चरण द्वय भक्तामर प्रणत मौलि प्रभाणां उद्योतकं भक्तिवंत जु है अमर देवता तिनि के प्रणीत नम्रीभूत जु हैं मौलि मुकट तिनि विषै है मणि तिनि की प्रभा तिनिका उद्योतकं उद्योत की है। यद्यपि देव मुकटनि का उद्योत कोटि सूर्यवंत है तथापि भगवान के चरण नख की दीप्ति आगै वै मुकुट प्रभा रहित हो है तातै भगवान को चरण द्वय उनका उद्योतक है। बहुरि कैसो है चरण द्वय दलित पाप तमो वितानं दलित दूरि कियो है पाप रूप तम अधंकार ताको वितान समूह जानै बहुरि कैसो है चरण द्वय प्रगटी भय भवजले पततां जनानां आलंबनं। प्रगटी चतुर्थकाल को आदि विषै भवजले संसार समुद्र जल विषै पततां पड़े जु है तं कं सो आदिनाथ कौन है जाको स्तोत्र मैं करोगो। स्तोत्रै: य: सुरलोक नाथै: संस्तुत: स्तोत्रै स्तोत्र हु करि य: जो श्री आदिनाथ सुरलोकनाथै सुरलोक देवलोक के नाथ इंद्र तिनि करि संस्तुत: स्तूयमान भया कैसे है इंद्र सकल वाङ्मय तिसका जु तत्व स्वरूप तिसका जु बोध ज्ञान तातै उद्भूत उत्पन्न जु है मकर बुद्धि ता करि पटुभि: प्रवीण है वे स्तोत्र कैसा है जिन करि स्तुति करी जगत्त्रिय उदारै: अर्थ की गंभीरता करि श्रेष्ट है ॥२॥

४८वें पद्य की टीका के अन्त में कवि ने अपने आपका निम्न प्रकार परिचय दिया है—

भक्तामर टीका सदा, पढ़ैं सुनैं जो कोइ।
हेमराज सिव सुख लहै, तस मन वांछित होइ॥

५ चौरासी बोल

हेमराज ने प्रस्तुत कृति में दिगम्बर एवं श्वेताम्बर सम्प्रदाय जो मतभेद हैं उनको बहुत ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। वे भेद चौरासी हैं जिन्हें चौरासी बोल का नाम दिया गया है। कवि ने इसकी रचना कौरपाल की प्रेरणा से की थी। इसका दूसरा नाम "सित पट चौरासी बोल" भी मिलता है।

नगर आगरे में बसै, कौरपाल सग्यान।
तिस निमित्त कवि हेम ने, कियो कवित्त अमान।

कविवर हेमराज ने इसे संवत् १७०६ में लिखकर समाप्त किया था।

चौरासी बोल एक सुन्दर रचना है जो भाषा एवं शैली की दृष्टि से अनूठी कृति है। चौरासी बोल का प्रारम्भ निम्न प्रकार है—

सुनय पोष हत दोष मोक्ष मुख शिव पद दायक
गुन मनि कोष सुघोष रोष हर तोष विधायक।
एक अनंत स्वरूप संत वंदित अभिनंदित
निज सुभाव परभाव भाव भासेय अमंदित।
अविदित चरित्र विलसित अमित सर्व मिलित अविलिप्त तन।
अविचलित कलित निज रस ललित जय जिनंपि दलित कलित घन॥१॥

सवैया इकतीसा—नाथ हिम भूधर तैं निकसि गनेश चित्त भूपरि विथारी शिव सागर लौं धाई है।
परमत वाद मरजाद कूल उनमूलि अनकूल मारिग सुभाय ढरि आई है।
बुद्ध हंस सेय पापमल को विध्वंस करै सरवंग सुमति विकासि वरदाई है।
सपत अभंग भंग उठइ तरंग जामैं ऐसी वानी गंग सरवंग अंग गाई है॥२॥

दोहा— श्वेताम्बर मत की सुनी, जिनतैं है मरजाद।
तिनहि दिगंबर सौं गही, ते चउरासी बाद ॥३॥
तिनकी कछु संक्षेपता, कहिए आगम जानि।
पढ़त सुनत जिनके मिटै, संसै मत पहचानि ॥४॥
संसै मत मैं और है, अगनित कल्पित बात।
कौन कथा तिनकी कहै, कहिए जगत विख्यात ॥५॥

६ परमात्मप्रकाश भाषा

परमात्मप्रकाश दूसरी अध्यात्म कृति है जिसे कविवर हेमराज ने संवत् १७१६ में समाप्त की थी। परमात्मप्रकाश योगीन्दु की मूल कृति है जिनका पूरा नाम योगिचन्द्र है। इनका समय ईस्वी सन् की छठी शताब्दि का उत्तरार्ध माना जाता है। परमात्मप्रकाश मूल में अपभ्रंश रचना है जिसमें प्रथम अधिकार में १२६ दोहे तथा दूसरे अधिकार में २१२ दोहे हैं।

पाण्डे हेमराज ने परमात्मप्रकाश पर हिन्दी गद्य टीका लिखकर उसके पठन पाठन को और भी सुलभ बना दिया तथा उसकी लोक प्रियता में वृद्धि की लेकिन प्रवचनसार के समान इसको व्यापक समर्थन नहीं मिल सका। यही कारण है कि जयपुर के शास्त्र भण्डारों में इसकी एक मात्र पाण्डुलिपि उपलब्ध होती है और वह भी अपूर्ण ही है। इसकी एक पूर्ण पाण्डुलिपि डूंगरपुर के कोटड़ियों के मन्दिर में तथा दूसरी आदवा (जयपुर) के जिन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध होती है। परमात्मप्रकाश की गद्य टीका का एक उदाहरण देखिये—

अथानंतर तीन प्रकार का आत्मा के भेद तिनि मैं प्रथम ही बहिरात्मा के लक्षण कहै है—

दोहा— मूढवियक्खण बंभुपरु, अप्पा तिविहु हवेइ।
देहु जि अप्पा जो मुणइ, सो जणु मूढ हवेइ ॥११॥

मूढ कहिए मिथ्यात्व रागादि रूप परिणया बहिरात्मा अर वियक्खण कहिए वीतराग निर्विकल्प सुसंवेदन ग्यान रूप परिणया अंतरात्मा अर ब्रह्म पर कहिए सुद्ध-बुद्ध स्वभाव प्रमात्मा शुद्ध कहिए रागादि रहित अर बुद्ध कहिए अनंतग्यानादि सहित

परम कहिए उत्कृष्ट भाव कर्म तो कर्म रहित या प्रकार आत्मा के तीन भेद जानूं। बहिरात्मा, अन्तरात्मा परमात्मा तिनि मैं जो देह कूं आत्मा जाणैं सो प्राणी मूढ कहिए।

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि हेमराज ने प्रवचनसार गद्य टीका में जिस शैली को अपनाया था उसी को आगे ग्रन्थों में अपनाया गया।

७ पञ्चास्तिकाय गद्य टीका

पञ्चास्तिकाय भी आचार्य कुन्दकुन्द की कृति है जो प्राकृत भाषा में निबद्ध है। इसमें दो श्रुतस्कंध (अधिकार) हैं षड्द्रव्य-पंचास्तिकाय और नव पदार्थ। इन अधिकारों के नाम से ही इनके अभिधेय का नाम हो जाता है। इस पर भी आचार्य अमृतचन्द्र एवं जयसेन की संस्कृत टीकाएं हैं।

पाण्डे हेमराज ने अपने गुरु रूपचन्द के प्रसाद से पञ्चास्तिकाय की भाषा टीका लिखी थी। पंडित परमानन्द जी शास्त्री एवं डा० प्रेमसागर दोनों ने पञ्चास्तिकाय भाषा टीका का रचनाकाल संवत् १७२१ लिखा है लेकिन रचनाकाल सूचक पद्य का दोनों ने उल्लेख नहीं किया है। जयपुर के ठोलियों के मन्दिर में संग्रहीत एक पाण्डुलिपि संवत् १७१४ की लिखी हुई है इसलिये पञ्चास्तिकाय गद्य टीका का लेखन काल संवत् १७२१ तो नहीं हो सकता। स्वयं गद्य टीकाकार में रचनाकाल का कोई उल्लेख नहीं किया है। पाण्डे हेमराज ने निम्न प्रकार टीका की समाप्ति की है—

आगैं इस ग्रन्थ का करणहारे श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने जु यह आरम्भ कीना था तिसके पार प्राप्त हुआ कृतकृत्य। अवस्था अपनी मानी कर्म रहित शुद्ध स्वरूप विषै थिरता भाव धर्या। ऐसी ही हमारैं विषै भी श्रद्धा उपजी इसि पंचास्तिकाय समयसार ग्रन्थ विषै मोक्षमार्ग कथन पूर्ण भया। यह कछु एक अमृतचन्द्र कृत टीका तें भाषा बालावबोध श्री रूपचन्द गुरु कैं प्रसाद थी। पांडै हेमराज नैं अपनी बुद्धि माफिक लिखित कीना। जे बहुश्रुत है ते सवारि कैं पढियो॥

---

१ देखिये अनेकान्त– वर्ष १८ किरण–३ पृष्ठ संख्या १३८.

२ हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि—पृष्ठ सं० ११५.

इति श्री पञ्चास्तिकाय ग्रन्थ पांडे हेमराज कृत समाप्त। संवत् १७१६ पौष सुदि ११ बृहस्पतिवार रामपुरा मध्ये लिखायितं पंचास्तिकाय ग्रन्थ संघ ही कला परोपकाराय लिखितं लेखक दीना। शुभं भूयात्।

ग्रन्थ के प्रारम्भ करते समय कवि ने अपना कोई परिचय नहीं दिया है और टीका को प्रारम्भ कर दिया है।

भावार्थ—एक परमाणु विषै पुद्गल के बीस गुणनि में पंच गुण पाइए। पंच रसनि विषै कोई एक रस पाइए। पंच वर्णं विषै कोइ एक वर्ण पाइए। दोइ गंध विषै कोई एक गंध पाइए। शीत स्निग्ध, शीत रूक्ष उष्ण, स्निग्ध, उष्ण-रूक्ष इति च्यार स्पर्श के जुगलनिविर्षे एक कोई जुगल पाइए। ए पांच गुण जानने। यह परमाणू बंध भाव कै परणया हुआ शब्द पर्याय का कारण है। और जब बंध तै जुदा है तब शब्द तै रहित है। यद्यपि अपणे स्निग्ध रूक्ष गुणनि का कारण पाइ अनेक परमाणु रूप स्कंध परिणति धरि करि एक हो है तथापि अपणें एक रूप करि स्वभाव कौं छोडता नांही। सदा एक द्रव्य है।

उक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि हेमराज हिन्दी गद्य लेखन में बड़े कुशल विद्वान् थे। तथा सिद्धान्त एवं दर्शन के विषय को भी धारा प्रवाह लिखते थे। आगरा के होने के कारण उनकी भाषा में थोड़ा ब्रज भाषा का पुट है।

८ कर्मकाण्ड भाषा

कर्मकाण्ड आचार्य नेमिचन्द्र के गोम्मटसार का उत्तर भाग है। गोम्मटसार के दो भाग हैं जिनमें प्रथम जीवकाण्ड तथा दूसरा कर्मकाण्ड है। कर्मकाण्ड ग्रन्थ जैनधर्म के अनुसार आठ कर्म एवं उनकी १४८ प्रकृतियों के वर्णन करने वाला प्रमुख ग्रन्थ है। यह ६ अधिकारों में विभक्त है। जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—(१) प्रकृति समुत्कीर्तन (२) बन्धोदय सत्व (३) सत्वस्थानभंग (४) त्रिचूलिका (५) स्थान समुत्कीर्तन (६) प्रत्यय (७) भावचूलिका (८) त्रिकरण चूलिका (६) कर्म स्थितिबन्ध। कर्मों के भेद प्रभेदों का वर्णन करने वाला यह प्रमुख ग्रन्थ है। आचार्य नेमिचन्द्र का समय ईस्वी सन् की दशम शताब्दि का उत्तरार्द्ध है।

पाण्डे हेमराज ने अपनी गद्य टीका के प्रारम्भ अथवा अन्तिम भाग में रचना काल का उल्लेख नहीं किया है लेकिन पं० परमानन्द जी शास्त्री ने इसका रचना-

काल संवत् १७१७ लिखा है। इन्होंने अपनी इस भाषा का कोई आधार नहीं दिया है। जयपुर के ठोलिया मन्दिर में इसकी एक पाण्डुलिपि संवत् १७२० की तथा हमारे संग्रह में संवत् १७२६ में लिपिबद्ध पाण्डुलिपि सुरक्षित है। संवत् १७२० की पाण्डुलिपि उसी लिपिकर्त्ता दीना की है जिसने इसके पूर्व पञ्चास्तिकाय गद्य टीका की प्रतिलिपि की थी।

हेमराज ने प्रस्तुत ग्रन्थ के आदि अन्त में अपने सम्बन्ध में लिखित प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

प्रारम्भ— ओं नमः सिद्धेभ्यः। अथ कर्मकाण्ड की बालबोध टीका हेमराज कृत लिख्यते।

अन्तिम भाग—इयं भाषा टीका पंडित हेमराज कृता स्वबुद्धयनुसारेण। इति श्री कर्मकाण्ड भाषा टीका।

संवत् १७२६ वर्षे आसुनि मासे कृष्णपक्षे ७ सप्तम्यां सोमवासरे लिखतं साह श्री थोमसी आत्मपठनार्थं। लिखितं पाठिग विजैराम। श्री शुभं भवतु।

कर्मकाण्ड भाषा टीका भी अन्य ग्रन्थों की भाषा टीका के समान है। इसके गद्यांश का एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

आयुषि भव विपाकीनि नरकायु तिर्यंचायु मनुष्यायु देवायु ए चारि आयु भव विपाकी कहिए। जातैं इनका भव कहिये पर्याय सोई विपाक है। आयु के उदय तैं पर्याय भोगइ ए है। तातैं आयु कर्म भव विपाकी कहिए। क्षेत्र विपाकीनि आनुपूर्व्याणि। नरकायु पूर्व्वी तिर्यंचानुपूर्व्वी मनुष्यानुपूर्व्वी देवानुपूर्व्वी। चार आनुपूर्व्वी क्षेत्र विपाकी है। जातैं इनका विपाक क्षेत्र है तातैं क्षेत्र विपाकी है। अवशिष्टानि अष्टसप्ततिः जीव विपाकीनि पुद्गल विपाकी भव विपाकी क्षेत्र विपाकी पूर्व कहे जे कर्मएकसौ अठतालीस प्रकति मध्य तिनतै ते बाकी रहे अठहत्तरि कर्म ते जीव विपाकी कहिए ते जीव विपाकी कर्म अगली गाथा में नाम लेकैं कहे है।

प्रस्तुत टीका में कवि ने केवल गाथा का अर्थ ही किया है अपनी अन्य टीका ग्रन्थों के समान भावार्थ नहीं दिया। इससे भाषा में संस्कृत शब्दों की अधिक भरमार आ गयी है।

९ सुगन्ध दशमी व्रत कथा

सुगन्ध दशमी व्रत भादवा सुदि की शुक्ल पक्ष के दशमी के दिन रखा जाता है। यह व्रत १० वर्ष तक किया जाता है और फिर उद्यापन के साथ इसको रखा जाता है। समाज में इसका अत्यधिक महत्त्व है। शास्त्र भण्डारों में बहुत सी पाण्डुलिपियाँ इसी व्रत के उद्यापन के उपलक्ष में भेंट स्वरूप दी हुई संग्रहीत है। इस दिन सभी मन्दिरों में धूप खेई जाती है। इस व्रत को जीवन में सफलता पूर्वक करने से दुर्गन्ध युक्त शरीर भी सुगन्धित बन गया था यही इस व्रत का महात्म्य है।

इस कथा के मूल लेखक विश्वभूषण हैं जिसको हिन्दी पद्य में हेमराज ने रचना की थी। रचना स्थान गहेली नगर था जिसका कवि ने निम्न प्रकार उल्लेख किया है।

व्रत सुगन्ध दसमी विख्यात, अतिसुगन्ध सौरभता गात।
यह व्रत नारि पुरुष जो करै, सो दुख संकट सहु परे ॥३६॥
सहर गहेली उत्तिम वास, जैनधर्म को करै प्रकास।
सब श्रावक व्रत संयम धरैं, दान पूजा सौं पातिक हरैं ॥३७॥
हेमराज कवियन यौं कही, विस्वभूषन परकासी सही।
मन वच काइ सुनैं जो कोइ, सो नर स्वर्ग अमरपति होइ ॥३८॥

यह छोटी सी कृति है जिसमें ३८ पद्य हैं। इसकी एक पांडुलिपि जयपुर के पटोदी के दिगम्बर जैन मन्दिर में संग्रहीत है। पाण्डुलिपि संवत् १६८५ की है। पाण्डुलिपि भिण्ड नगर के रामसहाय ने की थी।

१० नयचक्र भाषा

नयचक्र का दूसरा नाम आलाप पद्धति है। इसके मूलकर्त्ता आचार्य देवसेन है जिनका समय संवत् ९९० अर्थात् १०वीं शताब्दि माना जाता है। नयचक्र मूल रचना प्राकृत भाषा में है। इसमें प्रारम्भ में छह द्रव्यों का (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल) द्रव्य, गुण और पर्याय की अपेक्षा वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् द्रव्य स्वभाव का कथन किया गया है। फिर सात नयों का जिनके नाम से यह रचना विख्यात है वर्णन मिलता है। नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र

शब्द समभिरूढ एवं एवंभूत के भेद से सात प्रकार के हैं। इन नयों का बहुत ही विस्तृत किन्तु सरल एवं बोधगम्य परिचय दिया गया है। हेमराज ने बिना किसी गाथाओं को उद्धृत किये हुये नयचक्र ग्रन्थ का सार लिखा है। यद्यपि नयचक्र का दार्शनिक विषय है लेकिन हेमराज ने उसे एकदम सरल बना दिया है। एक उदाहरण देखिये—

(१) वहाँ सर्व नय को मूल दोइ। एक द्रव्यार्थिक, एक पर्यायार्थिक। इनही का उत्तरर भेद सात और है सो लिखिये है। १. नैगम, २ संग्रह, ३ व्यवहार ४. ऋजुसूत्र, ५. शब्द, ६. समभिरूढ एवं ७. एवंभूत। इस तरह ए सात नय दोय मूल अरु सात ए सर्व मिलि नव नय हुई। इति नयाधिकार। इनको अर्थ आगे यथा सम्बन्धे लिखिये होगी।

नय ही को अंग ले करी वस्तु को अनेक विकल्प लिए कहनों सु उप नय कहिये सो उप नय तीनि भेद व्यवहार ही के विषै संभवे सो लिखिये है। सद्‌भूत व्यवहार असद्‌भूतव्यवहार, उपचरत सद्‌भुत व्यवहार एवं उप नय का तीन भेद। अब पूर्वोक्त नय का विस्तार पणे भेद लिखिए है।

× .... × .... × .... × .... ×

(२) तिहां प्रथम निश्चयै नय हुंती व्यवहार नय। तिहां वस्तु की जो अभेद पणों बतावै सो निश्चय। अरु वस्तु को भेद पणों बतावै सो व्यवहार नय। तिहां पहिली जो निश्चय नय तिस के दोय भेद। एक शुद्ध नय दूजी अशुद्ध नय। तिहां जो निरुपाधि रूप सो सुध निश्चय नय जैसे केवलग्यानादयो जीव। अर जो उपाधि करि संयुक्त है सो असुध निश्चय नय जैसे मति ज्ञानोदयो जीव। एवं निश्चय का दोय भेद जाणवा।

पृष्ठ १७

उक्त दो उदाहरणों से पता चलता है कि नयचक्र की भाषा राजस्थानी प्रभावित अवश्य है लेकिन उसका स्वरूप एवं शैली दोनों ही परिस्कृत है। सैद्धान्तिक बातों के वर्णन में ऐसा सरल एवं किन्तु परिस्कृत भाषा का प्रयोग अवश्य ही प्रशंसनीय है।

प्रस्तुत रचना को हेमराज ने संवत् १७२६ में पूर्ण किया था। जिसका उल्लेख कवि ने ग्रन्थ के अन्त में निम्न प्रकार किया है—

हेमराज को बीनती, सुनियो सुकवि सुजान।
यहु भाषा नयचक्र की, रचि सुबुद्धि उनमान ॥४॥

सतरहसे छबीस को, संवत फागुण मास।
उजल तिथि दशमी जिहां कीनो बचन बिलास ॥५॥

आगरा में उन दिनों पं० नारायणदास थे। जो खरतर गच्छ के जिनप्रभसूरि के प्रशिष्य एवं उपाध्याय लब्धिरंग के शिष्य थे। हेमराज ने पं० नारायणदास से नयचक्र की भाषा करने के लिये प्रार्थना की। इसके पश्चात् हेमराज ने पं० नारायणदास की सहायता से नयचक्र की गद्य में भाषानुवाद किया। जिसका कवि ने निम्न प्रकार किया है—

दोहरा— सिरीमाल गछ खरतरै, जिनप्रभ सूरि संतानि।
लबधि रंग उवझाय मुनि, तिनके शिष्य सुजानि॥
विबुध नारायणदास सों, यहै अरज हम कीन।
क्यों नयचक्र सटीक हूं, पढ़ैं सबै परवीन ॥२॥

तिन्है प्रसन ह्वै कैं कही, भली भली यह बात।
सब हमहूं उदिम कियौ, रची बचनिका भांत ॥३॥

प्रस्तुत ग्रन्थ की एक पाण्डुलिपि संवत् १७६० भादवा बुदी भृगुवासर को बेघम गांव में लिपिबद्ध की हुई जयपुर के पांडे लूणकरण जी के मन्दिर में उपलब्ध है।

नयचक्र भाषा का आदि भाग निम्न प्रकार है—

बंदौ श्री जिन के बचन, स्याद्वाद नय मूल।
ताहि सुनत अनुभवत ही, होइ मिथ्यात निरमूल ॥१॥

निहचै अरु विवहार नय, तिनके भेद अनंत।
तिन्ह में कछु इक बरन हों, नाम भेद बिरतंत ॥२॥

११ गुरुपूजा

हेमराज ने आध्यात्मिक साहित्य के अतिरिक्त पूजा साहित्य भी लिखा था। उनके द्वारा रचित गुरुपूजा पं० पन्नालाल बाकलीवाल द्वारा प्रकाशित

बृहद्‌जिनवाणी संग्रह में प्रकाशित हो चुकी है। पूजा में पहिले अष्ट पूजा और फिर जयमाल है। कवि के गुरु संसार के भोगों से विरक्त होकर मोक्ष के लिये तपस्या करते हैं। वे भी भगवान जिनेन्द्र के गुणों का नित्य प्रति जाप करते हैं—

दीपक उद्योत सजोत जगमग, सुगुरुपद पूजौं सदा।
तम नाश ज्ञान उजास स्वामी, मोहि मोह न हो कदा।
भव भोग तन वैराग्यधार, निहार शिव पद तपत हैं।
तिहुँ जगतनाथ अधार साधु सु, पूज नित गुन जपत हैं।।६।।

पञ्च परमेष्ठी का साधु ही गुरु है। मुनि भी उसी का नाम है। वे राग-द्वेष को दूर कर दया का पालन करते हैं। तीनों लोक उनके सामने प्रकट रहते हैं वे चारों आराधनाओं के समूह हैं। वे पांच महाव्रतों का कठोरता से पालन करते हैं और छहों द्रव्यों को जानते हैं। उनका मन सात भंगों के पालन में लगा रहता है और उन्हें आठों ऋद्धियां प्राप्त हो जाती है।

एक दया पालैं मुनिराजा, राग द्वेष द्वै हरनपरं।
तीनों लोक प्रगट सब देखें, चारो आराधन निकरं।
पंच महाव्रत दुद्धर धारैं, छहों दरब जानें सुहितं।
सात भंग बानी मन लावै, पावें आठ ऋद्धि उचितं।।

गुरुपूजा की एक प्रति फतेहपुर (शेखावाटी) ने दिग० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में गुटका संख्या ७ में संग्रहीत है।

१२ नेमि राजमति जखडी

कविवर हेमराज लघु कृतियों की रचना करने में रुचि भी रखते थे। नेमिराजमति जखड़ी ऐसी ही एक लघु रचना है जिसमें नेमि राजुल का विरह वर्णन किया गया है। जखडी की एक प्रति जयपुर के बधीचन्द जी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत १२४वें गुटके में लिपिबद्ध है। इसकी प्रति देहली में तिलोकचन्द पटवारी चाकसू वाले ने संवत् १७८२ में की थी।

---

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची—भाग ३ पृष्ठ संख्या १९२.

१३ रोहिणी व्रत कथा

हेमराज ने कुछ कथा कृतियों की भी रचना की थी। रोहिणी व्रत कथा को उसने संवत् १७४२ में समाप्त की थी। इस कथा की एक प्रति दि० जैन मंदिर बोरसली कोटा में संग्रहीत है। कथा का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

> रोहणी कथा संपूरण भई, ज्यों पूरव परगासी गई।
> हेमराज ई कही विचार, गुरु सकल शास्त्र अवधार।
> ज्यों व्रत फल.... मैं कही, सो विधि ग्रंथ चौपई सही।
> नगर वीरपुर लोग प्रवीन, दया दान तिनको मन लीन ॥

कथा के उक्त अंश से पता चलता है कि इसकी रचना वीरपुर में की गयी थी। 'वीरपुर' आगरा के आस पास ही कोई ग्राम होना चाहिये।[1]

१४ नन्दीश्वर कथा

हेमराज की दूसरी कथा कृति नन्दीश्वर कथा है। कवि ने इसे इटावा नगर में निबद्ध किया था। वहाँ जैनों की अच्छी बस्ती थी तथा जैन पुरानों को सुनने में उनकी विशेष रुचि थी। कथा का अन्तिम अंश निम्न प्रकार है—[2]

> यह व्रत नन्दीश्वर की कथा, हेमराज परगासी यथा।
> सहर इटावो उत्तम थान, श्रावक करैं धर्म शुभ ध्यान।
> सुनै सदा जे जैन पुरान, पुरो लोक को राखै मान।
> तिहिए सुनो धर्म सम्बन्ध, कीनी कथा चौपई बंध ॥

१५ राजमती चुनरी

इस लघु कृति की एक प्रति फतेहपुर (शेखावाटी) के दिग० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।[3]

---

१ देखिये—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची—भाग पंचम पृ. सं. ४०६
२ वही
३ वही पृष्ठ सं. ११९८

१६ समयसार भाषा

पं० हेमराज ने आचार्य कुन्दकुन्द के सभी प्रमुख ग्रन्थों का भाषान्तर किया था। समयसार भाषा की उपलब्धि अभी तक हमें राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूचियाँ बनाते समय उपलब्ध नहीं हुई थी। इस ग्रन्थ की एक पाण्डुलिपि नागौर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है ऐसा उल्लेख डा० प्रेमचन्द जैन ने अपनी डेस्क्रिपटिव कैटालाग आफ मैन्युस्क्रिपट्स् में पृष्ठ 25 पर निम्न प्रकार दी है—

"समयसार भाषा—पं० हेमराज/पत्र संख्या १६४/आकार ११½"×५¼" दशा-जीर्ण/पूर्ण/भाषा हिन्दी (पद्य) लिपि-नागरी/ग्रंथ संख्या १०६०/रचनाकाल-माघ शुक्ला ५ सं० १७६६/लिपिकाल X।"

उक्त परिचय में रचना काल संवत् १७६६ दिया है जो पांडे हेमराज अथवा हेमराज गोदीका के साथ मेल नहीं खाता क्योंकि उक्त दोनों ही कवियों की रचनायें संवत् १७२६ तक मिली है जिसमें ४३ वर्ष का अन्तराला है। इसलिये हो सकता है यह लिपि संवत् हो। इसकी खोज चल रही है।

हेमराज गोदीका (तृतीय)

हेमराज नाम वाले ये तीसरे कवि हैं। ये दिगम्बर जैन खण्डेलवाल थे। गोदीका इनका गोत्र था। ये अध्यात्मी पंडित थे। उस समय सांगानेर क्रान्तिकारियों का नगर था। अमरा भौंसा जो तेरहपंथ के मुख्य आधार स्तंभ थे, वे भी सांगानेर के ही थे तथा उनका पुत्र जोधराज गोदीका भी सांगानेर निवासी थे। यह पूरा गोदीका परिवार ही भट्टारकों के विरुद्ध खड़ा हुआ था और उसमें उन्हें आंशिक सफलता भी मिली थी।

हेमराज गोदीका एवं जोधराज गोदीका संभवतः एक ही परिवार के थे तथा एक ही पिता के पुत्र थे। लेकिन दोनों में मतैक्य नहीं होने के कारण हेमराज को सांगानेर छोड़कर कामां जाना पड़ा। लेकिन ये दोनों ही विद्वान् थे। यह भी संयोग की ही बात है कि दोनों ने एक ही संवत् अर्थात् सं० १७२४ में प्रवचनसार की पद्य टीका समाप्त की थी। हेमराज सांगानेर से कामां नगर आये जबकि जोधराज सांगानेर में ही अपनी साहित्यिक सेवा करते रहे।

हेमराज की अब तक तीन कृतियाँ प्राप्त हो चुकी है जिनके नाम प्रकार हैं—
प्रवचनसार हिन्दी पद्य—रचनाकाल संवत् १७२४

उपदेश दोहा शतक— संवत् १७२५

भक्तिसार संग्रह — —

उक्त रचनाओं का विस्तृत परिचय निम्न प्रकार है—

१५ प्रवचनसार भाषा (पद्य)

प्रवचनसार का पठन पाठन समाज में प्रारम्भ से ही लोकप्रिय रहा है। आचार्य अमृतचन्द्र एवं जयसेन प्रभृति आचार्यों ने गाथाओं पर संस्कृत में टीका लिखी है। हिन्दी भाषा में सर्व प्रथम संवत् १७०६ में आगरा निवासी हेमराज अग्रवाल ने गद्य पद्य दोनों में टीका लिखी थी। हेमराज की गद्यात्मक टीका बहुत लोकप्रिय रही और उसी के आधार पर कामांगढ़ (राजस्थान) निवासी हेमराज खण्डेलवाल ने एक और हिन्दी पद्य टीका लिखी। जिसके पद्यों की संख्या १००५ है। हेमराज ने अपना परिचय देते हुये निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं—

सवैया इकतीसा

हेमराज श्रावक खण्डेलवाल जाति गोत भांवसा प्रगट क्योंक गोदीका बखानिये।
प्रवचनसार अति सुन्दर सटीक देखि कीने हैं कवित्त ते सुचित्त रूप आनीयें।
मेरी एक वीनती विबुध कविवंतनिसौं, बाल बुद्धि कवि को न दोष उर आनीयें।
जहाँ जहाँ छंद और अरथ अधिक हीन तहाँ शुद्ध करिकें प्रवान ग्यान ठानीयें ॥६१॥

दोहा— सांगानेर सुथान कौं हेमराज असथान।
अब अपनी इच्छा सहित, बसें कामगढ थान ॥६२॥
कामागढ सुबसुं बसइ, इति भीत नहि थाय।
कवित बंध प्रवचन कीयो, पूरन तहाँ बनाय ॥६३॥

उस समय कामां में अध्यात्म सैली थी उसी में प्रवचनसार की चर्चा स्वाध्याय होती थी।

इसकी रचना संवत् १७२४ की आषाढ सुदी ८ के शुभ दिन समाप्त हुई थी। कवि ने जिसका उल्लेख अपने पद्य में निम्न प्रकार किया है।

सत्रहसै चौबीस संवत् शुभ असुभ घरी।
कीयो ग्रंथ सुधीस देखि देखि कीज्यो छिमा ॥१००५॥

प्रवचनसार का पद्यानुवाद बहुत ही सुन्दर एवं भाव पूर्ण हुआ है। आगरा निवासी हेमराज पाण्डे का गद्य रूपान्तरण जितना अच्छा है उतना पद्य भाषान्तर नहीं है। उसने ४४१ पद्यों में ही प्रवचन के रहस्य को प्रस्तुत किया है जबकि हेमराज गोदीका (खण्डेलवाल) ने प्रवचनसार पर विस्तृत पद्य रचना की है जो १००५ पद्यों में पूर्ण होती है। दोनों ही कवि ब्रज भाषा भाषी प्रदेश के थे। कामां भी ब्रज प्रदेश में गिना जाता है।

आ गई पुन्य पाप कोई भेद नांही ऐसा निरधार करि को ईस कथन कुं संक्षेप में कहे है।

णहि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसोत्ति पुण्ण पावाण।
हिंडदि घोर मपारं संसारं मोह संछण्णो ॥२८२॥

टीका— नहिमन्यते य एवं नास्ति, विशेष इति पुण्य-पापयो।
हिंडति घोर मपारं, संसारं मोह संछन्नं ॥

सवईया इकतीसा—

पीके मद मोह कै परै है भवसागर मद,
आपनी पराइ को विचार न करतु है।
पुण्य के उदोतइ विषइ भोग सुख पाइयत,
तिन्ह कै विलास वै कु उद्यम धरतु है।
पाप उदे दुखी अंग होत विषइ भोगनि सौं,
जिन्ह कु विलोकि मय मानि कै डरतु है।
ऐसै पाप पुण्य तैं असाता साता वेदतु है।
सोई भवसागर मैं भांवरी भरतु है ॥२८३॥

दोहरा— पुण्य पाप की एकता, मानतु नांहि जु कोय।
सो अपार संसारमह, भ्रमत मोह सुत सोय ॥२८४॥
जइसइ शुभ अरु असुभमइ, निहचय भेद न होय।
त्यों ही पुन्यरु पापमइ, निहचय भेद न कोय ॥२८५॥
बेड़ी लोहरु कनक की, बंधन दुवइं समान।
त्योंही पुन्यरु पापमइं, बंधन मोह निदान ॥२८६॥

उक्त उदाहरण से यह जाना जा सकता है कि हेमराज गोदीका ने गाथा में निरूपित विषय को कितना स्पष्ट करके समझाया है। भाषा भी एकदम परिमार्जित है तथा साथ में सरल एवं बोधगम्य है।

उक्त पद्य रूपान्तरण हेमराज गोदीका ने अपने पूर्ववर्ती पाण्डे हेमराज अग्रवाल आगरा निवासी के प्रवचनसार भाषा (गद्य) के अध्ययन के पश्चात् किया था।

उक्त ग्रंथ की दो पाण्डुलिपियां जयपुर के दि. जैन तेरापंथी बड़ा मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। जिसमें एक पाण्डुलिपि कामा नगर में लिखी हुई है जो संवत् १७४६ की है।

२ उपदेश दोहा शतक

उपदेश दोहाशतक हेमराज गोदीका खण्डेलवाल की रचना है। इसके पूर्व उसने प्रवचनसार भाषा (पद्य) की रचना की थी। हेमराज ने शतक में अपना जो परिचय दिया है वह निम्न प्रकार है—

उपनो सांगानेरि को, अब कामागढ़ वास।
तहां हेम दोहा रचे, स्वपर बुद्धि परकास ॥९८॥
कामांगढ़ सुबस जहां, कीरतिसिंघ नरेश।
अपने खग बलि बसि किये, दुर्जन जितेक देस ॥९९॥
सत्रहसैंर पच्चीस की, बरतैं संवत सार।
कातिग सुदि तिथि पंचमी, पूरन भयो विचारि ॥१००॥

उक्त संक्षिप्त परिचय से इतना ही पता चलता है कि हेमराज सांगानेर में पैदा हुये थे तथा फिर कामांगढ़ में जाकर रहने लगे थे। उपदेश दोहा शतक की

रचना कामां नगर में ही की गयी थी। कामा एक सूबा था जिस पर कीर्तिसिंह का शासन था और उसने अपने शौर्य एवं पराक्रम से कितने ही देशों पर कब्जा कर लिया था। उपदेश दोहा शतक की रचना संवत् १७२५ कार्तिक सुदी पंचमी को समाप्त की गयी थी।

'उपदेश दोहाशतक' एक आध्यात्मिक रचना है जिसमें मानव मात्र को सुपथ पर लगाने, आत्मिक विकास करने एवं बुराइयों से बचने का उपदेश दिया है। जीवन में दया व दान को अपनाने का आग्रह किया गया है। साथ में यह भी लिखा है कि जिसने जीवन में दान नहीं दिया तथा व्रत एवं उपवास नहीं किये इसका जीवन ही व्यर्थ है क्योंकि मनुष्य तो मुट्ठी बांधे आता है और हाथ प्रसार कर चला जाता है—

दिये न दान सुपत्त को, किये न व्रत उर धारि।
आयौ मूंठी बांधि कैं, जासी हाथ पसारि ॥१३॥

यह मूढ आत्मा जगह २ आत्मा को ढूंढता-फिरता है जबकि इसी के घर में यह आत्मा बसता है जो स्वयं निरंजन देवता भी है—

ठौर ठौर सोधत फिरत' काहे अंध अवेव।
तेरे ही घर मैं वसैं, सदा निरंजन देव ॥२५॥

शतक में १०१ दोहा हैं। इसकी पांडुलिपि जयपुर के बधीचन्द जी के मंदिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।

३ गणितसार

कविवर हेमराज गोदीका गणितज्ञ भी थे। इन्होंने गणितसार के नाम से एक लघु रचना को छन्दोबद्ध किया था। इसमें ८८ दोहा छन्द हैं। जिनमें गणित के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत किया है। अब तक इस ग्रन्थ की एक प्रति जयपुर के दि० जैन मंदिर पाटोदियान में तथा एक पाण्डुलिपि आदिनाथ पंचायती मन्दिर बून्दी में संग्रहीत है। बून्दी वाली पाण्डुलिपि संवत् १७८४ की है तथा सांगानेर में लिपिबद्ध है इसलिये हमने गणितसार को हेमराज गोदीका की कृति माना है। जयपुर वाली

पाण्डुलिपि अपूर्ण है और उसका अन्तिम पृष्ठ नहीं है। गणितसार का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

प्रारम्भ—अथ श्री गणितसार लिख्यते—

दोहरा— श्रीपति शंकर सुगत विधि, निरविकार करतार।
अगम सुगम आनन्दमय, सुर नर पति भरतार ॥१॥
चिद्विलास निरविकलपी, अजर अजन्म अनन्त।
जगत शिरोमणि सुखदमन, जय जय जिन अरिहंत ॥२॥

अन्तिम पाठ

दोहरा

जाकै जैसो है सकति, ताकै वैसो काज।
यह विचार किंचित कह्या, करि मति सकति इलाज ॥८६॥
अरथ शब्द पद छंद करि, जहां होय सविरुद्ध।
कृपावंत होइ सजन जन, तहां सभारहु शुद्ध ॥८७॥
जो पढि याको सरदहै, शिक्षानक मैं सोई।
हेमराजमय जो प्रचल, ता सम अविचल होइ ॥८८॥

हेमराज (चतुर्थ)

तीन हेमराज नाम के विद्वानों एवं कवियों के अतिरिक्त एक और हेमराज का पता लगा है जो पांडे हेमराज के समकालीन थे। ये हेमराज भी तत्त्वज्ञानी एवं सिद्धान्त ग्रन्थों के ज्ञाता थे। उस समय आगरा में जैन समाज के विभिन्न सम्प्रदायों में पूर्ण समन्वय था इसलिये दिगम्बर ग्रन्थों की व्याख्या श्वेताम्बर विद्वान् किया करते थे। समयसार, प्रवचनसार, गोम्मटसार, पञ्चास्तिकाय जैसे ग्रन्थ श्वेताम्बर समाज में भी लोक प्रिय थे। हेमराज ओसवाल ने जब साहु आनंदराम जी खण्डेलवाल ने गोम्मटसार के बारे में प्रश्न पूछे तो उन्होंने सहर्ष उसकी शंकाओं का समाधान किया। जीव समाज इन्हीं शंकाओं पर आधारित ग्रन्थ है।

इन्हीं हेमराज की छन्द शास्त्र संभवतः एक और रचना है जिसकी एक पाण्डुलिपि जैसलमेर के भण्डार में सुरक्षित है। इसका रचनाकाल संवत् १७०६ दिया हुआ है। कवि की उक्त दोनों रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

जीव समास

हेमराज ने गोम्मटसार जीवकांड में से जीव समास से सम्बन्धित गाथाओं का संकलन किया है जिसका नाम उन्होंने जीव समास नाम दिया है। प्राकृत गाथाओं पर संस्कृत में विस्तृत अर्थ किया है। ग्रन्थ का प्रारम्भ और अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

प्रारम्भ—अथ गोम्मटसारे शरीरावगाहनाश्रयेण जीव समासान् वक्तुमनाः प्रथमं तावत् जघन्योत्कृष्ट शरीरावगाहन स्वामिनौ निर्दिशगति।

अन्तिम—इति विग्रह निरूपणार्थं तार्म्मणकाययोगे विग्रहगति निर्द्धारणार्थं श्रीमद्गोम्मटसारापुद्धृतं हेमराजेन ॥

उक्त ग्रंथ की पाण्डुलिपि जयपुर के पाण्डे लूणकरण जी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।

गोम्मटसार जीवकांड एवं कर्मकांड की गाथाओं के एवं पंचसंग्रह की गाथाओं के आधार पर अमितगति आचार्य ने नवप्रश्न चूलिका बनायी थी इसी की हिन्दी पद्य में बालाबोध टीका हेमराज ने लिखी थी। इस नव प्रश्न चूलिका में तीर्थंकर प्रकृति का प्रश्न साह आनन्दराम खण्डेलवाल ने उपस्थित किये थे जिनका समाधान गोम्मटसार को देख के उसका उत्तर तैयार किया था। जो ५२ पत्रों में पूर्ण होता होता है। इसकी एक पाण्डुलिपि जयपुर के दि. जैन मन्दिर पाटोदियान में संग्रहीत है जो संवत् १७८८ पौष सुदी १० को लिखी हुई है। हेमराज नाम के पूर्व लिपिकार ने श्वेताम्बर लिखा है। पाण्डुलिपि का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

इह नव प्रश्न चूलिका बालाबोध किंचित्मात्र तीर्थंकर प्रकृति का प्रश्न साह आणंदराम जी खण्डेलवाल ने पूछ्या। तिस ऊपर श्वेताम्बर हेमराज ने गोम्मटसार को देखि के क्षयोपक्षम माफिक पत्री में जवाब लिखणें रूप चर्चा की वासना

लिखी है। संत जन भूल चूक कौ समुभि करि सुधारि कै पठणा सं. १७८८ पौष सुदि १० ।

छन्दमाला

हेमराज की एक रचना छन्दमाला का उल्लेख डा. नेमीचन्द शास्त्री ने हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन में किया है। इसी छन्द माला की एक ताडपत्रीय प्रति जैसलमेर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। इस छन्द माला का रचना काल संवत् १७०६ है। सूची में भाषा गुजराती लिखा है।

इस प्रकार हेमराज नाम के चारों ही कवि हिन्दी साहित्य निर्माण के लिये वरदान सिद्ध हुये। हो सकता है अभी आगरा, मैनपुरी एवं उसके आस पास के मन्दिरों में स्थित शास्त्र भण्डारों के अवलोकन से और भी कृतियां मिल जावे लेकिन जो कुछ अब तक उनकी रचनायें मिली हैं वे ही उनकी कीर्ति गौरव गाथा कहने के लिये पर्याप्त है।

गद्य साहित्य का महत्व

पांडे हेमराज का सबसे अधिक योगदान प्राकृत ग्रंथों का हिन्दी गद्य में विस्तृत टीका सहित अनुदित करना है। पाण्डे राजमल्ल ने १७वीं शताब्दि के मध्य में जिस समयसार नाटक का हिन्दी में टब्बा टीका लिखी थी पाण्डे हेमराज ने प्रवचनसार पर हिन्दी गद्य में विस्तृत एवं व्यवस्थित टीका लिखकर स्वाध्याय प्रेमियों के लिये नयी सामग्री प्रस्तुत की। वास्तव में जैन कवियों ने जिस प्रकार पहिले अपभ्रंश कृतियों के माध्यम से और फिर राजस्थानी एवं हिन्दी पद्य कृतियों के माध्यम से जिस प्रकार हिन्दी भाषा की अपूर्व सेवा की थी उसी प्रकार हिन्दी गद्य में भी ग्रंथों की टीकाएं लिखकर हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में भी महत्व-पूर्ण योग दिया।

श्री जैसलमेर दुर्गस्थ जैन ताडपत्रीय ग्रन्थ भण्डार सूची पत्र—पत्र सं. २१८ क्रम संख्या ६३१.

प्रतिनिधि कवि के रूप में

पाण्डे हेमराज एवं हेमराज गोदीका दोनों को ही हम १७वीं शताब्दि के अन्तिम चरण का प्रतिनिधि कवि के रूप में मान सकते हैं। इन कवियों ने एक ओर जहाँ आध्यात्मिक रचनाओं के पठन पाठन में पाठकों की रुचि जाग्रत की वहाँ दूसरी ओर लघु रचनायें लिखकर जिन भक्ति की ओर भी जन सामान्य को लगाये रखा। वे एक ही धारा की ओर नहीं बढ़े किन्तु दोनों ही धाराओं का जल सिंचन किया। जिसमें समाज रूप खेत लहलहा उठा। पांडे हेमराज ने प्रवचनसार के पद्यानुवाद में तथा हेमराज गोदीका ने उपदेश दोहा शतक में अपनी जिस आध्यात्मिकता एवं पर हित चिंतन का परिचय दिया वह सर्वथा प्रशंसनीय है।

उपदेश दोहा शतक

(हेमराज गोदीका) विरचित

दिव्य दृष्टि परकासि जिहिं, जान्यौ जगत असेस ।
निसप्रेही निरदुंद नित, बंदौ त्रिविध गनेस ॥१॥
कुपथ उथपि थापत सुपथ, निसप्रेही निरगंथ ।
असे गुरु दिनकर सरिस, प्रगट करत सिवपंथ ॥२॥
गनपति हृदय बिलासिनी, पार न लहै सुरेश ।
सारद पद नमि कै कहौ, दोहा हितोपदेस ॥३॥
आतम सरिता सलिल जहं, संजम सील बखानि ।
तहां करहिं मंजन सुधी, पहुचै पद निरबाणि ॥४॥
सिव साधन कौ जानिये, अनुभौ बड़ौ इलाज ।
मूढ़ सलिल मंजन करत, सरत न एकौ काज ॥५॥
ज्यौं इन्द्री त्यौं मन चलै, तौ सब क्रिया अकथि ।
तातैं इन्द्री दमन कौं, मन मरकट करि हथि ॥६॥
तंत मंत मणि मौहरा, करै उपाय अनेक ।
होणहार कबहु न मिटै, घड़ी महूरत एक ॥७॥
पढ़ै ग्रंथ इंद्री दवै, करै जु बरत विधान ।
आपा पर समझै नहीं, क्यौ पावै निरवाण ॥८॥
तज्यौ न परिगह सौ ममत, मट्यौ न विषै बिलास ।
अरे मूंढ सिर मूंडि कैं, क्यौं छाड्यौ घर बास ॥९॥
पहली मनसा हाथि करि, पाछै और इलाज ।
काज सिद्धि कौं बांधीए, पानी पहली पाज ॥१०॥
ब्रह्मचर्य पाल्यौ चहै, घट्यौ न तिय स्यौ पेम ।
एक म्यान मैं द्वै खरग, कहौ समावैं केम ॥११॥

असन विविधि विजन सहित, तन पोषित थिर जानि।
दुरजन जन की प्रीति ज्यों, देहै दगौ निदानि ॥१२॥
दिये न दान सुपात्त कौं, किये न व्रत उरि धारि।
आयौ मूठी बांधि के, जासी हाथ पसारि ॥१३॥
जो नर जीवन जांनिया, अरु जानि न रख्या कौन।
सिद्ध समैं मुक्ति लालसौ, नरभव पांणी दीन ॥१४॥
सज्जन फुनि लघु पद लहै, दुर्जन के संग साथि।
ज्यौं सब को मदिरा कहै, क्षीर कुलालनि हाथि ॥१५॥
गज पतंग मृग मीन अलि, भये अख्य बसि नास।
जाकै पांचौं बसि नहीं, ताकी कैसी आस ॥१६॥
लाभ अलाभादिक विषै, सोवत जागत मांहि।
सुद्धातम अनुभौ सदा, तजैं सुधीजन नांहि ॥१७॥
कोटि जनम लौं तप तपैं, मन बच काय समेत।
सुद्धातम अनुभौ बिना, क्यों पावैं सिव खेत ॥१८॥
बजी आपदा संपदा, पूरब करम समान।
देखि अधिक पर को विभौ, काहे कुढत अज्ञान ॥१९॥
जुर्यौ पुनि संजोग ते, दस विधि विभौ विलास।
पुनि घटत घटि जाइगौ, गिनत मूंड थिर तास ॥२०॥
जब लौं विभौ तलाव जल, घटै न खरचत बीर।
तब लौं पूरब पुन्नि की, मिटै नहीं तलसीर ॥२१॥
जोग भोग हिंस्या करम, करत न बंधत जीव।
रागादिक संजोग तैं, बरन्यौ बंध सदीव ॥२२॥
लागि लागि मांगत फिरत, भुगत दीन कुदेव।
तोहि कहां सौ देहिंगे, मूढ करत तू सेव ॥२३॥
राग दोष जाकै नहीं, निसप्रेही निरदंद।
तासु देव की सेव सौं, कटै करम के फंद ॥२४॥
ठौर ठौर सोधत फिरत, काहे अंध अबेव।
तेरे ही घट मैं बसै, सदा निरंजन देव ॥२५॥

सोवत सुपिनी साथ सो, जागत जान्यौ झूंठ ।
यहै समुझि संसार स्यौं, करि निज भाव अपूठ ॥२६॥

पढत ग्रंथ अति तप तपत, अब लौं सुनी न मोष ।
दरसन ग्यान चरित्त स्यौं, पावत सिव निरदोष ॥२७॥

निकस्यौ मंदिर छांडिकैं, करि कटुंब कौ त्याग ।
कुटी माहि भोगत विषैं, पर त्रिय स्यौं अनुराग ॥२८॥

पुन्नि जोग तैं संपदा, लहि मानत मन मोद ।
सो तौ लैहैं है मुगध, परभव नरक निगोद ॥२९॥

कोटि बरस लौं धोइये, अठसठि तीरथ नीर ।
सदा अपावन ही रहै, मदिरा कुंभ सरीर ॥३०॥

फटे बसन तनहूं लटूयौ, घरि घरि मांगत भीख ।
बिना दिये कौ फल यहै, देत फिरत यह सीख ॥३१॥

पाप आन पर पीडतैं, पुंनि करत उपगार ।
यहै मतौ सब ग्रंथ कौ, सिव पथ साधन हार ॥३२॥

खोई खेलत बाल वै, तरुनायौ त्रिय साथि ।
बृधि समैं व्यापी जरा, जप्यौ न गौ जिन नाथ ॥३३॥

जा पैंडै सब जग तगौ, अरजैं है सब लोग ।
ता पैंडै जैहै तु हूं, कहा करत सठ सोग ॥३४॥

किये देस सब आप बसि, जीति दसौ दिगपाल ।
सबही देखत तैं चल्यै, एक पलक में काल ॥३५॥

मिलैं लोग बाजा बजै, पांन गुलाल फुलेल ।
जनम मरण अरु ब्याह मैं, है समान सौ खेल ॥३६॥

परम धरम सरवरि बसैं, सज्जन मीन सुमांनि ।
तिंम बकसी सौ कातियै, मनमथ कीर बखानि ॥३७॥

इंद्री रसना जोग मन, प्रबल कर्म्म मैं मोह ।
ए अधीन जीतैं सुभट, करहि मोष की टोह ॥३८॥

होत सहज उतपात जग, बिनसत सहज सुभाइ ।
मूंढ अहंमति धारि कैं, जनमि जनमि भरमाइ ॥३९॥

कांपत देखै सलिल मैं, गह्यौ थंभ जल तीर।
त्यौं परजाय बिनास तैं, मानत द्रव्य प्रधीर ।।४०।।
सीए समूरत साधि सब, करत काज संसार।
मूंडन समुझै भेव यहु, सुधरै सुधरन हार ।।४१।।
दुरजन नर अरु अगनि कौ, जानहु एक सुभाव।
जाही गहर बासि है, ताही देत जराइ ।।४२।।
करत प्रगट दुरजन सदा, दोष करत उपगार।
मधुर सचिक्कण पोष तैं, करत मार ज्यौं मार ।।४३।।
लागि विषै सुख कै विषै, लखै न प्रातम रूप।
इह कहवति साची करी, पर्यौ दीप लै कूप ।।४४।।
सुजस बड़ाई कारणैं, तजै मोक्ष सुख कोइ।
लोह कील के लेन कौ, ढाहत देवल सोइ ।।४५।।
तब लौ विषै सुहावनौ, लागत चेतन तोहि।
जब लौं सुमति बधू कहै, नैंही पिछानत मोहि ।।४६।।
ज्यौं धंतूर मातो लखै, मांटी कनक समान।
त्यौं सुख मानत विषय सौं, संगति कुमति अग्यान ।।४७।।
पाप हरन जिन पाप करि, करुना कर न बिनास।
किसे न लागे तीर तरि, तजि तजि प्रासापास ।।४८।।
हरै हरै सुद्धरत हरि, कर्म्म कर्म्म ते कर्म्म।
सेय चरन सिव सुख करन, इहौ बडौ जागि धर्म्म ।।४९।।
विषै प्रास पासा बंध्यौ, प्रास पास जग जीव।
ताही विषै बिलास कौ, उद्यम करत सदीव ।।५०।।
करत पुन्य सौ हेत जो, तजि कै पापारंभ।
सो न जीति है मोह कौ, गह्यौ जगत रणथंभ ।।५१।।
षट विधि त्रस थावर बसै, स्वर्ग मध्य पाताल।
सबही जीव अनादि के, परे मोह गल जाल ।।५२।।
उपजै द्रव्य सुकष्ट तैं, रक्षत कष्ट बखानि।
कष्ट कष्ट करि राखिये, द्रव्य कष्ट की खानि ।।५३।।

देव ग्रंथ गुरु मंत्र फुनि, औषध करत विधान।
जाकी जैसी भावना, तैसी सिद्धि निदान ।।५४।।

मिलि कैं कनक कुधातु सौं, भयौ बहुत विधि बांन।
त्यौ पुद्गल संजोग सौं, जीव भेद परवांन ।।५५।।

स्याम रंग तैं स्यामता, उज्जल पखान न होइ।
त्यो चेतन जड़ जोग तैं, जड़ता लहै न कोइ ।।५६।।

खीर नीर ज्यौं मिलि रहे, ज्यौं कंचन पाखान।
त्यौं अनादि संजोग मनि, पुद्गल जीव प्रवांन ।।५७।।

सिव सुख कारनि करत सठ, जप तप वरत विधान।
कर्म्म निज्जंरा करन कौं, सोहं सबद प्रमान ।।५८।।

तजै धर्म संपत्ति लखै, परखै विषै अजांन।
ज्यौं गजमोती तजि गहै, गुंजा भील निदान ।।५९।।

दुर्जन संगति संपदा, देत न सुख दुख मूल।
करै अधिक डर जगत मैं, ज्यौं अकाल के फूल ।।६०।।

सज्जन लहै न सोभ कौं, दुर्ज्जन संगति सेत।
ज्यौं कुंजर दर्प्पन विषै, हीन दिखाई देत ।।६१।।

सोरठा— इहै जलधि संसार, चढ़ि मुनि ग्यान जिहाज पर।
तत छिन पंहुचै पार, प्रबल पवन तप तपत जंह ।।६२।।

दोहा
सज्जन संगति दुर्जन कै, दोष अदोष जहोत।
ज्यों रजनी ससि संग तैं, सबै स्यामत खोत ।।६४।।

जाहि जगत त्यागी कहत, ता सम किरपन कौन।
सांची पूरब जनम की, मरत करत हू गौन ।।६४।।

खाइ न खरचै लाछि कौं, कहै कृपन जग जांहि।
बड़ो दानि वह मरत ही, छोड़ि चल्यो सब तांहि ।।६५।।

सिव साधै परिग्रह सहित, विषय करत वैराग।
उत्तम सेइ चाहत अमी, उत्तमता मुख काग ।।६६।।

बांम अंग बामा बसै, मदा चक्र करि ताहि ।
मप बसि कियो न काम जै, कहै जगत पति ताहि ॥६७॥
महा मल्ल मनमथ हियो, ध्यान मसनि उरि बाहि ।
द्वै मकाम निरसै भये, गनौ जगत पति ताहि ॥६८॥
चैतन तेरै भाग को, दोष प्रगट जगि जोइ ।
परसत वांकी दीठि ज्यौं, चंद एक तै दोइ ॥६९॥
ग्रीषम बरषा सीत रिति, मुनि तप तपत त्रिकाल ।
रतनत्रय बिनु मोक्ष पद, लहै न करत जंजाल ॥७०॥
रतनत्रय भारी [illegible], केवट [illegible] [illegible] ।
पंचम कालि न पाइए, भवदधि तरन जिहाज ॥७१॥
केवल ग्यानी के वचन, केवल ग्यान समान ।
बरतै [illegible] [illegible], पहुंचावै निरवान ॥७२॥
यौं बरतै परिगह विषै, सम्यक दिष्टी जीव ।
ज्यौं सुत अंतर भेद सौं, पोसै धाय सदीव ॥७३॥
जगत भुजंगम भौ सहित, विष सम विषै बखानि ।
रतन त्रय गुनपति रहै, नाग दमनि उरि आनि ॥७४॥
भए मत्त सौं मत्त जे, ते मति वाले जीव ।
गही टेक छूटै न ज्यौं, मरकट मूंठि अतीव ॥७५॥
परदारा परद्रव्य मल, लग्यो चीकनैं चित्त ।
मिटै न धोवै सलिल सौं, मंजन करत सुमित्त ॥७६॥
जौ तू मन उज्जल कर्‌यो, चाहै इहै उपाइ ।
पर दारा पर द्रव्य सौं, उलटि अलख गुनगाइ ॥७७॥
जोवत देह न धोइए, लगी चित्तरज मूढ ।
दर्पण के प्रति बिंब मल, मांजत मिटै न मूढ ॥७८॥
करि कछु सुकित तरुन वै, पीछै फुरै न कोइ ।
व्यापत जरा तिजजरा, अंगल पंगल होइ ॥७९॥
जगत चाक जिय कील दिढ, मिथ्या भाव कुंभार ।
माटी पिंड सुराइ भनि, भाजन विविध प्रकार ॥८०॥

हाड़ मांस विष्टा दिये, भरी कोथरी चाम।
ताहि कुकवि वर्णन करै, चंद मुखी कहि नाम ॥८१॥

सुद्धातम अमृत अर्थ, भए संत मुनि सूरि।
तिनहिं न भावै जगत को, गुन दयानिध भूरि ॥८२॥

मूढ़ विषै सौं सुख कहै, विषै न सुख को हेत।
स्वान स्वादि निज रुधिर को, कहै हाड़ रस देत ॥८३॥

मूढ़ अपुनपौ देह सौं, कहै इहै सुख खानि।
सो तौ सुर गीत हू विषै, महाकष्ट की दानि ॥८४॥

रतन त्रय संपति अखै, ताहि न लखै गँवार।
भूमि विकार विलोकि कैं, मानत संपति सार ॥८५॥

नरकैं नरकैं आन को, उर को उपजौ त्रास।
सो काहे को सेव हो, बहु विधि विषै विलास ॥८६॥

गनै न दुख परलोक को, सेवत विषै गँवार।
सब ही डर को लोपि कैं, ज्यौं पय पिवत मंजार ॥८७॥

ज्ञानी को तप तुच्छहू, करै मोक्ष सुख कार।
ज्यौं थोरै अक्षर सुकवि, ठानै अरथ अपार ॥८८॥

मोह बधक भव बनि बसै, काम वागुरा जानि।
रहै अटकि छूटै नहीं, मृग नर मूढ़ बखानि ॥८९॥

लै विराग करवाल करि, भव बनि बसै निसंक।
जीति सकै अप बसि किये, मोहादिक अरि बंक ॥९०॥

ज्यौं बरिषा रिति जेवरी, बिनु ही जल बल हीन।
त्यौं विषई वनिता निरखि, चित्त थकै गति लीन ॥९१॥

पिसुन प्रेम औसर वचन, ह्वै उतंग घटि जांहि।
सूषि छांह जुग जाम सम, बढ़ै सु छिन २ मांहि ॥९२॥

चंदन लेपादिक करैं, सीतल जनत अभंग।
मिटै न ग्रीषम उषमा, बिनु सज्जन कै संग ॥९३॥

कनक खात पावत कनक, मद को करै सुन्याय।
इह अपुरब मद कामिनी, चितवत चित बौराय ॥९४॥

संपति सरचत डरत सठ, मत संपति घटि जाय ।
इह संपति सुभ दान दी, बिलसत बढत सवाइ ॥९६॥
छंद मत्त भर भरथ की, जहां असुधता होइ ।
तहां सुकवि अवलोकि कैं, करहु सुद्ध सब कोइ ॥९७॥
उतनी सांगानेरि को, अब कांमां गढ वास ।
तहां हेम दोहां रचे, स्वपर बुधि परकास ॥९८॥
कांमां गढु सु बसे जहां, कीरति सिंघ नरेस ।
अपने खग बलि बसि किए, दुर्जन जितेक देस ॥९९॥
सतहसैर पचीस को, बरतो संवत सार ।
कातिग सुदि तिथि पंचमी, पूरन भयो विचार ॥१००॥
एक आगरे एक सौ, कीये दोहा छंद ।
जो हित दै बांचे पढै, ता उरि बढै अनंद ॥१०१॥

॥ इति हेमराज कृत उपदेश दोहा शतक संपूर्ण ॥

प्रवचनसार भाषा (पद्य)

रचयिता–पाण्डे हेमराज

अथ प्रवचनसार की भाषा लिख्यते।

छप्पय

स्वयं सिद्धि करतार करै निज करम सरम निधि।
आपै कारण स्वरूप होय साधन साधै विधि॥
संप्रदाना धरै आपको आप समर्पै।
अपादान आपतैं आपकों कर थिरथप्पै॥
अधिकरण होय आधार निज बरतै पूरण ब्रह्म पर।
षटविधि कारिक मय विधि रहित विविध एक अजर अमर॥१॥

दोहा

महातत्त्व महनीय मह महाधाम गुणधाम।
चिदानंद परमातमा, बन्दूं रमता राम॥२॥
कुनय दमन सुबरनि अवनि रमिनि स्यात पद शुद्ध।
जिनबानी मानी मुनिय, घट में करो हु सुबुद्धि॥३॥

चौपई

पंच इष्ट पद के पद बंदौ, सत्य रूप गुण गण अभिनंदौ।
प्रवचनसार ग्रन्थ की टीका, बालबोध भाषा सयनीका॥४॥
रचौं आप परकौं हितकारी, भवि जीव आनंद बिथारी।
प्रवचन जलधि अरथ जल लेहु, मति भाजन समान जल देहु॥५॥

दोहा

अमृतचंद कृत संस्कृत, टीका अगम अपार।
तिस अनुसार कहौं कछुक, सुगम अलप विस्तार॥६॥

वर्धमान स्तुति–कवित्त

सुर नर असुर नाथ पद वंदत, घातिय करम मैल सब धोये।
भयो अनंत चतुष्टय परगट, तारन तरन बिरतिहू सोये ॥
आतम धरम ध्यान उपदेसक, लोकोलोक प्रतच्छ जिन जोये।
ऐसे वर्धमान तीर्थङ्कर बंदे चरण भरम मल खोये ॥७॥
बाकी तीर्थङ्कर तेईस, सिद्धि सहित बंदू जगदीश।
निर्मल दर्शन ज्ञान सुभाव, कंचन शुद्ध अग्नि जिम ताव ॥८॥
बंदो सूर अवर उवझाय, सकल साधु मुनि बंदू पाय।
दरशन ज्ञान चरन तप बीज, पंचाचार सहित शिव बीज ॥९॥

क्षेत्रामें नमस्कार कथन–चौपाई

महा विदेह क्षेत्र है जहां, वरतमान जिन है तसु तहां।
ते सबही बंदू समुदाय, जुदे जुदे फुनि बंदू पाय ॥१०॥

पंच परमेष्ठी समुच्चय, नमस्कार कथन–छप्पय

नमति आदि अरहंत सिद्ध फुनि सूरन नत पद।
उपाध्याय फुनि नमित नमित सब साधु गलत मद ॥
यह परम पद पंच ज्ञान दरशन पालक नित।
तास रूप अवलंबि सुद्ध चारित्र प्रगट हित ॥
फुनि है सराग चारित्र के गरभित अंस लाय मल।
सो करम बंध सब त्याग करि, कहूं सुद्ध चारित्र फल ॥११॥
दरशन ज्ञान प्रधान जीव चारित्र चरन ध्रुव।
सुही भेद के द्वैक थिति वीतराग सराग हुव ॥
वीतराग शिव उदय करत अविचल अखंड पर।
सुर नर असुर विभूति देत चारित्र सराग भर ॥
तातैं सराग संसार सार फल वीतराग सुख मोक्ष वर।
यहु भेद भाव अवलोकि के हेय उपदेय करहु नर ॥१२॥

अडिल्ल

जो निहचै चारित्र धरम को आचरै।
मोहादिक तें हीन साम्य भावनि धरै ॥

निहचे चारित्र धरम साम्य है एक ही ।
तीर्थराज उपदेश करि सुमरु भली ॥१३॥

दोहा

यहु परिणामी आतमा जणवत चारित रूप ।
ता समय चारित्र सौं, तनमय एक सरूप ॥१४॥
जैसे गुटिका लोह कूं, होत अगनि संजोग ।
ता समय अवलोकि ही, अग्नि रूप सब लोग ॥१५॥
जैसे इंधण जोग तैं, अगनि इंधनाकार ।
तैसे परमातम भयो, चारित जोग अधार ॥१६॥
जीव शुभाशुभ सुद्ध सौं, प्रणवत तन्मय होय ।
ता समय अवलोकिये, वह एकता सोय ॥१७॥

कवित्त

विषय कषाय असुभ रागादिक पूजा दान भगति सुभ भाव ।
चारित शुद्ध शुद्ध परिणामी, जहां न अन संजोग कहाय ॥
यह तीन उपयोग लहे जिह तिह तैसी विधि करैं लखाय ।
सो चारित्र धरत परमातम, चारित रूप एव शिवराय ॥१८॥

दोहा

रक्तादिक संजोग तैं, फटिक बरन घन होत ।
त्यों उपयोगी आतमा, बहुविधि करन उद्योत ॥१९॥
जैसे करनी आचरै तैसो कथन कहाय ।
करनी त्यागत आतमा निहचै शुद्ध सुभाव ॥२०॥

सवैया

बिना परिणाम अस्ति रूप न द्रव्य को ।
कोऊ बिना द्रव्य परिणाम अस्ति न बखानिये ॥
द्रव्य गुन पर्याय येक ठौर होत तब ।
वस्तु अस्ति रूप सदा काल परवानिए ॥

जैसे दूध दही गोरस पर्याय दूध दही घृत हीन गोरस न मानिये।
तैसे परमात्मा द्रव्य गुन पर्याय शुभाशुभ रूप सो संजोग परवानिये
॥२१॥

अडिल

पीत तादि गुन कनक द्रव्य के जानिए।
कुंडलादि पर्याय बहुविधि मानिए॥
द्रव्य गुन पर्याय असित है कनक है।
इन की असित न जहां कनक नवि तनक है॥२२॥

दोहा

शुद्ध स्वरूपाचरन तैं, पावत सुख निरबान।
शुभोपयोगी आत्मा, स्वर्गादिक फल जान॥२३॥

चेसरी छंद

विषय कषाई जीव सरागी करम बंध की परनति आगी।
नहीं शुद्ध उपयोग बिचारी, तातै विविधि भांति संसारी॥२४॥
तपत नीव सीचत नर कोई, उपजत दाह सांति नहीं होई।
त्योंही शुभोपयोग दुख आनै, देव विभूति तनक सुख मानै॥२५॥
शुभोपयोग शक्ति सुनि भाई, इन्द्रयाधीन स्वर्ग सुखदाई।
छिन में होई जाई छिन माहे, शुद्धाचरण पुरुष क्यों चाहे॥२६॥

छप्पय

फटत वसन तन लटित घटित अहखडु घर घर।
अधिक क्रूर पुनि कुटिल भीम सम फिरत सुघर घर॥
कटुक वयन दुःख दयन नयन सुख कबहु न सुलव॥
सरस भखि भरि उदर पूरि भोजन नहि तुलव।
अवलोकि विभव परताप पर कुद्रि बुद्रि छत्तिय कर।
यह असुभ करम परसाद फल घरमत पुरुष न कर॥२७॥
कीट पतंग लटादि स्याल संघादि विविधि पद।
वलय तुरंग कुरंग परस्पर वैर भयंकर॥
सीत घाम दुख जाय नगन तन भार पीठ धर।
नकरि पारधिय बंधि देत दुख पराधीन नर॥

यम कथन कहां लौं कीजिए अधिक भाख तिरजंचगति ।
सो असुभ करम परतक्ष फल तजत पुरुष परमज्ञ मति ॥२८॥
छेद भेद तापादि भूख तिस पीडत प्रानी ।
मारि मारि फुनि बांधि सहां सुनि एवहु बानी ॥
जनम जनम के बैर उदय देखिय विरुधि पर ।
एक समय अंतर न होय दुख कोय सहत नर ॥
[illegible] कथन [illegible] गति ।
सो असुभ कर परतक्ष फल तजत पुरुष परमज्ञ मत ॥२९॥

दोहा

नरक कुनर तिरजंच गति असुभ उदय महि जीव ।
ताके दुख पूरन न ह्वै, भरनम करत सदीव ॥३०॥

चेसरी छंद— असुभ उपयोग उदै की बातैं, भ्रमत जीव दुख पावत जातैं ।
त्याग रूप सर्वथा बखान्यो, यातें उपादेय सुभ मान्यो ॥३१॥
काहू एक काहू परकारा, शुभोपभोग चारित की धारा ।
क्रम क्रम उदय मोक्ष रस भीनों, तातें उपादेय शुभ कीनों ॥३२॥

सोरठा

अशुभपयोगी जीव चारित घातिक सर्वथा ।
हे भव भ्रमत सदीव, ज्ञानवंत नहीं आचरैं ॥३३॥

अडिल्ल

यहै शुभाशुभ नाम विचारि विलोकिये ।
आचारिय शुभ राग अशुभ को रोकिए ॥
निहचै दोऊ त्याग जगत को धूरि है ।
शुद्धातम परतक्ष दोहू तें दूरि है ॥३४॥

दोहा

सबही सुख तें अधिक सुख है आतम आधीन ।
विषयातीत बाधा रहित, शुद्ध चरन शिव कीन ॥३५॥
शुद्धाचरन विभूति सिव, अतुल अखंड परकास ।
सदा उदय इक रस लिये, दर्शन ज्ञान विलास ॥३६॥

बेसरी छन्द

ज्यों परमातम शुद्धोपयोगी विषय कषाय परहित उर योगी।
करै न उत्तर पूरब मानैं, सहज मोक्ष को उद्यम ठानै ॥३७॥

दोहा

इन्द्र नरिंद्र फणिंद्र सुख, सबै इन्द्रियाधीन।
शुद्धाचरन अखंड रस, उपमा रहित प्रवीन ॥३८॥

सवैया

जीव अजीव पदारथ ज्ञायक केवल ज्ञान सिद्धान्त बखानै।
भोग विषय अभिलाष तजै, तप संजम राग बिना उर ठानै
इष्ट अनिष्ट संजोग [illegible]
शुद्धपयोग मई मुनिराजसु तीनहु लोक बसै कर मानै ॥३९॥

कुंडलिया

शुद्धपयोग प्रसादतैं करम घातिया नासि।
सर्वज्ञेय ज्ञाता भये केवल ज्ञान प्रकासि॥
केवल ज्ञान प्रकासि छांडि करि पराधीन सुख।
तिहां स्वयम्भू नाम लाधि षट्कार आप रुख॥
सकल सुरासुर पूजि ज्ञान दरसन रस भोगी।
पायो निरमल रूप जानि मुन सुद्धपयोगी ॥४०॥

बेसरी छंद

करता करम करन मुनि भाई, संप्रदान यह यो सुखदाई।
अपादान अधिकरण विख्याता, निहचै षट्कारक शिवदाता ॥४१॥
निहचै षट् कारक ज्यों होई, आप शक्ति तैं साधिक सोई।
पराधीन साधिक व्यवहारी, अथिर रूप षट्कारक धारी ॥४२॥

सवैया

अतुल अखंड अविचल तिहुकाल सदा सासतो।
स्वरूप भोग्य भाव परमानिये शुद्ध उपयोग के प्रसाद ते स्वभाव पाय

यह उतपाद अविनास रस मानिये।
दूजे जे विभाव परिणाम राग द्वेष मोह ॥
कीये है विनास फेर अबै न बखानिये।
ऐसो है स्वयंभू भूतानागत वर्तमान ॥
उत्पाद व्यय ध्रौव्य ऐक समय जानिये ॥४३॥

दोहा

शुद्ध स्वभाव उपजत जाही तही अशुद्ध को नास।
ध्रौव्य रूप परमातमा, ऐक समय परकास ॥४४॥
सर्व द्रव्य परजायतैं उत्पति नास बखानि।
तातैं जीवादिकन की सिद्ध होत परवान ॥४५॥
सत्ता बिन कोऊ द्रव्य, सधत न अस्ति स्वरूप।
उतपति थिरता नासतैं, सत्ता सधत अनूप ॥४६॥

छप्पय

कबहु देव नर कबहु, कबहु तिर्यंच नरक कबहु।
पुग्गल उत्पति नास प्रकट जग जीव करत सबु ॥
कंकणादि आभर्ण कनक उत्पाद नास हुव।
कुंडल कर वस राव मृतका विविधि भेद हुव ॥
यह उभय अस्ति संसार मधि सर्व द्रव्य उर आनिए।
उत्पाद नास ध्रुव रहित जबु तबु जग लोप बखानिये ॥४७॥

दोहा

सर्व द्रव्य परजाय करि उत्पति नास सिद्धंत।
निज निज सत्ता सब मगन यह उपदेश करंत ॥४८॥

सोरठा

उत्पति नास बखानि काहे कुं तुम करत हो।
ध्रौव्य भाव परवान ऐसे क्यों न कहो सदा ॥४९॥
घट कुंडल नर देव कंकण कुंडल दूध दधि।
परतैं इतमे भेव, उत्पादिक गुन रहित ॥५०॥

चौपाई

सिद्ध अवर संसारी जीव ज्ञान भाव करि भोख्य सदीव।
ज्ञेयाकार ज्ञान परजाय उत्पादादि सकत समवाय ॥५१॥

सवैया-३१

कीयो है विनास जिन घातिका कर्म च्यार।
उदयो अनंत वर वीर तेज धरि कैं ॥
इन्द्रिया रहित ज्ञानानंद निज भाव वेदि।
ममता उछेदि पराधीन सुख हरि कै ॥
ऐसे भगवान ज्ञान दर्शन प्रकासवान।
आभर्ण भांति निरावर्ण दशा करि कैं॥
जैसे मेघ घटातीत दीसत अखंड जोति।
त्यों ही जीव सहज स्वभाव कर्म टरि के ॥५२॥

अडिल

भोजन सुख दुख भूख शरीर सम्बन्ध है।
तिनकैं केवल ज्ञान अबाध अबंध है ॥
उदय अतिंद्री ज्ञान सदा सुख रूप है।
अचल अखंड अभेव उद्योत अनूप है ॥५३॥

दोहा

लोह संसगति अग्नि कै लगैं न कबहू चोट।
त्यो सुख दुख वेदक नहीं लखत जीव तन वोट ॥५४॥

अडिल्ल

केवल ज्ञान स्वरूप केवली परनए।
सर्व द्रव्य परजाय प्रगट जग अनुभए ॥
अवग्रहादि जे भेद क्रिया करि हीन है ॥
यह अतीन्द्रीय ज्ञान सदा स्वाधीन है ॥५५॥

दोहा

जगत वस्तु आधीन को, सब इन्द्री गुन जानि।
अक्षातीत उदै भयो, निजाधीन निज ज्ञान ॥५६॥

बेसरी छंद

इन्द्रिय विषय भोग के थानी, सपरस वर्न गंध रसवानी।
जुदे जुदे अपने रस माहै, एक एक निज गुन अवगाहै ॥५७॥
तृपति न परत करत सुख सेती निज निज कम तैं वर्त्ततेती।
छिन में उदय अस्त छिन मांहै, खंड खंड ज्ञान अवगाहै ॥५८॥

दोहा

आन अक्ष के काज कौं करै न अक्ष जु आन।
निज निज मर्जादा लियें, बरतै अक्ष प्रवान ॥५६॥
सदा अतींद्रि ज्ञान की जानहु शक्ति अनंत।
सब इन्द्रिन के विषय सुख, एक समय झलकंत ॥६०॥

कवित्त

चेतन ज्ञान प्रवान सदा भनि ज्ञेय प्रवान ज्ञान गति जान।
लोकालोक प्रवान ज्ञेय सब तातैं ज्ञान सर्व गतमान।
ज्यौं पावक गर्भित ईंधन के दरसत ईंधन ज्ञान प्रवान।
त्यों ही छहों द्रव्य जग पूरित व्यापक भयो केवली ज्ञान ॥६१॥

दोहा

पीततादि निज गुन लियें, कुंडलादि परजाय।
इनही के गर्भित कनक, अधिकन हीन कहाय ॥६२॥
ज्ञान प्रवानन आत्मा, मानत कुमती कोई।
हीन अधिकता मत विषै, साधत आतम सोई ॥६३॥
जो लघु आतम ज्ञानतें, ज्ञान अचेतन होय।
अधिक ज्ञान तें मानिये ज्ञान घनो जड़ सोइ ॥६४॥
जहां अधिकता ज्ञान की, तहां जीव लघु होय।
जेतो ज्ञानतु अधिक है सपरसादि जड़ सोई ॥६५॥
जहां अचेतन द्रव्य है, ज्ञान घनों तहां नास।
ज्यौं पावक गुण ऊनतें, परै न जारै घास ॥६६॥

जुदे न पावक उष्णता, जुदे न चेतन ज्ञान ।
अधिक हीन के मान तैं, शाश्वत भिन्न प्रवान ॥६७॥
तातै चेतन ज्ञान सों, जहां अधिकता होइ ।
सो पुनि नाहि अचेतना, घट पटादि विधि सोइ ॥६८॥
ज्यों पावक गुन उष्ण है, त्यों चेतन गुन ज्ञान ।
अधिक हीन जो परनवैं, उपजत दोष निदान ॥६९॥
अधिक हीन नहीं आतमा, है गुन ज्ञान प्रवान ।
यह याको सिद्धांत सब, जानहु वचन निदान ॥७०॥
सकल वस्तु जो जगत की, ज्ञान मांहि झलकंत ।
ज्ञान रूप को वृषभादि जिन, प्रगटत भेद अनंत ॥७१॥

कवित

ज्यों मलहीन आरसी कै मध्य घटपटादि कहिए विवहार ।
निहचै घटपटादि न्यारे सब, तिष्टत आप आप आधार ।
त्यों ही ज्ञान ज्ञेय प्रतिबिंबित, दरसन एक समय संसार ।
निहचै भिन्न ज्ञेय ज्ञायक कहवति ज्ञान ज्ञेय आकार ॥७२॥

अडिल

घट पटादि प्रतिबिंब आरसी मांहि है ।
निहचै घट पट रूप आरसी नांहि है ॥
त्यों ही केवल ज्ञान ज्ञेय सब भासि है ।
अपने रुचै स्वभाव सदा अविनास है ॥७३॥

कवित्त

ज्यों गुन ज्ञान सुद्धी परमातम सो परमातम सो गुणज्ञान ।
धर्म अधर्म काल नभ पुग्गल ज्ञान रहित ए सदा अजांन ।
तातै ज्ञान शक्ति परमातम ज्ञान हीन सब जड परवान ।
ज्यों गुण ज्ञान त्यों ही सुख वीरज, यों आतम अनंत गुनवान ।७४।

दोहा

ज्ञान प्रवर परमातमा है अनादि सनमंध ।
ज्ञान हीन जे जगत मैं, सबै द्रव्य जड अंध ॥७५॥

छप्पय

ज्ञानी ज्ञान स्वभाव अवर जड़ रूप ज्ञेय सबु ।
आप आप गुन रक्त परस्पर मिल तन को कबु ।
नयन विषय ज्यौं नयन देखिये विविध वस्तु बहु ।
बिना किये परवेस जानि कर गए भरम सहु ।
निहुचै स्वरूप सब भिन्न भनि कथन एक व्यवहार मत ।
यह ज्ञान ज्ञेय सनमंध है दुरनिवार तिरकाल गत ॥७६॥

सवैया ३१

जैसे नीलमणि को प्रसंग पाय स्वेत पीर ।
नील रंग [illegible] न नीर [illegible] नीर है ।
जैसे नैन वस्तु को बिलोकि व्यापि रहै सब
यद्यपि तथापि भिन्न पंकज ज्यौं नीर है ।
मानों ज्ञेय भावकौं उखारि ज्ञान गिलि गयो
ऐसी ही विचित्रता अखंडित सधीर है ॥७७॥
देखन जानन की शक्ति ज्ञान नैन मैं होत ।
तातैं व्यापत ज्ञेय सौं, निहुचै भिन्न उद्योत ॥७८॥
जैसे दर्पण दरसि है घट पटादि आकार ।
निहुचै घट पट रूप सौं, दर्पण है अविकार ॥७६॥

केसरी छंद

जहां न ज्ञेय ज्ञान मैं आवै, तहां न केवलज्ञान कहावै ।
जो केवल सब ज्ञेय प्रकासी, तो सब ज्ञेय ज्ञान मैं भासी ॥
जब घट पट दर्पण मैं भासै, तब दर्पण सब नाम प्रकासै ।
घट पट प्रतिबिंबत नहि होई, दर्पण नाम न भासै कोई ॥

दोहा

घट पट दर्पण मैं भरा, दर्पण घट पट नांहि ।
ज्ञान ज्ञान मैं रम रह्यो, ज्ञेय ज्ञान के मांहि ॥८२॥

सोरठा

ज्ञेय ज्ञान सनमंध, है काहू उपचार करि ।
निहुचै सबै अबंध, आप आप रस मैं मगन ॥८३॥

चौपाई

त्याग ग्रहणावै न परसैं, केवल ज्ञान अेकपन वरसैं ।
ऐसन आतम कै गुण ऐसी, ज्ञायक वस्तु जगत मैं जैसी ॥८४॥

दोहा

[illegible] सकलि है [illegible], ज्ञेय प्रतिभास ।
त्याग ग्रहण पलटन क्रिया, ज्ञान दसा मैं नास ॥८५॥
जैसे चोखे रतन की, ज्योति अकंप प्रकास ।
सहज रूप थिरता लिये, त्यौं ही ज्ञान विलास ॥८६॥
बिन इच्छा प्रतिबिंब सब, दरसैं दरपण मांहि ।
त्यौंही केवल ज्ञान मैं, ज्ञेय भाव अवगाहि ॥८७॥
न्यारी दरसण आरसी, न्यारे घट पट रूप ।
त्यौं न्यारे ज्ञेय ज्ञायकी, यहै अनादि अनूप ॥८८॥

कवित्त

जे शुद्ध [illegible] ज्ञान करि जानत परमातम निज रूप असेष ।
सो परमातम सहज स्वभावनि ज्ञायक लोकालोक असेष ॥८९॥
तातैं श्री जिनवर इम भाषत श्रुत भाषी श्रुत केवल रेख ।
केवल ज्ञान अवर श्रुत केवल दोउ वेदत आतम भेष ॥
पूरन भाव अनंत सक्ति करि वेदत प्रगट केवली ज्ञान ।
श्रुत केवल केतीक शक्ति तैं क्रमवर्त्ती वेदत परवान ॥
दोउ एक ज्ञान निह्चै अनि, भेद भाव आवरण बखान ।
जैसे मेघ घटा आच्छादित, दीसत अधिक हीन दुति भान ॥९०॥

अडिल्ल

मतिज्ञानादिक भेद एक ही ज्ञान के ।
ज्यों बादल आवरन हुवै रहै भान के ॥
श्रुत केवल सामान्य विसेष विवेक है ।
निह्चै ज्ञायक जोति ज्ञान रवि एक है ॥९१॥

कवित्त

जिनवर कथित वचन की पंकति द्रव्य सूत्र कहिए परवान ।
ते सब वचन स्वरूप अनातम ताकै निमित भाव वह ज्ञान ।

सोई भाव सूत्र निहचै भनि द्रव्य सूत्र व्यवहार बखान।
ता नय करत ज्ञान परमातम भिन्न भेद भावै भगवान ॥९२॥

दोहा

द्रव्य सूत्र पुग्गल मई जामैं वचन विलास।
निर्विकल्प परमात्मा क्यों वनि है इक वास ॥९३॥
द्रव्य सूत्र के निमित करि, उपजत ज्ञान प्रवान।
तातैं श्रुत व्यवहार नय, गर्भित ज्ञान बखान ॥९४॥
श्रुत भव गाहक ज्ञान को, ताहै यहै व्यवहार।
निहचै उतपति ज्ञान की, ज्ञान माहि निरधार ॥९५॥
जाणि शक्ति है जीव मैं, सोही ज्ञान बखान।
जीव जानि है ज्ञान तैं, बनै न प्रातम जानि ॥९६॥
घट पटादि प्रतिबिंब सब, दरसत दर्पण माहि।
त्योंही ज्ञान प्रकास तैं, ज्ञेय भाव भवगाहि ॥९७॥
ज्ञानन भातम ज्ञान तैं, बिना ज्ञान जड़ जीव।
जीव ज्ञान की भिन्नता, कुमती कहे सदीव ॥९८॥
जीव ज्ञान की भिन्नता, साधत कुमति कोय।
ताके मत भातम द्रव्य, ज्ञान हीन जड़ होय ॥९९॥
घट पट जैसे जगत मैं, प्रगट अचेतन द्रव्य।
समय पाय ये होयगे, चेतन रूपी सर्व्व ॥१००॥

× × × × × × ×

अन्तिम पाठ—

मूल ग्रन्थ कर्ता भए, कुंदकुंद मतिमान।
अमृतचन्द टीका करी, देव भाष परवान ॥४२८॥
जैसो करता मूल को, तैसो टीकाकार।
तातैं अति सुन्दर सरस, वर्तै प्रवचनसार ॥४२९॥
सकल तत्व परकासनी, तत्वदीपका नाम।
टीका सुरसत देव की, यह टीका अभिराम ॥४३०॥

चौपई

बालबोध यह कीनी जैसे, सो तुम सुनहु कहु मै तैसे।
नगर आगरे में हितकारी, कौरपाल ज्ञाता अधिकारी ॥४३१॥
तिन विचारि जिय मैं यह कीनी, जो भाषा यह होय नवीनी।
अलप बुद्धि भी अर्थ बखानै, अगम अगोचर पद पहिचानै ॥४३२॥
इह विचार मन मैं तिह्रा राखी, पांडे हेमराज सौं भाषी।
आगैं राजमल्ल ने कीनी, समयसार भाषा रस लीनी ॥४३३॥
अब ज्यौं प्रवचन की ह्वैं भाषा, तौ जिन धरम बधै वृष साखा।
तातैं कछु' विलंबन कीज्ये, परम भावना अंग फल लीज्ये ॥४३४॥

दोहा

अवनीपति वंदहि चरन, सुगण कमल विहसंत।
साहजिहां दिन कर उदय, अरिगण तिमरन संत ॥४३५॥

सोरठा

निज सुबोध अनुसार, असे हित उपदेश सौं॥
रची भाष अविकार, जयवंती प्रगटो सदा ॥४३६॥
हेमराज हित आनि, भविक जीव के हित भणी -
जिणवर आण प्रवान, भाषा प्रवचन की करी ॥४३७॥

दोहा

सत्रहसैं नव उत्तर, माघमास सित पाष।
पंचमि आदितवार कौं, पूरन कीनी भाष। ४३८॥

इति श्री प्रवचनसार भाषा पांडे हेमराज कृत संपूर्ण। लिखतं दलसुख सुहाड्या सीली सवाई जयपुर मध्य लिखी। श्री श्री श्री।

प्रवचनसार भाषा (कवित्त बंध)

रचयिता–हेमराज गोदीका

अथ श्री प्रवचनसार सिद्धान्त कवित्त बंध भाषा लिख्यते/अथ परमात्मा को नमस्कार

अरिल्ल छन्द

ध्याय अगनि करि कर्म कलंक सबै दहै
नित निरंजन ग्यान सरूपी ह्वै रहै ।
व्यापक ज्ञेयाकार ममत्त निवारि कैं,
सो परमातम मैं नमौं उर आनि कैं ॥१॥

अथ आदिनाथ स्तुति सवैया—31

आदि उपदेश सिव साधन बतायौ, सोइ गावत सुरेश जाम तारन तरन है ।
जाके ग्यान मांहि लोकालोक प्रतिभासित है,
सोभित अनूप कंचन वरन है ।
जुगल धरम की धरनि के निवारन कौ,
आतम धरम के प्रकास कु करन है ।
ऐसो आदिनाथ हेम हाथ जोरि वंदत है,
सदा भवसागर मैं सबको सरन है ॥२॥

अथ पंच परमेष्टी को नमस्कार—दोहरा

अरिहंतादिक पंच पद, नमहुं भक्ति जुत तास ।
जाके सुमिरन ध्यान सौ, लहै स्वर्ग सिव वास ॥३॥

अथ सरस्वति स्तुति—मरहटी छंद

वंदौ पद सारद भवदधि पारद सिव साधन को सेत,
निरमल बुधिदाता जगति विख्याता सेवत मुनि धरि हेत ।

सो जिनवर बानी त्रिभुवन मानी दिव्य वचन भंडार।
हौं कुनिवर पोऊ कवित्त बनाऊं पूरन प्रवचनसार ।।४।।

अथ कविनय नाम छप्पय छन्द

कुंदकुंद मुनिराज प्रथम गाथा बंध कीनो,
गरभित अरथ अपार नाम प्रवचन तिन्ह दीन्हौ।
अमृतचंद फुनि भये ग्यान गुन अधिक विराजित
गाथा गूढ बिचारि सहंस्कृत टीका सजित।
टीका जुमाह जो परथ मनि बिना विबुध को ना लहै
तब हेमराज भाषा वचन रचित बालबुध सरदहै ।।५।।

बेसरी छंद

पांडे हेमराज कृत टीका पढत पढत सबका हित नीका।
गोपि अरथ परगट करि दीन्हो सरल वचनिका रचि सुख लीन्हो ।।६।।

चौपई

टीका तत्व दीपका नाम, हरत अग्यान तिमर सब धाम।
आमें दरब कथन अधिकार, पढत प्रगटत ग्यान अपार ।।७।।

अथ कवि लघुता कथन—सवैया ३१

जैसे कोऊ बालक बिलोकि ससि बिंब दुति।
करै कर ऊरघ उचकि भरे बाधि हो।
जैसे मन कायर करन कहै भूक जहां तहां।
घन सूरि हरि हाथिन के जथि है।
जैसे कर चरन ते हीन बल खीन नर धरै,
उर उद्यम जलधि पैसि मथि है।
तैसे हैं अजान अंक मात न पिछानो जाहि,
प्रवचनसार को न पार कैसो कथि है ।।८।।

अथ ग्रंथ स्तुति तथा कवि लघुताई कथन सवईया—३१

जैसे करहू पर्वत को मारग विषम लहू
दीसत उतंग श्रृंग सैल को सी धार है।

तहाँ एक चतुर सिलावट बनाय दई
पैंडीन की पंकति सु सुगम सुढार है।
त्योंही प्रवचनसार परमागम अगम अति
गूढ गति अरथ सु अधिक अपार है।
पंडित सटीक करि कोमल प्रकासि दयो
मेरी हू अलप मति ताके अनुसार है ॥९॥

आगे श्री कुंदकुंदाचार्य प्रथम ही ग्रंथ आरंभ विषै मंगलाचरण निमित्त नमस्कार करै है[1]

कवित्त छन्द

सुर नर असुर नाथ पद वंदित घातिय करम मैल सब धोये,
भयो अनंत चतुष्टय परगट तारन तरन विरद तिह्न लीये।
आतम धरम ध्यांन उपदेसक लोकालोक प्रतक्ष जिन जोये।
ऐसे वर्धमान तिर्थंकर वंदत चरन भरम मल खोये ॥११॥

चौपई

बाकी तिर्थंकर तेइस, सिद्धि सहित बंदौ जगदीश।
निरमल दरसन ग्यांन सुभाव, कंचन सुद्ध अगनि जिम ताव ॥१२॥

× × × × × × × ×

अन्तिम पाठ

आगे श्रवणाभास मुनि कैसा है य कथन करै है—सवैया बाईसा
जो मुनि संयम भाव अराधि करै तप साधि सिद्धंत सबै,
जो परमागम सो परमातम भेद विचार लहै न जबै
जो वरसै जग मैं मुनि सौं फुनि सो मुसौ कहियेन कबै
तास बिनो करि येन कछु तिन्ह ते नहि संमिक ग्यान फवै ॥६४२॥

---

1. गाथा एवं उनकी संस्कृत टीका को यहां नहीं दिया गया है। केवल कवित्त बंध भाषा को ही दिया जा रहा है।

आगे यथार्थ मुनि पद संयुक्त मुनि की विनायिदि क्रिया जो न करै सो चारित रहत है यह दिखावै है—

दोहरा

जो मुनिस को देखि मुनि, करै दोष दुरभाव ।
सो मुनि लहै कषाय हगौं, चारित भंग महान ॥९४५॥

आगे जो जाति भाव करि उत्कृष्ट है ताकौ जो आप तै हीन आचरै सो अनंत संसारी है यह दिखावै है—

दोहरा

जो मुनि आन मुनीस पै, चाहै आदर भाव ।
सो मुनि भवदधि तिरन को, लहै न कबहू दाव ॥९४६॥
कहा भयौ जो मुनि भयौ हम फुनि मुनिव्रत धार ।
ऐसे मुनि के गर्व तै, लहै न भवदधि पार ॥९४७॥

आगे आप जाति भाव करि उत्कृष्ट हैं । जो गुणहीन की विनयादिक करै तौ चारित्र का नास होय यह दिखावै है-दोहरा

जो मुनि गुन उतकिष्ट धर करै जघनि सौ संग ।
सो मिथ्या जुत जगत मैं, कहियै चारित भंग ।.९४९।।
हीन संगति ते हीनता, गुर ते गुरता जानि ।
सम ते सम गुन पाइये, यह संगति परवानि ॥९५०॥

आगे कुसंगति मनै करै है– **विलंबित छंद**

करकै मुनि आगम ठीकै, परमारथ जानतै नीकै ।
तप साधि कसाय न आनै, उपयोग अकंप सुठानै ॥९५२॥
ममता तजि संजय धारै, तिर आप सु औरनि तारै ।
जब लौकिक को सुंग ठानै, छिन मैं मुनि चारित भानै ॥९५३॥
जिय पावक कै संग पानी, निज सीतलता लहि भानि ।
मुनि लौकिक लक्षण जैसो, बरनै जिन आगम तैसो ॥९५४॥

नोट— ९४३, ९४५, ९५१ संख्या गाथा है ।

आगैं लौकिक मुनि का लक्षण कहै है—सवैया २२

जो निरग्रंथ दिक्षा धरि कैं, बनवास बसै मुनि को पद धारैं
संयम सील क्षमा तप आचरि जोतिक वैदक मंत्र विचारैं।
सो जग मैं मुनि लौकिक जानहु, चारित भिष्ट सिद्धांत उचारैं।
जे मुनिराज बिराजत उत्तम, ते तिन्ह को परसंग निवारैं॥६५६॥

आगैं भली संगति कीजिए यह दिखावैं है—

गुन समान तें गुन अधिक, तासौं करिये संग।
जासौं सिव सुख पाइये, चारित रहै अभंग॥६५८॥
सीतल जलधर की नमें, सीतलता न घटाय।
त्योंही संग समान सौं गुन समान ठहराय॥६५९॥
दै कपूर धरि छाह जल, अधिक सीत ह्वै जात।
त्यौं ही गुर के संग तें, मुनि गुर पद को पात॥६६०॥
पावक संगति सीत जल, छिनक माझ तप जात।
त्यौं कुसंग के संग त्यौं, गुन अवगुनता पात॥६६१॥

बेसरी छंद

पहलैं सुभपयोग मुनि धारैं, क्रम क्रम संजम भाव विचारैं।
जब संजम उतकिष्ट बढावैं, तब मुनि परम दसा को पावैं॥६६२॥

दोहा

परम दसा धरि कैं मुनी, पावैं केवल ग्यान।
जो आनंद मैं सास्वतो, चिदानंद भगवान॥६६३॥

इति श्री शुभोपयोगाधिकार पूर्ण हुवा। आगै पंच रत्न कहै है। पंच गाथानि करि। अथ पंच रत्न नाम कथन।

बेसरी छंद

प्रथम तत्व संसार बखानो, दुतिय मोख तत्व पहिचानो।
त्रितिय तत्व सिद्ध साधन कीजै, सिव साधक पांचक फुनि कीजै॥६६४॥

जो सिद्धांत फल लाभ बतावें, पंचम तत्व जिनागम गावें।
ये ही भव सिव की थिति साधै, अनेकांत मत ताहि अराधै ॥६६५॥
ये ही पंच रतन जग मांहि, यह गरंथ इन्ह की परछांही।
तातै पंच रतन जयवंता, होहु जगत मैं जिन भाषंता ॥६६६॥

अथ संसार तत्व कहै है— **कवित्त**

जिन मत विषै दरब लिंगी मुनि, धरि है नगन अवस्था जोई।
यै परमारथ भेद न जानत, गहि विपरीत पदारथ सोई।
कहै यहै ही तत्व नियत नय, यौ उरमानि रहत इहि लोई।
काल अनंत भ्रमत भुंजत फल, यहु संसार तत्व जगि होई ॥६६८॥

आगै मोक्ष तत्व को प्रगट करै है— **सवैय्या २३**

जो मुनिराज स्वरूप विषै भरतै तजि राग विरोध दसाकौ,
जो निहचे उर आनि पदारथ नीर दयो भव वास बसाको।
जो न मिथ्यात क्रिया पद धारत जारत है मति मोह दसाको।
सो मुनि पूरन ताप दई कहियं नित मोष सरूप आसाको ॥६७०॥

आगे मोक्ष तत्व साधक तत्व दिखाइए है—**सवैया २३**

जो चउबीस परिग्रह छंडित दिव्य दिगंबर को पद धारै।
जो निहचे सबु जानि पदारथ, आगम तत्व अखंड विचारै।
जे कबहु न विषै सुख राचत, राग विरोध कलंक निवारै।
तै मुनि साधक है सिव के फुनि, आप तिरै अरु औरनि तारै ॥६७२॥

आगे मोक्ष तत्व का साधन है तत्व सर्व मनोवांछित अर्थनि का स्थान कहै यह दिखावै है— **कवित्त**

जो मुनि वीतराग भावनि को प्रसत हवं सो सुद्ध कही जे।
जाके दरसन ग्यान सुद्ध भनि ताही कै सिव सुद्ध लहीजे।
सो मुनि सुद्ध सिद्ध सम जानहु, जाके चरन नमत सुख लीज्यै।
मन वंछित धानक सिव साधन, करि कै भक्ति महारस पीजे ॥६७४॥

नोट—६६७, ६७१, ६७३ संख्या गाथाओं की है।

आगे शिष्य जन को शास्त्र का फल दिखाय शास्त्र की समाप्ति करे है—

कवित्त

जो नर मुनि श्रावक करि याको, धारत जिन आगम अवगाहै।
प्रवचनसार सिद्धंत रहसि को, प्राप्त होत एक छिन माहै।
भेदाभेद सरूप वस्त को, साधत सो आतम रस चाहै।
सो सिद्धंत फल लाभ तत्व बल पूरव कर्म कलंकनि दाहै ॥६७६॥

इति पंच रत्न कथन समाप्त।

अथ ग्रंथ कर्ता कवि स्तुति—दोहरा

मूल ग्रंथ करता भये कुंद कुंद मतिमान।
अमृतचंद टीका करि देव भाषा परवांन ॥६७७॥

चौपई छन्द

पाछे हेमराज उपगारी नगर आगरे मैं हितकारी।
तिन्ह यहु ग्रंथ सटीक बनाये, बालबोध करि प्रगट दिखाये ॥६७८॥
बाल बुद्धि फुनि अरथ बखानैं, अगम अगोचर पद पहिचानैं।
अलप बुद्धि हम कवित बनाये, बुधि अनमान सबैं बनि आयौ ॥६७६॥
जीवराज जिन धर्म धरैया, सबैं जीव परि किपा करिया।
प्रवचनसार ग्रंथ के स्वादी, रहै जहां न होत परमादी ॥६८०॥
तिन्ह उर मै विचार यहु कीयो, प्रवचनसार बहुत सुख दीयो।
कवित बंध भाषा जो होई, कंठ पाठ करि है सब कोई ॥६८१॥
सब हमस्यु यहु बात बखानी, कवितबंध भाषा सुखदानी।
प्रवचन कवित बंध जो होई, घर घर विषै पढै सबु कोई ॥६८२॥
इहि विधि काल व्यतीत करीजै, मनिष जनम को शुभ फल लीजै।
निज पर सब ही कौ सुखदाई, करिये बेग न विलंब कराई ॥६८३॥
हेमराज फुनि यहु उर आनी, अमृत सम शुभ बात बखानी।
अलप बुद्धि मो मांझ गुसाई, क्यों करनौं प्रवचन के तांई ॥६८४॥
मैं नहि कवित छंद को पाठी, लघु दीरघ मै मो मति माठी।
छंद भंग गन अगन जु होई, अर पुनरुक्त सब्द भनि कोई ॥६८५॥
तिन्ह की कछु भेद नहि जानौ, कवित उचार किसी विधि ठानौं।
पंडित जन अर कविता होई, मोहि विलोकि हसौ मति कोई ॥६८६॥

दोहरा

छंद अरथ गन पुनसकत, होत न जहाँ प्रवान।
विबुध क्षमा करि कीजियो, सुद्ध जथा तुम्ह ज्ञान ।।६८७।।
पातिसाह ऊरंग कै, नीत धरम परगास।
देत असीस सर्वे दुनी, अचल राज पदवास ।।६८८।।
जिनै भूप भूपर बसै, सब सेवै दरबार।
जाकै चादर नीत की, तनी जाय दखिणार ।।६८९।।

सवैया

सोभित जेसिंघ महासिंघ सुत कूरम कै,
अवनि कै मारसौं सृंभार पीठ बनी है।
ताकै घरि कीरति कुमार से उदार चित,
कामांगढ राजित ज्यौ राजे दिनमती है।
जहाँ [illegible] करता [illegible] [illegible],
जाति कायथ प्रवीन सवे सभा नति सनी है।
तहाँ छहो मत को प्रकास सुख रूप,
सदा कामांगढ सुन्दर सरस छवि बनी है ।।६९०।।

सवैया इकतीसा

हेमराज श्रावक खंडेलवाल जाति गोत भवसा प्रगट अधीक गोदीका बखानिये।
प्रवचनसार अति सुन्दर सटीक देखि, कीये है कवित छवित रूप जानिये।
मेरी एक बीनती विबुध कवियन सौ, बालबुद्धि कवि को न दोष उर आनीये।
जहाँ जहाँ छंद और अरथ अधिक हीन, तहाँ शुद्ध करिकै प्रवीन ग्यांन ठानिये ।।६९१।।

दोहरा

सांगानेर सुथान को हेमराज वसवान।
अब अपनी इच्छा सहित, बसै कामांगढ थान ।।६९२।।
कामांगढ सुख सुं बसइ, ईत भीत नहिं थाय।
कवित्त बंध प्रवचन कीयौ, पूरन तहाँ बनाय ।।६९३।।

छप्पय

बंदौ हु गुरु निरगंथ जहां तिलामत्त न परिग्रह।
बंद धर्म सुसदा सबै सुख दानि सदा सह।
दोष अठारह रहित देव बंदू सो शिवंकर।
सुगुरु सुधर्म सुदेव परषि पुज्जै सुज्ञानिकर।
भनि हेम जिनागम जेम गहि सो समकित धारक है उर।
जो कुबुद्धी कुनर मिथ्यामती सुनहि त्याग पुज्जहि अनर ॥६६४॥
अध्यातम सेली सहित, बनी सभा साधर्म।
चरचा प्रवचनसार की, करै सबै लहि मर्म ॥६६५॥
अरचा अरिहंत देव की, सेवा गुरु निरग्रंथ।
दया धरम उर आचरै, पंचम गति का पंथ ॥६६६॥

बेसरी छंद

ऐसी सभा जुरै दिन राती, अध्यातम चरचा रसि माती।
जब उपदेस सबनि को लीयौ, प्रवचन कवित्त बंध तब कीयौ ॥६६७॥

दोहरा

प्रवचनसार समुद्र सरस लीन सु अरथ अपार।
लहहु सबै जे विबुध जन, मति भाजन अनुसार ॥६६८॥
सुर गुरादि सब जनम भरि, करि है अरथ विचारि।
सो फुनि पारन पावहि, प्रवचनसार अपार ॥६६९॥
जो नर उर यौ जानहि, मैं जान्यौ सब भेद।
सो बालक बुधि जगत मैं करत अविरथा खेद ॥१०००॥
ज्यौ पावक ईंधन विषै, ज्यौ सलिता दधि छीन।
त्यौं प्रवचन मैं अरथ की, पूरतान निदानि ॥१००१॥
कथन सु प्रवचनसार को, कहि कहि कहे कितीक।
तातै कवि बरनै इतौ, मति अनुसार जितीक ॥१००२॥

आगै छंद की संख्या कहै है—कवित्त

उनसठि कवित्त अरिल्ल बत्तीस सुबेसरि छंद तिवै अरतीन
दस पद्धरी चारि रोडक भनि, सब चारीस चौपई कीन।

दोहा छंद तीनसे साठा तामैं एक कीजिये हीन ।
गीता बाउ साठ कुंडलिया ए मरहठा लिनहु प्रवीन ॥१००३॥
बाईसा भनि चारि पांच चौईसा कहिये ।
इकतीसा बत्तीस एक पचीसा लहिए ।
छप्पय गनि तेईस छंद पुनि सात बिलोकिस ।
जानहु दस अर सात सकल तेईसा परमित ।
सोरठा छंद तेतीस सब सात सयर पचबीस हुव ।
आषाढ मास तृतीया धवल पुष्य नक्षत्र गुरवार धुव ॥१००४॥

सोरठा

सत्रहसै चौबीस संवत सुभ अर सुभ घरी ।
कीनौ ग्रंथ सुधीस देखि दोष कीजहु छिमा ॥१००५॥

इति श्री प्रवचनसार सिद्धांत भाषा कवित समाप्तानि । शुभं भवतु । सर्व श्लोक संख्या २८७० । संवत १७२१ वर्षे पोस सुदि १० बुधवार संपूर्णं । श्री श्री श्री ।

नामानुक्रमणिका

अजितनाथ ७,४६

अगरवाल १०,११६,११७,१२०,१५२

अभिनन्दननाथ ८

अश्वसेन १४

अनन्तनाथ १२,५५

अरनाथ १३,५८

अमृतचन्द्र २४१,२५३,२५६,२६१

अमरसी ११७,११९,१२०

अचलकीर्ति २

आचार्य सोमकीर्ति १

अमरा भौसा २२४

आनन्दराम २३०

अवरङ्ग १९८

अर्हद्वल्लभसूरि ४३

अरुन १२५,१५५

औरङ्गजेब १४९

अकब्बर १४७

आदिनाथ ४५

उमास्वामी ८,३१,४३,

कल्याण सागर ३

कुन्दकुन्द २०,२८,१०५,१५२,२०६ २०८,२५३,२५६,२५७, २६७

कुंथनाथ १३,५८

कामता प्रसाद २०१,२०२

कीरतिसिंह २४०

कौशल्या ४९

कुमुदचन्द्र

कौरपाल १,२०५,२०६,२०८,२०९ २५४

खडगसेन २

खण्डेलवाल १२५

गोयल ११७

गुणभद्र १५३

गुप्तागुप्त २८,१०५

गौतम २६

गारवदास ३

ठक्कुरसी १

चन्द्रदत्त १०,५१

चन्द्रप्रभ १०,५१

चतुर्भुज २०८

जैनुलद्दे ११७,११८,१२१,१२२,१४९, १५४,१५५,२०५

जितारथ ४७

जितरिपु ६

जयदेवी ५४

जयकीर्ति ३

जिनचन्द्र ३

जगतराम २

जयसेन २१०

जहांगीर १४७,१९८

जम्बू स्वामी ५,११३
जयकुमार ८५,८६,१२१
जीवराज २६१
जोधराज गोदीका २,२२४
जैनी ११८,१६४,२०५
जैसवाल ३,१५,३६,३८,६४,११३
तिहिनपाल ३६,११३
तुलसी १
तिमिर लिंग १४७,१६८
दलसुख २५४
देवसेन ११६
दृढरथ १०
धर्मनाथ १२,५६
धरसेन ५६,
धुरराजा ५०
नन्दलाल ११६,११७,११८,११६,
१२१,१५१,१५४
नेमिदत्त ६१
नेमिनाथ १३,१४,६१,२१७
नेमिचन्द २,२०१,२१७
नाभिराजा १७
नंदीवर २६
नंदिसेन ५६
नंदारानी ५३,८४
नाभिराय ४५,८१,८४
पार्श्वनाथ १४,६२
पुष्पदन्त १०,५२
पेमचन्द ११६,११७,११६,१२०,१५३
पदमप्रभु ६
पूरनमल ३
पं० विनोदकुमार २०४
पं० पन्नालाल बाकलीवाल २२१
पं० हीरानन्द २०५
पं० नारायणदास २१६
परमानन्द २०२,२१७
पद्मदत्त ४६
प्रताप ३,११४
प्रभावती ५६
बनारसीदास १,२,४१,२०३,२०५,
२०६
बुलाखीचन्द ११४,११५,११६,२०१
२०२,२०३
बुलाकीदास २,११६,११६,१२१,१२२
१२३, १२६,१४६,
१४७,१४६,१६४
१६८,२०१,२०५,
२०६,२०७
बूलचन्द ११७,११८,११६,१२१,
१२८,१५५
भूधरराज १
भरत १६,२५,३२
भ० रत्नकीर्ति १
भ० ज्ञानभूषण १
भद्रबाहु १०५
भ० शुभचन्द्र १४७
भानु १२,५६
भरथराय ८४
मीरा १
मनोहरलाल २
माधनन्दि २८
महासेन १०,५१
मगला ४६

मरुदेवी १७,
मिश्रबन्धु २०१
मल्लिनाथ १३,५६
मुनिसुव्रतनाथ १३,६०
मेघराय ४७,४६
महेन्द्रदत्त ५०
मरुदेवी ४५,८१,७५
महावीर १४,२६,२७,३३,३८
ब्र० यशोधर १
योगीन्दु २१५
रूपचन्द १,२०१,२०५,२०८
रामचन्द्र २
राजमल्ल २०६,२५४
राजसिंह १,
ब्र० रायमल्ल १
राघव ३
लछमा १०,५६
लालचन्द ३ ११२
लोहाचार्य ४३
वामादेवी १४,६२
वासुपूज्य स्वामी ११
विमलनाथ ११,
विमलसेन ५७,६०
विजया ६,४६
विमला ५३
वरदत्त ५८
सुमतिनाथ ६
सिद्धारथ १४,५४,६३
सोमकीर्ति ४३
सुरजादेवी ५६
सुपार्श्वनाथ ५,५०
संभवनाथ ८,४७
सोमदत्त ५०
सावित्री ४७
सबदेवी ६२
साहिजहाँ १६८,२५४
सुन्दरी ८४
समंतभद्र १५२
सघारु १
सुदर्शन ५८
सागरमल ४,११४
सुलोचना ८५,१२१
समुद्रविजय ६२
सूरदास १,
सुग्रीव ५२,
सुभचन्द्र १५५,१६८
शक्तिकंवर ३२
शिवादेवी १८
शांतिनाथ १२,५७
शीतलनाथ १०,५२
श्रेणिक २६,२७
श्रेयांसनाथ ११ ५३
श्रीराणी ५८
श्रवणदास ११६,११७११६,१२०
हेमराज २,२०,११६,११८,१२०,
२०२,२०२,२०४,२०७,
२०८,२०६,२१०,२११,
२१२ २१४,२१७,२१८
२२५,२२६,२२७,२३०
हेमराज साह २०२
हेमराज गोदीका २२२,२२७,२२८,
२३२,२३३,२४०,२५५
हेमराज पाण्डे २०२,२२७ २२२,
२२१,२५६
हेमराज (चतुर्थ) २२६
हीरानन्द २,२०६
हिमाऊँ १४४,१६८
त्रिशला १४

ग्रंथानुक्रमणिका

उपदेश दोहा शतक २२७, २२८, २३३, २४०
एकीभाव स्तोत्र ३२
कर्मकांड भाषा १८, २४, २०१, २०७
कल्याण मन्दिर स्तोत्र ३२
गुरुपूजा २०२, २०७, २२१
चौबीसी १२४
चौरासी बोल २०७, २१४
छन्दमाला २०१
नन्दीश्वर व्रत कथा २०७, २२३
नयचक्र भाषा २०१, २०२, २०७, २१६
नेमिराजमती जखडी २०७, २२२
पाण्डव पुराण ११६, ११९, १२२, १२३, १४७, १४९, १५०, १५१, १९८, २०५, २०८
पंचास्तिकाय भाषा २०, २०२, २०५, २०७, २१६, २१७, २२९
परमात्म प्रकाश २०२, २०७
पंचाशिका २०१
प्रवचनसार भाषा ४०, ११८, १२०, १५४, २०२, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २२५, २२६, २२७
प्रश्नोत्तर रत्नमाला १२४
प्रश्नोत्तर श्रावकाचार ११७, १२१, १२२, २०५
भक्तामर स्तोत्र भाषा ३२, २०१, २०७, २१२, २१३
भूपाल स्तोत्र ३२
रोहिणी व्रत कथा २०७, २२३
राजमती चुनरी २०७, २२४
वार्ता १२४
वचनकोश ४, ५, ६, ४५
विषापहार स्तोत्र ३२
समयसार भाषा २०७, २२४
समयसार नाटक १, २, ४०, २०५, २०७, २०८, २०९, २२४, २२९
सुगन्ध दशमी व्रत कथा २०७, २१९
सितपट चौरासी बोल २०१, २०६
समवसरण विधान २०७
हितोपदेश बावनी २०२. २०३, २०४

——

नगर-ग्रामानुक्रमणिका

अमरोहा २६

अजमेर २

अयोध्या ३२, ४६, १६१

अवधपुरी ३२, ५६, ८३

आगरा २, ३, १२०, १२१, १५३, १५४, २०६, ११४, २५४, २६१

आमेर २

इन्द्रप्रस्थपुर १२२, १४६

कपिलापुरी ११, ५४

करनाट १६३

कशमीर १६३

कलिंग १६३

काकंदी १०

कामागढ़ २२५, २४०, २६२

कुरुखेत १३८

कुण्डलपुर १४, ६३

कौशंबी ५०

कौकरण १६३

कौशिकपुर १३६

कोसल १६३

गजपुर १२, ५७, ५८, १३८, १४०

ग्वालियर १११

चहुकहपुर ५६

चम्पापुरी ११

चन्द्रपुरी ५१

जयपुर २०४, २१७, २८१, २३०, २५४

जलपथ १४१

जहानाबाद १२१, १२२

जालन्धर १४०

जैसलमेर ३२, ३४, ३५, ४१

जंबूद्वीप १५६

तिलपथ १४१

टोडारायसिंह २

तिहुवनगिरी २

दिल्ली २, १४७, १६५

द्वारावती १३६

धर्मपुर ५६, १४५

नागौर २

पावापुर १४, ५०, १०४

पोदनपुर १६, ३२

बयाना ११७, ११६, १२०, १५२

बूँदी २२८

बैराठ १६३, १६६

मध्यदेस ३१५३

मध्यप्रदेश २

मालवा १६३

मुलतान २

मथुरा ५, ११३

मिथिलापुर १९, ६०, ६१

महाराठ १५३
मगधदेश ११७, १६३
मंगलपुर ५०
मन्दिरपुर ५८
मेदपाट १६३
भद्रबाहु १५६
भरतपुर १५०
भागलपुर १०, ५३
राजस्थान २
रूपनगर २०४
रतनपुरी ५१
राजाखेरा ११४
राजग्रही १३, १३७
वाराणसी १३, १५, ८४
विजयापुर ४६
वीरपुरी ६२
वर्द्धनपुर ४, ५, १५
वृन्दावन ५, ८, ११३
वाणिकपथ १४१
सांगानेर २, २२४, २२५, २४०, २६२
शिवपुरी ११, ५३
सुलकापुरी १४५
सुरपुरि १४५
सोरठ १६३
सावित्री नगरी ८
सिद्धार्थपुरी ११
हस्तिनापुर ४६, १४१, १४६
त्रिभुवनगिरी ५, ३५, ३६